

लघुत्त्रयी की शैलीगत रुढ़ियों का समीक्षात्मक अध्ययन
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध



निर्देशक

पं० राज कुमार शुक्ल

भूतपूर्व उपाचार्य

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता

सिद्धार्थ पाण्डेय

एम.ए. (संस्कृत)

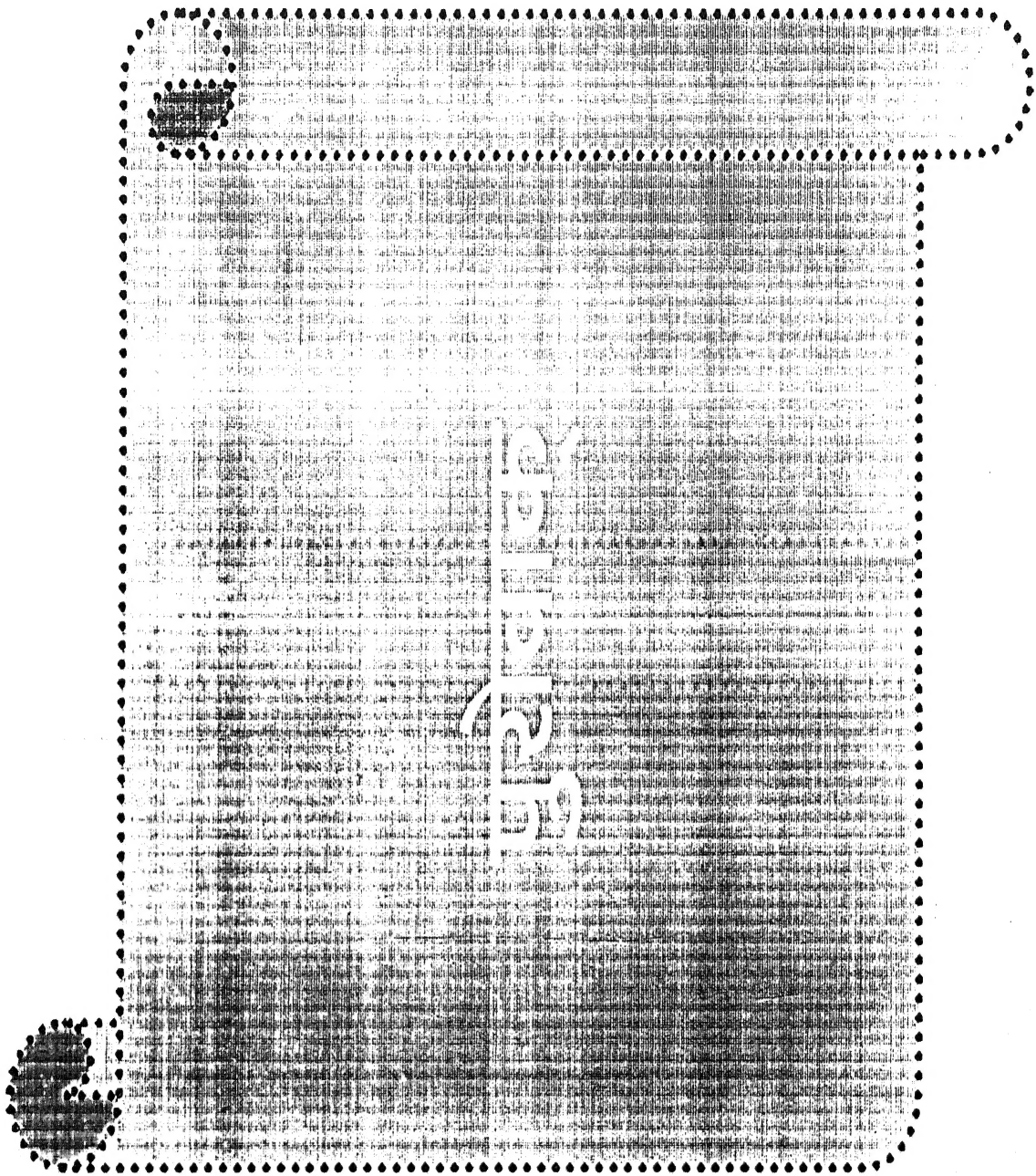
संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अप्रैल, 2002 ई०

विषय-सूची

	पृष्ठ सं०
पुरोवाक्	I-III
भूमिका	IV-VII
प्रथम अध्याय	1-27
कवि परिचय	
क जीवनवृत्त	2
ख आविर्भाव काल	3
ग जन्म स्थान	16
घ व्यक्तित्व	18
ङ कृतियों	19
द्वितीय अध्याय	28-94
शैली—परिभाषा एव स्वरूप	
तृतीय अध्याय	95-118
लघुत्रयी का परिचय	
क रघुवश	96
ख कुमारसम्भव	102
ग. मेघदूत	113
चतुर्थ अध्याय	119-128
रूढि शब्द का अर्थ	
पञ्चम् अध्याय	129-231
लघुत्रयी की शैलीगत रूढियों की व्याख्या	
क. रीति	129-135
ख रस	136-166
ग. अलङ्कार	166-188
घ छन्द	188-198
ङ. प्रकृतिवर्णन	199-228
च लोकोक्ति का प्रयोग	229-231
षष्ठम् अध्याय	232-267
कालिदास के काव्य सौन्दर्य की विशेषता	
उपसंहार	268-274



पुरोवाक्

संस्कृत साहित्य में कालिदास उस विराट चेतना के सौन्दर्य का नाम है, जिसकी प्रभा से वसुधा का कण-कण सुन्दर प्रतीत होता है। कालिदास ने एक हिमालय को पृथ्वी के मापने वाले मानदण्ड माना है किन्तु उनकी प्रत्येक रचना वह हिमालय है जो सम्पूर्ण पृथ्वी के साहित्य को मापने वाला मापदण्ड है। इस महाकवि के काव्यसमुद्र का मथन तब तक चलता रहेगा जब तक इस पृथ्वी पर मानवी सृष्टि रहेगी।

सुरभारती संस्कृत भाषा के पावन मन्दिर में प्रवेश दिलाने वाले मेरे परमपूज्य पितृ महाभाग श्री ज्ञानेन्द्र प्रकाश पाण्डेय एम.ए. (संस्कृत) भूतपूर्व अपर जिला सहकारिता अधिकारी हैं, जिनके संस्कृत भाषा के प्रति अटूट अनुराग ने मुझे इस भाषा की सुखद छाया में शरण लेने की प्रेरणा दी है। परास्नातक (संस्कृत साहित्य) में उत्तीर्ण करने के पश्चात् जब मैंने गुरुवर प. राजकुमार शुक्ल से शोध कार्य करने की जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने मुझे 'लघुत्रयी की शैलीगत रूढ़ियों का समीक्षात्मक अध्ययन' करने का आदेश दिया। विषय की गम्भीरता ने मुझे एक क्षण विचलित कर दिया किन्तु उन्होंने उत्साहवर्धन करते हुए कहा, "क्लेश फलेन हि पुनर्वर्ता" विधत्ते।

मेरे शोध निर्देशक प. राजकुमार शुक्ल भूतपूर्व उपाचार्य, संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की सत्प्रेरणा, स्नेहिल व्यवहार तथा आत्मीयता से पोषित हो मेरे शोध प्रबन्ध का नन्हा सा पौधा पुष्पित तथा पल्लवित हरित तरुवर का रूप धारण करने में समर्थ हुआ है। मेरे कार्य के हर मोड़ पर उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग तथा समुचित मार्गदर्शन प्रदान किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनके शुभ आशीर्वचनों का ही परिणाम है। मैं हृदय के अन्तस्तल से उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं शाब्दिक रूप से उनके प्रति

आभार प्रकट कर उनकी सद्भावना एवं सहयोग की अवमानना करने की धृष्टता नहीं कर सकता। बस उनके सौजन्य से मुझे आजीवन उनका ऋणी बना दिया है।

कालिदास के विषय में मल्लिनाथ की यह वाणी—

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।

चतुर्मुखोऽथवा साक्षाविदुर्नान्ये तु मादृशाः।।

रघुवश सजीवनी टीका

अक्षरस सत्य है। इसीलिये मेरा यह शोध कार्य कालिदास को पूर्णत कैसे समझ सकता है। यह शोध—प्रबन्ध कालिदास के चरणों में समर्पित एक पुष्पमात्र है।

स्वर्गादिपि गरीयसी ममताप्लावित वात्सल्यमयी पूजनीया जननी श्रीमती विमला पाण्डेय एवं परमपूज्य पितृमहाभाग का कई जन्मों तक ऋणी रहूँगा जिनकी सतत प्रेरणा ने मुझे इस योग्य बनाया। इनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की धृष्टता नहीं कर सकता हूँ, जिन्होंने गार्हस्थ्य के सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों से पूर्णत मुक्त रखकर मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान करने के लिये तन—मन—धन से सहयोग प्रदान किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में मेरे अनुज डा० सुधीर कुमार पाण्डेय (पशुधन प्रसार अधिकारी) का सहयोग किसी भी प्रकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। ये केवल आशीर्वाद के पात्र है, ईश्वर इन्हें शिव की शक्ति, मीरा की भक्ति, कर्ण का दान एवं पाणिनि का ज्ञान प्रदान करे। इन्होंने तन—मन—धन से सहायता किया, जिससे यह शोध प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हो सका।

मेरे शोध मार्ग में अनेक अवरोध प्रस्तुत हुए किन्तु उनके निवारण में प्रो. सुरेश चन्द्र पाण्डेय पूर्व विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद

विश्वविद्यालय, डा चन्द्रभूषण मिश्रा पूर्व आचार्य सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रो मृदुला त्रिपाठी विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति मै कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय मे से कुछ क्षण मुझे प्रदान कर मेरा मार्गदर्शन किया है।

मेरे परम मित्र डा राज कपूर पाण्डेय, श्री सजय पाण्डेय (खण्ड विकास अधिकारी), श्री जयसिंह (प्रवक्ता, राजकीय महाविद्यालय) श्री धर्मराज मिश्रा (खाद्य निरीक्षक) डा० रामचन्द्र पाण्डेय, श्री देवी शरण त्रिपाठी एव गङ्गानाथ झा सस्कृत इस्टीट्यूट और इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियो एव अधिकारियो के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने दुर्लभ ग्रन्थो को उपलब्ध कराकर मेरे शोध कार्य मे सहयोग दिया है अत इन सभी के प्रति मै आभार प्रकट करता हूँ। शोध प्रबन्ध को सुस्पष्ट ढंग से एव अत्यल्प समय मे टड्कित करने के लिए श्री विशाल वाजपेयी एव श्री रूपेश श्रीवास्तव धन्यवाद के पात्र है।

सस्कृत काव्य जगत के शिखरस्थ महाकवि कालिदास पर लिखने का उपक्रम मेरे लिये दुस्साहस ही है तथा मैने यथामति उनकी कृतियो (रघुवश, कुमारसम्भव, मेघदूत) की समीक्षा करन की चेष्टा की है। आशा करता हूँ, कि सुधीजन मेरे त्रुटियो को क्षमा करेगे तथा अपने बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत करेगे।

दिनाङ्क २० अप्रैल २००२

सिद्धार्थ पाण्डेय
सिद्धार्थ पाण्डेय

भूमिका

मानव की अतृप्त वासना इसलिए प्यासी रहती है कि उसे पूर्ण सौन्दर्य के पान का रसास्वादन नहीं मिल पाता है। टुकड़े-टुकड़े में विभक्त सौन्दर्य उसे थोड़ी ही तृप्ति मात्र देती है। उनकी कल्पना प्यासी ही रह जाती है। वह अतृप्त कल्पना की प्यास को दूर करने के लिए सृजनात्मक प्रक्रिया का आश्रय लेता है। इस प्रक्रिया में उसे द्वैत का आशय लेना पड़ता है। इस द्वैतता की एकरूपता में ही सर्जना, जन्म लेती है। उसकी कोई भी सर्जना उसके समाधिस्थ मन में होती है। पराकाष्ठा का प्राप्त समाधिस्थ मन से ही उत्कृष्ट सर्जना को सौन्दर्य प्रदान करता है। कलाकार की कला उसकी चेतना के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करता है। वस्तुतः सौन्दर्य चेतना को अमरता प्रदान करता है। चेतना का वरदान तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति की अखण्ड तपस्या हो। साहित्य सङ्गीत और कला में सौन्दर्य की अनुपम अनुभूति होती है। इसलिए रससिद्ध कवीश्वर अमरता को प्राप्त करते हैं। कवि की रचनाओं में अद्भुत सौन्दर्य की अनुभूति होती है। यह सौन्दर्य क्या है, इसकी विवेचना भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने अपनी प्रतिभा के अनुसार की है।

रसवादी भरतमुनि के मत में रस ही काव्य का सौन्दर्य है। भामह ने काव्य सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिये अलङ्कार की विवेचना की। इनके मत में अलङ्कार वस्तु के नैसर्गिक सौन्दर्य को उद्घाटित कर उसे लोक प्रत्यक्ष का विषय बना देते हैं। आचार्य दण्डी का कहना है कि काव्य शोभा को प्रस्तुत करने वाले धर्म अलङ्कार है। वामन ने तो अलङ्कार को सौन्दर्य मानकर सौन्दर्य को वस्तुगत स्वीकार किया है। गुण तथा अलङ्कारों

से युक्त शब्दार्थ में सौन्दर्य रहता है। इन्होंने गुणों के आधार पर रीतियों की विवेचना प्रस्तुत की है। उद्भट की दृष्टि में नैसर्गिक गुण और कृत्रिम (अलङ्कार) दोनों समान रूप से कवि प्रतिभा से उद्भूत काव्य में समवायवृत्ति से रहते हैं। आनन्दवर्धन ने गुण को रसाश्रित मानकर एक नयी प्रक्रिया प्रारम्भ की जिसे बाद के आचार्यों ने भी स्वीकार किया। वामन आदि की रीतियों को इन्होंने सघटना नाम दिया किन्तु दोनों की स्थिति में अन्तर है। कुन्तक ने 'मार्ग' को कवि स्वभाव से उद्भूत मानकर मार्ग के सुकुमार मार्ग विचित्र आर मध्यम नाम दिया। मम्मट, कविराज विश्वनाथ, पण्डित राज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने आनन्दवर्धन के सिद्धान्त—ध्वनिवाद को ही स्वीकार किया है। सम्पूर्ण काव्य एक अर्थ होता है, उसे अभिव्यक्त करने के लिये कवि शब्दों का चयन करता है। लोकभाषा और काव्य—भाषा में पर्याप्त अन्तर होता है। काव्यभाषा के शब्दों में जो अर्थ सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है वह लोकभाषा को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकता है। इसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये कवि, भिन्न—भिन्न शैलियों का आश्रय लेता है। पाश्चात्य विद्वानों ने शैली को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है। इसकी विवेचना शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में की गयी है। शैली अभिव्यक्ति की प्रक्रिया है। कालिदास की रचनाओं में तथा महाकवि हर्ष की रचनाओं में शैलीगत पर्याप्त अन्तर है। कवि की शैली का उसका स्वभाव ही नहीं प्रभावित करती है वरन् देश काल और समाज की परिस्थितियाँ भी उसकी काव्यभाषा को एक नया रूप देती हैं। आचार्यों ने यह स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है कि काव्य सौन्दर्य वाच्य नहीं, वरन् व्यङ्ग्य होता है। इस व्यङ्ग्यार्थ की सीमा नहीं होती है। जो जितना सहृदय होता है तथा जिसकी प्रतिभा जितनी निर्मल होती है उसकी अनुभूति की तीव्रता उतनी ही अधिक होती है। काव्य का अर्थ ही प्रधान होता है। सम्पूर्ण अर्थ को आचार्यों ने मुख्य रूप से रस, वस्तु, और अलङ्कार की सजा दी है। इन अर्थों में किसी एक की जब

प्रधानता तथा व्यङ्गता होती है तब उसे ध्वनि की सज्ञा प्राप्त हो जाती है। यह कवि को प्रतिभा पर निर्भर है कि अपने काव्य के अर्थ सौन्दर्य को किस रूप में अभिव्यक्त करता है।

कालिदास मूलतः सौन्दर्य के कवि है। इनका सौन्दर्य व्यङ्ग्य है। कालिदास का सौन्दर्य व्यापक तथा शाश्वत है। इनकी कल्पना मङ्गलमय सौन्दर्यात्मक भविष्य का निर्माण करती है। इनके प्रत्येक जडपात्र भी चेतन की भाँति आचरण करते हैं। उनकी दृष्टि में सारा जगत शिव तत्त्व के चेतन सौन्दर्य से प्रतिभाषित है। शिव के अनुग्रह मात्र से धन्य पशु सिंह भी मनुष्य की भाषा बोलता है, कोकिल भी बसन्त तथा चेतन का सन्देश देती है। तरु भी चेतन की भाँति आचरण करते हैं। सरिता, समुद्र हिमालय सभी जड वस्तुएँ चेतनता की प्रतिमूर्ति हैं। इन वस्तुओं की चेतनता का दर्शन कालिदास की ही प्रतिभा कर सकती है। कालिदास की ही दिव्य प्रतिभा मेघ से चिरकाल तक वार्ता कर सकती है और अपनी विरह वेदना बता सकती है। इनका तपोमूलक शृङ्गार शाश्वत सौन्दर्य की प्राप्ति का प्रमुख सोपान है।

इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में कविकलगुरु कालिदास के जीवन—चरित के विषय में विस्तृत विवेचना की गयी है। महाकवि का आविर्भाव काल, जन्म स्थान तथा कृतियों आदि की विवेचना प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में पाश्चात्य और भारतीय आचार्यों के अनुसार शैली के स्वरूप की विस्तृत किन्तु सारगर्भित विवेचना की गयी है। शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में लघुत्रयी का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। कालिदास के काव्य केवल काव्यमात्र ही नहीं है, वरन् उनमें भारतीय सस्कृति, वैदिक सस्कृति, जीवन मूल्यों तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिक की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। जीवन का सत्य रूप का उद्भावन करना ही इनके काव्य की विशेषता है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में 'रूढि' शब्द का अर्थ तथा स्वरूप के विषय में विवेचित किया है।

शोध प्रबन्ध के पञ्चम अध्याय में लघुत्रयी की शैलीगत रूढियों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कवि के द्वारा प्रयुक्त एक शब्द भी वन्द्य नहीं है। इस अध्याय में शैली की विशेषताओं का सूक्ष्म अध्ययन कर इनके काव्यों के अद्वितीय सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में कालिदास के काव्य सौन्दर्य की नयी समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। कालिदास के काव्य सौन्दर्य के विषय में उन्हीं की उक्ति को उद्धृत किया जा सकता है, जिसके माध्यम से उन्होंने शकुन्तला के सौन्दर्य रचना की कल्पना की है।—

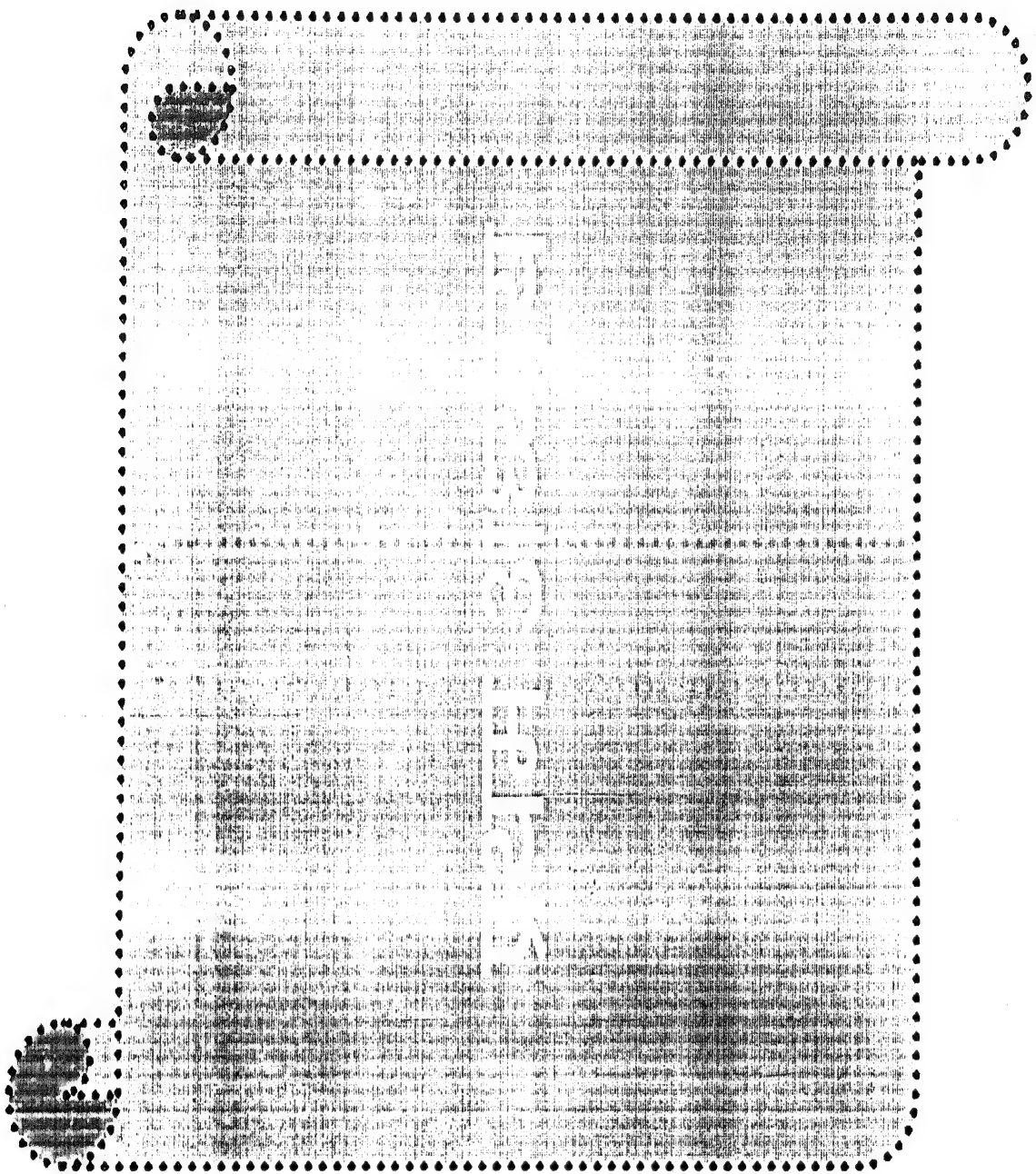
चित्रे निवेश्यपरिकल्पितसत्त्वयोगा

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।

स्त्रीरत्नसृष्टिपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या ॥ अभि शा २/६





कवि परिचय

भारतीय सस्कृत वाङ्मय का आदिश्रोत जिस सांस्कृतिक आयाम में विकसित हुआ, उसे इतिहासकारों ने आश्रम सस्कृति की सजा दी। आर्थिक प्रगति की दृष्टि से वह कृषि युग था, जिसमें ग्रामीण सस्कृति विकसित हुई, तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से यह राजन्य युग था जो कुल सस्कृति का परिचायक है। वैदिक युग के धर्म साहित्य एवं कला में सादगी, उदात्तता एवं आध्यात्मिकता परिलक्षित है। अनेक स्थलों में काव्यमयी उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। किन्तु विशुद्ध काव्य के विकास के लिये अभी और भूमि प्रस्तुत नहीं हुई थी।

लौकिक सस्कृति साहित्य का जन्म भले ही तमसा के निर्जन आश्रम में हुआ हो किन्तु उसका विकास सस्कृति के उस परिवेश में हुआ, जिसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि एवं हस्त कला युग, राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्राटों का युग, सामाजिक दृष्टिकोण से चतुर्वर्ण्य व्यवस्था के विकास का युग एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विभिन्न दार्शनिक धाराओं के विकास का युग कह सकते हैं। सस्कृति की इस पृष्ठभूमि में सस्कृत का जो साहित्य निर्मित हुआ—रामायण, महाभारत आदि प्रतीक हैं। यह साहित्य एक ओर सम्राटों के राजकीय वैभव में तथा दूसरी ओर आश्रमों की सादगी में विकसित हुआ। वैदिक सस्कृत का यह ग्रामीण भाव सस्कृत जिस युग में लिखा गया, उसी समय से भारतीय सस्कृति का श्रेष्ठ उपलब्धियों का आरम्भ होने लगता है। इसीलिए यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि भारतीय सस्कृति में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति सस्कृति साहित्य में हुई है और संस्कृत साहित्य में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति कवि शिरोमणि कालिदास में हुई है।

इतिहास की व्यापकता, भावों की उदात्तता, विशदता, गम्भीरता तथा शिल्पविधि का आचार्यत्व सभी दृष्टिकोण से कालिदास सस्कृत काव्य कला के सुमेरु माने जा सकते हैं। कालिदास को काव्य प्रणयन की प्रेरणा किन कवियों एवं किन काव्य पद्धतियों से मिली, इस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक अधिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि

कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणा श्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण—महाभारत में निहित था। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्वकर्ता कहा जा सकता है। सास्कृतिक वातावरण, भाव, भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास ने इन ग्रन्थों की प्रेरणा प्राप्त की। लघुत्रयी की शैलीगत रूढ़ियों की समीक्षा करने के पूर्व महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त आविर्भावकाल, जन्मस्थान, व्यक्तित्व एवं काव्य कृतियों पर प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

जीवन वृत्त

कवि शिरोमणि कालिदास के जीवन के सम्बन्ध में भी प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनके वंश माता—पिता, शिक्षा, गृहस्थ जीवन तथा आजीविका से सम्बन्धित सामग्री का अभाव है। भवभूति के समान उन्होंने अपना परिचय किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिया है।

उनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कुछ साहित्य में आते—आते नागरिक स्वरूप में परिवर्तित हो गया। संस्कृत साहित्य लोग कवि के नाम का अर्थ लगाते हैं— काली का सेवक। यह अनुमान किया जाता है, कि सम्भवतः यह नाम भी साधारणतया अपने अर्थ से निरपेक्ष रूप में कवि को उसके माता—पिता ने दिया हो। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार कवि आरम्भ में महामूर्ख पण्डित था, किन्तु बाद में विदुषी पत्नी द्वारा प्रताडित होकर देवी की उपासना की और उसके प्रसाद से इनकी काव्य शक्ति स्वतः उद्भूत हो गयी। देवी की उपासना करने के पश्चात् वरदान प्राप्त कर लौटने के पश्चात् कालिदास पत्नी से “अनावृतकपाट द्वार देहि” (दरवाजा खोलो) कहा। उत्तर में पत्नी ने कहा “अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः” कालिदास पत्नी के इस वाक्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उपर्युक्त वाक्य के तीन शब्दों को लेकर एक—एक से एक—एक काव्य की रचना कर डाली। अस्ति’ से कुमार सम्भव (अस्त्युत्तरस्या दिशि. कु. १/१) ‘कश्चित्’ से मेघदूत (कश्चित् कान्ताविरह गुरुणा (मे. १/१) वाग् से रघुवंश (वागार्थाविव सम्पृक्तौ०, रघु १/१ इत्यादि तीन काव्यों की रचना की।

एक अन्य किवदन्ती इनका सम्बन्ध लड्का के राजा कुमारदास से स्थापित करती है, और लड्का मे किसी वेश्या के घर मे मृत्यु होना बताती है। तीसरी किवदन्ती के अनुसार इनकी मृत्यु धारा नगरी मे हुई। परन्तु सच तो यह है कि इन सभी अनुश्रुतियों मे कोई प्रामाणिकता प्रतीत नही होती क्योंकि उनके जीवन के विषय मे अभी तक न कोई प्रमाण मिल सका है और न कोई वाह्य प्रमाण ही, अतएव निर्णय रूप मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

अविर्भाव काल

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष मे हुआ इस विषय मे कुछ कह सकना दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ, कुछ पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों मे उनका जीवन यापन हुआ, किन सघर्षों, किन घात—प्रतिघातों ने उनके विचारों—भावनाओं के निर्माण मे योग दिया—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्यामूलक बना हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने किसी भी ग्रन्थ मे अपने विषय मे कुछ भी निर्देश नही दिया है।

उनके स्थितिकाल के विषय मे जितने आलोचक हैं, उतने ही मत, उतने ही विचार हैं। महाकवि के समय का आकलन ई का प्रथम शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक किया जाता है। अधिकांशतः विद्वान् उनका सम्बन्ध प्रथम शताब्दी के काल से जोड़ते हैं। किसी भी कवि का काल निर्धारण करने के लिये मुख्य रूप से दो साधन हुआ करते हैं—

(१) अन्तः साक्ष्य अर्थात् कवि ने अपनी रचनाओं के विषय मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या लिखा है?

(२) वाह्य साक्ष्य अर्थात् कवि के समकालीन तथा परवर्ती विद्वानों ने उसके विषय में क्या लिखा है। अन्तः साक्ष्य के आधार पर तो हम उनके विषय मे कुछ भी जानने मे असमर्थ हैं। हाँ, वाह्य साक्ष्य के आधार पर तो हम उनके विषय में कुछ सामग्री अवश्य उपलब्ध होती है, ज्ञप्ति के आधार पर किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न करेंगे।

कालिदास का काल निर्धारण करने से पूर्व उनकी पूर्व और अपर सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। पूर्व सीमा के लिये हमें उनके “मालविकाग्निमित्रम्” का अवलोकन करना होगा। इस कथानक शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र के जीवन से लिया गया है। यह अग्निमित्र सेनापति पुण्यमित्र का पुत्र था, जो १८४ ई०पू० में राजा वृहद्रथ को मारकर गद्दी पर बैठा था।^१ अतः कालिदास का समय इसके पूर्व नहीं हो सकता तथा मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना “प्रथितयशसा भाससौमिल्लकवि पुत्रादीन प्रवन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमान” में भास, सौमिल्ल आदि का वर्णन किया है जिसका समय निश्चित रूप से ईसा पू० द्वितीय शताब्दी से पूर्व का है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मालविकाग्निमित्र की रचना करते समय कालिदास का काव्य जगत में प्रवेश हुआ ही था। अतः किसी भी स्थिति में कालिदास को १५० ईसा पूर्व से पूर्व नहीं ले जा सकते।

अपर सीमा बाण रचित हर्षचरित्र की भूमिका से निर्धारित होती है। बाण ने “हर्षचरित” के प्रारम्भ में कालिदास के नाम का उल्लेख इस प्रकार किया है।^२ वाणभट्ट कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के आश्रित कवि थे। जिसका समय इतिहासकारों^३ २—प्राचीन भारत का इतिहास डा. रमाशंकर त्रिपाठी पृष्ठ २२४ तथा २३५ ६०६ ई से ६४७ ई माना है अतः कालिदास को इसके बाद नहीं ले जाया जा सकता। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के ऐहोल नामक ग्राम में उपलब्ध शिलालेख (६३४) ई में रविकीर्ति ने स्वयं को कालिदास और भारवि की कोटि का कवि माना है।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास १५० ई.पू से लेकर ६०० ई. के बीच कहीं हुए होंगे। कालिदास इस बीच कब हुए, इस सम्बन्ध में चार मत अधिक प्रचलित हैं, उनका क्रमशः विशद विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। वे चार मत निम्न प्रकार हैं—

१ Ancient India Dr. R.C. Majumdar Page-१२०.

२. येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्ति ॥

३. प्राचीन भारत का इतिहास डा. रमाशंकर त्रिपाठी पृष्ठ २२४ तथा २३५

- १ छठी शताब्दी ई का मत
- २ गुप्त कालीन मत अथवा चतुर्थ शताब्दी ई सम्बन्धी मत
- ३ ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत
- ४ ईसा पूर्व प्रथम शती का मत

१ छठी शताब्दी का मत

इस मत के प्रबल समर्थक प्रो मैक्समूलर हैं। उनका यह मत काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त पर आधारित है जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपनी पुस्तक *India-What It Can Teach us?* में किया है। उनका कथन है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक चार अथवा पाँच शताब्दियों में शक और दूसरे विदेशियों के आक्रमण के फलस्वरूप संस्कृत साहित्य की प्रगति सर्वथा अवरुद्ध हो गयी थी फिर छठी शताब्दी में जाकर संस्कृत साहित्य की प्रगति सर्वथा अवरुद्ध हो गयी थी फिर छठी शताब्दी में जाकर संस्कृत का पुनर्जीवन हुआ। उसी पुनर्जीवन काल में कालिदास का अविर्भाव हुआ। प्रो मैक्समूलर का यह मत फर्ग्यूसन के विक्रमादित्य सम्बन्धी मत पर आश्रित था। फर्ग्यूसन का मत है कि ५४४ ई में विक्रमादित्य नामक सम्राट ने शको को परास्त किया और विजय के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् प्रारम्भ किया, परन्तु उस संवत् को और अधिक महत्व देने के लिये ६०० वर्ष पूर्व की तिथि से अर्थात् ईसा से पूर्व ५६-५७ वर्ष से प्रारम्भ किया। इसी विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में से एक कालिदास भी थे। इस प्रकार मैक्समूलर के अनुसार कालिदास का समय ५४४ ई के आस-पास छठी शताब्दी में था। यह मत पर्याप्त समय तक विद्वानों में मान्य रहा। कालान्तर में इतिहास से यह सिद्ध हो गया कि पश्चिमी भारत में किसी भी विदेशी को भारत से बाहर नहीं निकाला गया क्योंकि उनको गुप्त वंशीय राजाओं ने १०० वर्ष पूर्व ही बाहर निकाल दिया था। साथ ही यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि छठी शताब्दी में शको को नहीं, अपितु हूणों को पश्चिमी भारत से बाहर निकाला था। वो भी विक्रमादित्य ने नहीं, अपितु यशोवर्मन विष्णुधर्मन ने। इस प्रकार

फर्ग्यूसन के मत की प्रामाणिकता स्वतः ही खण्डित हो जाती है। पुनः डा फ्लीट द्वारा की गयी शिलालेखों की खोज से मैक्समूलर के काव्य का पुनर्जागृति सिद्धान्त की आधारशिला ही समाप्त हो जाती है। इन शिलालेखों में ४६२ ई का वत्सभट्टि का मन्दसौर का शिलालेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसने सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया है और अपने काव्य में मेघदूत और ऋतुसंहार का अनुकरण किया है। जैसा कि निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है।^१

यह प्रशस्ति ४४ श्लोकों में है जिसमें मन्दसौर का कवित्वपूर्ण वर्णन है। इसके अतिरिक्त २०० ई के लगभग लिखा हुआ रुद्रदामन का गिरनाथ पर्वत पर उद्दण्डिकत लेख शैली की प्राज्जलता के कारण गद्य काव्य का सा आनन्द देता है। रुद्रदामन की विद्वता के विषय में लिखा है कि स्फुटलधुमधुर चित्रकान्त शब्द समोयोद्धारालकृत गद्य पद्य इत्यादि। इसी प्रकार इसी समय के लगभग लिखा हुआ प्राकृत भाषा में श्री पुलुमायो का नासिक शिलालेख है।

इस प्रकार उपर्युक्त शिलालेखों में मैक्समूलर का सिद्धान्त और इसका आधारभूत फर्ग्यूसन का सिद्धान्त दोनों ही खण्डित हो जाते हैं तथा इसके आधार पर कालिदास को छठी शताब्दी में मानने का मत भी निरस्त हो जाता है। डा फ्लीट ने इस बात को भी सिद्ध किया है कि ५७ ई पू से प्रारम्भ होने वाला विक्रम संवत् ५४४ ई में स्थापित नहीं किया गया था, अपितु मालव संवत् के नाम से यह लगभग १०० वर्ष पहले ही प्रचलित था, जो ८० ई में विक्रम संवत् के नाम से व्यवहृत किया जाने लगा।

इसके अतिरिक्त डा भाऊदाजी, प्रो कर्न तथा डा भण्डारकर आदि पुरातत्त्ववेत्ता भी कालिदास को छठी शताब्दी में ही सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की मेघदूत टीका के ऊपर निर्भर होकर इन विद्वानों ने कालिदास विक्रमादित्य की सभा में नवरत्न थे, यह बात स्वीकार की है। प्रख्यात ज्योतिषी

१ चलत्पताकान्यबलासनाथान्त्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लता चित्रसिताभ्रुकटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र॥ वत्सभट्टि/१०
विद्युत्त्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सगीताय प्रहृतमुरजा सिग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाग्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै उ मे/३

वराहमिहिर भी नवरत्नो मे से एक थे। ज्योतिषचार्य ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य के टीकाकार अमरराज लिखते हैं कि—

नवाडधिकपञ्चशतसख्यशाके (५०६) वराहमिहिराचार्यो दिवगत ।

इस उक्ति पर विश्वास करने पर वराहमिहिर की मृत्यु ५८६ ख्रीटाब्दी मे माननी पडती है और चूकि कालिदास और ये दोनो ही नवरत्नो मे थे, तो कालिदास का समय भी छठी शताब्दी है यह बात भी सिद्ध हो जाती है।

आचार्य मल्लिनाथ ने मेघदूत के निम्न श्लोक की टीका मे निचुल और दिङ्गनाग पद मे श्लेष बताया है। उनकी मान्यता है कि इसमे कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी दिङ्गनाथ का और बन्धु निचुल का नाम ध्वनित है और इनका सम्बन्ध छठी शताब्दी है अतः कालिदास का भी समय भी वही है।^१

एक अन्य विद्वान प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त ने अपनी पुस्तक *Ancient Indian Cronology* मे मेघदूत के आषाढस्य प्रथमदिवसे (पू/२) यह पाठ मानकर तथा 'प्रत्यासन्ने नभसि' (पू/४) मासान् गमय चतुर (उ/५०) तथा 'शापान्तो मे भुजगशयनादुत्पिते शाङ्गपाणौ (उ/५०) आदि कथनो मे सामजस्य बैठाकर यह निष्कर्ष निकाला है कि यक्ष ने चन्द्र आषाढ की एकादशी को मेघ देखा और अगले दिन से श्रावण प्रारम्भ था। एकादशी को समाप्त होने वाला आषाढ सौर मास होना चाहिए। कालिदास के समय इसी दिन दक्षिणायन और वर्षा ऋतु का आरम्भ होता था। हिसाब लगाने पर यह दिन २० जून सन् ५४९ ई बैठता है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने 'स्मृतिभिन्न मोहतमस (अभि शा ६१२२) आदि द्वारा प्रत्यक्ष खाग्रास चन्द्रग्रहण का वर्णन किया है जो उज्जयिनी मे ८ नवम्बर सन् ५४९ ई को रात्रि मे ८ बजकर ३६ मिनट पर प्रारम्भ होकर रात्रि मे १२ बजकर २० मिनट तक रहा। इस प्रकार कालिदास का समय छठी शताब्दी ई ठहरता है। प हर प्रसाद शास्त्री ने तो कालिदास को भारवि के बाद का सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा के वी पाठक भी इसी छठी शताब्दी ई के मत के ही मानने के पक्षधर हैं। प चन्द्रशेखर पाण्डेय ने प्रमाण और उद्धरणो के द्वारा इस मत का खण्डन किया है। अतः छठी शताब्दी ई का मत पूर्णतया सदोष है।

१- स्थनादस्मात्सरसनिचुलादुत्पितोदङ्मुख ख
दिङ्गनागानां पथि परिहरनस्थूलहस्तावलेपान् ।। पू मे/१४

२. चतुर्थ शताब्दी का मत

कालिदास चतुर्थ शताब्दी में हुए इस मत के प्रबल समर्थक डा भण्डारकर म म रामावतार शर्मा श्री विजय चन्द्र मजूमदार डा मिराशी आदि हैं। मैक्डोनाल्ड ने अपनी पुस्तक *History of Sanskrit Literature* में कालिदास को गुप्त वंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का समसामयिक माना है। डा स्मिथ ने अपनी पुस्तक "*Early History of India*" में माना है कि कालिदास सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त तीनों सम्राटों की सभा में रहा होगा। श्रीमती मैनिमिग के अनुसार कालिदास ५०२ में हुए थे। प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् कालिदास को गुप्त कालीन मानते हैं और भारत वर्ष से बाहर यह मत सबसे अधिक प्रचलित है। इस मत के समर्थकों का कथन है, कि गुप्तकाल ही ऐसा शान्तिपूर्ण स्वर्णकाल था जिसमें उत्कृष्ट काव्यों की रचना सम्भव है। कालिदास के रघुवंश में गुप्त साम्राज्य के स्वर्ण युग का आँखों देखा वर्णन है। रघु की दिग्विजय के अवसर पर जिन देशों का वर्णन कालिदास ने अपने रघुवंश में किया है। उन्हीं देशों को समुद्रगुप्त ने भी जीता था। रघुवंश के तृतीय सर्ग में वर्णित दिलीप का अश्वमेध यज्ञ चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत कर रहा है। 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विक्रमादित्य उपाधि धारण करने के अवसर पर खेला गया होगा। "अनुत्सेक खलु विक्रमालङ्कार तथा 'महेन्द्रोपकार पर्याप्तने विक्रममहिम्ना वर्धतेभवान्' प्रथम अङ्क। "तनु प्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पे शशिनेव शर्वरी" रघु ३/२ इस प्रसिद्ध उपमा में चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्पष्ट आभास मिलता है। इतिहासकारों ने इनका काल ३७६—४९३ ई माना है। इस मत के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि कुमारसम्भव महाकाव्य की रचना सम्भवतः चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य में रखकर की गयी है, 'स्ववीर्यगुप्ता हि मनो प्रसूति' (रघु ३/४) "यथा प्रद्यदनाच्चन्द्र प्रतापान्तपनो यथा" (रघु ४/९२) आदि उद्धरण इस बात के संकेत हैं।

गुप्तकालीन अभिलेखों तथा सिक्कों की भाषा और कालिदास के काव्यों की भाषा में बहुत समानता है। गुप्त राजाओं के सिक्कों पर निर्मित मयूर पृष्ठ पर बैठे

कार्तिकेय का वर्णन कालिदास ने अनेक बार किया है। महाकवि का यह पद 'मयूरापृष्ठाश्रयिणा गुहेन' उस स्थिति के कितने निकट है। कुमार तथा स्कन्द का प्रयोग भी कालिदास ने अधिकता से किया है। विक्रमोर्वशीयम् में चार बार तथा रघुवश में तीन बार कुमार शब्द का प्रयोग तथा स्कन्द का प्रयोग रघुवश में दो बार तथा मेघदूत में एक बार मिलता है। गुप्त धातु का प्रयोग भी अनेक बार किया है। रघुवश १/५५, २/२४ ४/२० ४/२६ आदि) ये सभी संकेत उन्हें गुप्त कालीन सिद्ध करते हैं।

इसी मत का समर्थन करते हुए A B Keith ने अपनी पुस्तक 'A History of Sanskrit Literature' में लिखा है कि 'कालिदास को गुप्त शक्ति के उत्कर्ष काल से पृथक् करना कठिन है। वे अश्वघोष और नाटककार भास के परवर्ती थे। वे ग्रीक शब्दों से परिचित थे जैसा कि उनके जामित्र शब्द के प्रयोग से सिद्ध होता है। उनके नाटक की प्राकृत निश्चित रूप से अश्वघोष तथा भास की प्राकृत के बाद की हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जिसके साथ भारतीय परम्परा बराबर कालिदास का सम्बन्ध जोड़ती आयी है।

इन सभी तर्कों से स्पष्ट होता है, कि कालिदास चौथी शताब्दी के अन्त या पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुए थे।

उपर्युक्त मत का निराकरण इन बातों से हो जाता है, कि वत्सभट्टि की कविता पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है। स्वर्ण युग की सम्भावना को लेकर भी यह कह सकते हैं कि गुप्त राजाओं के पूर्व सातवाहनो का शासनकाल भी स्वर्णयुग था। रघु की दिग्विजय की तुलना चन्द्रगुप्त की दिग्विजय से करना भी न्याय सगत नहीं है, क्योंकि यह वर्णन पुराणों में साम्य रखता है। शब्दों का प्रयोग व्यक्ति परक नहीं अपितु सज्ञावाचक एवं क्रियावाचक है। इन सब तर्कों के आधार पर स्पष्ट है कि कालिदास का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से नहीं था। विक्रमादित्य की उपाधि किसी अन्य पूर्ववर्ती राजा के नाम से प्रचलित हुई, वही कालिदास का आश्रय राजा था।

३ ईसा पूर्व द्वितीय शती का मत

ईसा पूर्व द्वितीय शती के मत के समर्थक डा कुम्हन राजा है। उन्होंने अपने मत के समर्थन में मालविकाग्निमित्र के भरत वाक्य को उद्धृत किया है। इसमें प्रयुक्त अग्निमित्र के नाम से डा कुम्हन ने यह अनुमान लगाया है कि कालिदास ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी में हुए थे और शुगवशीय राजा अग्निमित्र की सभा को सुशोभित करते थे जिनकी राजधानी विदिशा थी किन्तु यह मत मान्य न हो सका क्योंकि अग्निमित्र और विदिशा में कोई सामंजस्य नहीं बैठता।

४. ईसा पूर्व प्रथम शती का मत

ईसा पूर्व प्रथम शती के मत के प्रबल पोषक श्री सी वी वैद्य प्रो शारदा रजन राय, श्री शिवराम आपटे, प्रो शेववणेकर, प्रो एम आर काले प्रो क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख हैं। उन्होंने अपने मत के समर्थन में कहा है— कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राज्य सभा में कवि थे। इन्हीं विक्रमादित्य ने आजकल प्रचलित विक्रम संवत् चलाया था, जिसका प्रवर्तन समय ईसा से ५७ वर्ष पूर्व में पड़ता है। अतः सिद्ध होता है कि कालिदास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में वर्तमान थे।" कालिदास को विक्रमादित्य के साथ जोड़ने का भी मुख्य कारण ज्योतिर्विदाभरण का श्लोक है।

इस परम्परा से मिले सकेत के आधार पर विद्वानों ने कालिदास का विक्रमोर्वशीय नाटक में महेन्द्र और विक्रम शब्दों के कई बार प्रयोग में कालिदास द्वारा कथासरित्सागर की कथा को राजा महेन्द्रादित्य और उसके पुत्र विक्रमादित्य को कालिदास का आश्रयदाता माना है। कालिदास और इन राजाओं का शैवमतावलम्बी होना भी इस मत को और अधिक पुष्ट करता है। श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १६१४ ई में प्रकाशित 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि— "आर्ये इयं हि रसभाव विशेषदीक्षागुरो विक्रमादित्य स्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्या हि कालिदासग्रथितवस्तुना नवेनाभिज्ञानशाकुन्तल नामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि नाटक की रचना विक्रमादित्य की राजसभा में खेलने के लिये की गयी होगी—

कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट में डा राजवली पाण्डेय ने अपने लेख में लिखा है कि — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पण्डित केशव प्रसाद मिश्र के पास अभिज्ञानशाकुन्तलम् की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है जिससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास के आश्रयदाता राजा का नाम विक्रमादित्य था तथा उसकी उपाधि साहसाङ्क थी।— सूत्रधार आर्येरसभावविशेषदीक्षागुरो विक्रमादित्य साहसाङ्कस्याभिरूपभूमिष्ठेय परिषत् — विक्रमादित्य का उल्लेख गाथा सप्तशती के निम्न श्लोक में भी मिलता है—

इससे यह स्पष्ट है कि गाथा सप्तशती के रचनाकाल में यह बात स्पष्ट थी कि विक्रमादित्य एक प्रतापी एवं उदार राजा थे, जिन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में सेवकों को लाखों की भेंट दी थी। गाथा सप्तशती महाराणी प्राकृत में लिखी हुई है। एमस्मिथ ने हाल का समय ६८ ई माना है। अतः विक्रमादित्य का समय इससे पूर्व ही मानना उचित होगा। अतः उनका समय ईसा पूर्व प्रथम शती ही सिद्ध होता है।—

मेघदूत में दशार्ण देश की राजधानी के रूप में विदिशा का वर्णन आया है। जिसके विशेषण के रूप में “प्रथित” शब्द का प्रयोग किया गया है— ‘तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणा राजधानीम्’ (पूर्वमेघ/२५) इसका अभिप्राय है कि उस समय राजधानी के रूप में विदिशा दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। १४८ ई पू में विदिशा अग्निमित्र की राजधानी थी। अग्निमित्र को छोड़कर किसी भी राजा की राजधानी के रूप में विदिशा का उल्लेख नहीं मिलता है ६६ ई पू में शुङ्ग वंश का अन्त हो जाने पर विदिशा राजधानी कभी नहीं रही। मेघदूत में राजधानी के रूप में विदिशा का वर्णन कालिदास का इसी के आस-पास होने का संकेत करता है।

भारत के पुरातत्व विभाग की सर्वे सन् १९०६-१० की रिपोर्ट में ४० वे पृष्ठ पर यह सूचना प्रकाशित हुई— The most important work of research

carried out in १६०६-१० was undoubtedly Mr Marshall's excavation in Bhita near Allahabad. The beautiful terra cotta medallion found by Mr Marshall reminds us of a scene from the Shakuntala. In the two men on the quadriga in the centre of medallion, we may perhaps see king Dushyanta and his Charioteer who are being entreated by a hermit not to kill the antelope which was taken refuge in Kanva's hermitage. We note also the hermit's hut and in front of it a girl watering the trees in which may recognise Shakuntala heroine of the play. The medallion which must belong to the Sunga period, is no doubt must anterior to Kalidasa and on that account the identification can not be regarded as certain.

इसका आशय यह है कि १६०६-१० में श्री मार्शल द्वारा इलाहाबाद के निकट “भीटा” नामक स्थान से खुदाई में एक मिट्टी का पदक प्राप्त हुआ जिस पर एक चार घोड़ों वाला रथ, उस पर बैठे हुए दो व्यक्ति जो दुष्यन्त और उसका सारथि हैं देख सकते हैं जिसमें एक साधु ऋषि कण्व के आश्रम के पालतू मृग को न मारने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। उसी पदक में एक ऋषि की कुटिया देखते हैं, जिसके सामने एक कन्या वृक्षों को सींच रही है। यह कन्या सम्भवतः नाटक की नायिका शकुन्तला है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह पदक शुङ्ग काल (१८० ई पू से ७२ ई पू) का है।—

यह पदक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अङ्क के वर्णन में अत्यधिक मिलता है। पदक के उक्त विवरण से उक्त बात की प्रतीति होती है कि यह शुङ्ग काल में बनाया गया था जिसका समय ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध है अतः इस समय से कालिदास का समय ई पू प्रथम शताब्दी मानने में कोई सन्देह की आशंका नहीं रही। कालिदास और अश्वघोष की रचनाओं की भाषा और भावों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि अश्वघोष ने कालिदास का अनुसरण किया है। अश्वघोष का समय कनिष्क का समय (प्रथम शताब्दी) माना जाता है, अतः कालिदास (जो कि अश्वघोष के पूर्ववर्ती है) का समय ईसा पूर्व प्रथम

शताब्दी मानने में कोई अनौचित्य दिखाई नहीं पड़ता।— प्रो आप्टे महोदय ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के दो अन्तरङ्ग प्रमाण उद्धृत कर कालिदास का समय निश्चित किया है— एक तो छठे अंक में नि सन्तान श्रेष्ठी धनदत्त की मृत्यु पर सूचना मिलती है— की मृत्यु पर सूचना मिलती है— समुद्रव्यवहारी सार्ववाहो धनमित्रे नाम नौव्यसने विपन्न । अनपत्यश्च किल तपस्वी । राजा आदेश देता है— विचार्यता यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु भवेत् ।’ इससे स्पष्ट पता चलता है कि कालिदास के समय में विधवा पत्नी को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकार नहीं था, किन्तु गर्भस्थ बालक माता—पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी था । धर्मशास्त्रकारों ने धीरे—धीरे विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया है । मनु आपस्तम्ब और वशिष्ठ विधवा स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं करते जबकि सर्वप्रथम बृहस्पति तथा आगे चलकर शङ्ख, याज्ञवल्क्य और लिखित आदि ने उसको उत्तराधिकारी स्वीकार किया है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् का समय बृहस्पति से पूर्व तथा मनु और आपस्तम्ब के बाद का स्वीकार कर सकते हैं । डा पी वी काणे ने बृहस्पति का समय ३०० ई पू से ५०० ई पू तथा मनु का समय २०० ई पू से १०० ई तक माना है । अतः कालिदास को ५६ ई पू के आस—पास रखा जा सकता है । दूसरा प्रमाण अभिज्ञानशाकुन्तलम् के छठे अङ्क में चोरी के लिये दिया जाने वाला दण्ड । उससे पता चलता है कि बहुमूल्य आभूषण की चोरी करने के अपराध में मृत्युदण्ड की व्यवस्था है । मनु से याज्ञवल्क्य तक के स्तेय विषयक विधान पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि बहुमूल्य आभूषण की चोरी करने के अपराध में मृत्युदण्ड की व्यवस्था है । मनु से याज्ञवल्क्य तक के स्तेय विषयक विधान पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि बहुमूल्य आभूषण को चुराने के अभियोग में दिया जाने वाला मृत्युदण्ड अर्धदण्ड में परिवर्तित हो गया । मनु (८/३२३) और आपस्तम्ब ने इस प्रकार के अपराध के लिये मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है जबकि बृहस्पति केवल अर्धदण्ड का विधान करते हैं । अतः कालिदास का समय ५६ ई पू प्रथम शताब्दी निश्चित होता है ।— कालिदास के समय के सम्बन्ध में एक नवीन तथ्य प्रकाश में आया है जिसका श्रेय डा एकांत बिहारी को है । १८ अक्टूबर

१६६४ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के अंक में इससे सम्बन्धित कुछ सामग्री प्रकाशित हुई। उज्जयिनी से कुछ दूरी पर भैरवगढ नामक स्थान से मिली हुई शिप्रा नदी की तटस्थ भूमियों में गहरी खाइयाँ विद्यमान हैं। वर्षा के कारण मिट्टी के बह जाने से वहाँ दो शिलाखण्ड मिले। इन शिलाखण्डों पर कालिदास से सम्बन्धित कुछ लेख अंकित हैं। इनका अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कालिदास अवन्ति देश में उत्पन्न हुए थे और उनका समय शुङ्ग राजा अग्निमित्र से लेकर विक्रमादित्य तक रहा होगा। इन दोनों शिलालेखों में से एक शिलालेख गद्य में है जो त्रुटित है इसमें नौ कुछ पढ़ा जा सका है निम्न है।

प्रथम पक्ति— जयति व्योम ।

द्वितीय पक्ति— राजच्छी शीर्षाम्भ (मि) महोजा ।

तृतीय पक्ति—श्रीमद्विक्रम शासिति शिप्रातरङ्गोज्ज्वले ।

तथा अन्त में लिखा है कि— ६४ वत्सरे श्री हरिस्वामिनो आज्ञा ।

इस शिलालेख से केवल इतना ही आभास होता है कि यह शिलालेख महाराज विक्रम की आज्ञा से हरिस्वामी नामक किसी अधिकारी के आदेश से खुदवाया गया था।

दूसरे शिलालेख से कालिदास के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है यह पद्य में लिखा गया है यह शिलालेख निम्न है—

जयति कविमूर्धन्य कालिदासो द्विजोत्तम ।

अवन्तीप्रभव श्रीमान् गुणगौरवमण्डित ॥

पूजितश्चाग्निमित्रेण राज्ञा शुङ्गसूतेन च ।

विदिशायाम् राजकुर्यात् मालवेन्द्रसुशोभिताम् ॥

निवसन् कृतवान् काव्य नाटक च सुधीरयम् ।

ऋतुसंहारमारभ्य मेघदूत मनोरमम् ।

नाटक चाग्निमित्रस्य रघुवशमत परम् ।

शाकुन्तल सुललितमुर्वशीय तु वैक्रमम् ।।

कुमारसम्भवकथा पद्यवद्धामरीरचत् ।

ग्रन्थसप्तकस्रष्टायमरत्त्वमवाप्तवान् ।।

विनयाद् वामन सोडय महनीयतपोऽभवत् ।

राज्ञा समादृत सख्य श्रेष्ठ स्वीकृतवानयम् ।।

तत पर महाप्राज्ञो नीतिमान् समुदारधी ।

शासकोऽसौ महावीरो विक्रमोऽभूत् महीतले ।।

भूभृता विक्रमार्केण पूजितश्च द्विजाग्रणी ।

अजरामरवन्मान्य कालिदास कलानिधि ।।

पृथिव्यामीदृश कोऽपि न भूतो न भविष्यति ।

विद्यावैभवसम्पन्न कविसम्राट् रसेश्वर ।।

पञ्चाधिक नवत्यन्तमय काव्यकलाधर ।

रत्नालङ्काररुचिरैरर्चया मास भारतीम् ।।

कृतसवत्सरस्यान्ते विक्रमारम्भत पुरा ।

पञ्चत्वमगमच्छ्रीमान् महाकालस्य सन्निधौ ।।

कार्तिकैकादशी शुक्ला रविवासरसयुक्ता ।

कविकीर्तिमयी भूमौ कौमुदीव विराजते ।।

उपयुक्तं श्लोको का भाव यह है कि महाकवि कालिदास अवन्ती मे हुए तथा वहाँ विदिशा नाम की नगरी मे शुडग पुत्र अग्निमित्र द्वारा इनका सम्मान किया गया था । इन्होने ऋतुसंहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, रघुवश अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा कुमारसम्भव— इन सात ग्रन्थो की रचना की । महाकवि ने अपने

जीवन का अन्तिम समय महाराज विक्रमार्क (विक्रमादित्य) के आश्रय में व्यतीत किया था। कृत सवत के अन्त में तथा विक्रम सवत के प्रारम्भ में कार्तिक शुक्ला एकादशी रविवार के दिन ६५ वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई।—

उपर्युक्त श्लोको से यह स्पष्ट है कि इनके जीवन का अन्तिम समय अवन्ती में विक्रमादित्य के आश्रय में बीता। इतिहासकारों ने शुङ्गवशीय अग्निमित्र का समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी माना है। अतः कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी माना जा सकता है।

उपर्युक्त सभी मतों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास का समय ईसा पूर्व ५६ वर्ष मानना अधिक उचित होगा।

जन्म स्थान

कवि के अविर्भाव काल के समान उनकी जन्मभूमि भी अन्धकारमय है। उनका अविर्भाव किस स्थान में एवं किस देश में हुआ इसका प्रामाणिक उत्तर देना आज भी कठिन समस्या बनी हुई है क्योंकि कवि की रचनाओं के अस्पष्ट अन्त साक्ष्यों के अतिरिक्त कोई भी अन्य ऐसे निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नहीं होते जिसके आधार पर इन समस्याओं का उचित समाधान प्रस्तुत किया जा सके।

महाकवि की रचनाओं के आधार पर उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में चार मत प्रसिद्ध हैं।

प्रथम मतानुसार उनका सम्बन्ध मगध देश से जोड़ा जाता है। रघुवश में सुदक्षिणा को मागधी एवं दिलीप को मागधीपति सम्बोधित किया गया है। सुमित्रा को भी मगध—राजकन्या कहा गया है। रघु—दिग्विजय में मगधेश्वर की हार कवि उनके प्रति आदर भाव प्रदर्शित करता है। इन्दुमती स्वयम्बर में भी मगधेश्वर को प्रथम स्थान दिया गया है। इस मत के समर्थक विद्वानों का विचार है कि कवि के समय में और भी कई राजवंश पुष्पित एवं पल्लवित हो रहे थे, तब फिर क्यों उक्त दोनों महारानियों का सम्बन्ध मगध से ही जोड़ा गया तथा मगध के ही प्रति विशेष लोभ क्यों प्रकट

किया गया है। इस मत के विरोध में विद्वानों का यह तर्क है सम्भवतः राज्याश्रित होने के कारण कवि को कर्तव्यवश मगध के राजदरबार में तथा अन्य स्थानों में भी रहना पड़ा होगा अतएव कवि के हृदय में वहाँ के प्रति असाधारण श्रद्धा तथा भक्ति उत्पन्न हो गयी होगी जिसे उसने अपने काव्य में प्रकट किया। परन्तु इसके आधार पर उन्हें मगध—निवासी कदापि नहीं स्वीकारा जा सकता है।

अपने ग्रन्थ *The Birth Place of Kalidas* में दूसरा मत प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला का है। कालिदास को कश्मीर निवासी घोषित करते हैं। उनका कथन है कि “मेघ यक्ष का सन्देश लेकर उत्तर दिशा को जाता है और कश्मीर की स्थिति भी उत्तर में है। कवि द्वारा वर्णित भौगोलिक स्थानों— कण्वाश्रम, कश्यपाश्रम, गङ्गा मालिनी, शमीतीर्थ, ब्रह्मसरादि सभी नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर में ही स्थित हैं। कुछ सामाजिक रीति—रिवाजों व्यवहार विश्वासों जिनका वर्णन कवि ने किया है। वे आज भी कश्मीर में प्रचलित हैं। उनके ग्रन्थों में शैवधर्म के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जो केवल कश्मीर की ही देन हैं। सूर्यपूजा, केसर तथा धान की खेती के तथ्यपूर्ण वर्णन भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कालिदास कश्मीर निवासी थे।

इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि कवि कश्मीर निवासी नहीं हैं। कवि द्वारा कथित भौगोलिक स्थानों का आधार नीलमत पुराण न होकर महाभारत है। दूसरी बात, उक्त रीति—रिवाज केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं हैं तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन वाली उक्ति को प्रो. कीथ स्वीकार नहीं करते।

तीसरामत है कि कुछ बङ्गाली विद्वान कालिदास को बङ्गाल निवासी मानते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वे यह प्रस्तुत करते हैं कि उन्होंने धान की खेती का वर्णन सुन्दर रूप में किया है।

किन्तु यह बात न्यायोचित नहीं ठहरती, क्योंकि कवि ने रघु की दिग्विजय के अवसर पर बङ्गाल की पराजय का वर्णन बड़ी निर्ममता से किया है। किसी भी व्यक्ति को अपनी जन्मभूमि के विषय में कठोर बात कहना रुचिकर नहीं होती क्योंकि मातृभूमि के प्रति व्यक्ति का प्रेम स्वाभाविक होता है।

चौथा मत उनके उज्जैन निवासी होने के पक्ष में है। ऋतुसंहार में ऋतुओं प्राकृतिक प्राकृतिक दृश्यो तथा मानव जीवन का वर्णन मध्यभारत (मालवा प्रदेश) के जलवायु के अनुरूप हुआ है। यत्र—तत्र विन्ध्याचल का वर्णन स्पष्ट मिलता है। मेघदूत में जिन ३१ नगर पर्वत नदी, दृश्य तथा मानव जीवन आदि का वर्णन मिलता है उनमें से १७ मध्य भारत से सम्बन्धित है। उज्जयिनी महाकवि के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री तथा स्मिथ इसी मत के समर्थक हैं।—

उपर्युक्त मतों का पर्यवेक्षण करते हुए यह कहा जा सकता है कि कालिदास के निवास का औचित्य उज्जयिनी के साथ है और मालवा से भी उनका सम्बन्ध रहा होगा। क्योंकि कवि मेघ के अलकापुरी तक जाने के मार्ग का निर्देश करता हुआ कहता है— 'यद्यपि तुम्हारे मार्ग से उज्जयिनी का मार्ग टेढ़ा अवश्य पड़ेगा फिर भी तुम उज्जयिनी होते हुए जाना'। इस कथन से ऐसा लगता है कि कवि को उज्जैन के प्रति विशेष आकर्षण था और उसने अपने जीवन का अधिकांश समय वहीं व्यतीत किया होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः कालिदास का जन्म उज्जैन या उज्जयिनी के प्रान्तरभाग में हुआ होगा।

व्यक्तित्व

कालिदास के काव्य का मन्थन करने से यह अनुमान होता है कि उनके जीवन का अधिकांश भाग समाज के उच्च स्तरीय परिवार या राज्याश्रय में व्यतीत हुआ था। अतएव वह तत्कालीन समाज के शिष्ट—व्यवहार, परिष्कृत भाषा तथा रीति तथा नीति में सिद्धहस्त थे। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। रस—छन्द—अलंकार के वह गूढ़ अध्येता एवं पण्डित थे। उपमा का चरम लक्ष्य उनके काव्यों में परिलक्षित होता है।

कालिदास जाति के ब्राह्मण एवं परम् शिवभक्त थे। कवि हृदय की कोमल सवेदनाओं से युक्त होते हुए भी वे राजनीतिक कूटनीति के सम्यक् ज्ञाता एवं वाक्पटु विद्वान् थे। प्रकृति एवं मानवीय भावनाओं के सूक्ष्म निरीक्षक थे। भौगोलिक ज्ञान के तो भण्डार ही थे। उनके काव्यों में वैदिक, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, सूत्रों, रामायण,

महाभारत पुराण, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रो साख्य न्याय, वैशेषिक इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थो तथा आयुर्वेद ज्योतिषि विद्या अर्थशास्त्र कामसूत्र नाट्य अलङ्कार व्याकरण शास्त्रो संगीत शास्त्र त्रिभाषादि कलाओ कोष छन्दशास्त्र तथा इतिहास का सूक्ष्म एव न्यायोचित परिचय मिलता है।—

कृतिया

संस्कृत साहित्याकाश मे, कवि शिरोमणि कालिदास के काव्यो का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। आफ्रेक्ट महोदय ने वृहद् संस्कृतग्रन्थ सूची मे कालिदास के नाम से अनेक ग्रन्थो का उल्लेख किया है। कालिदास ने ४१ ग्रन्थो की रचना की, ऐसा माना जाता है।^१

कालिदास ने कितने ग्रन्थो की रचना की यह भी एक विवादित प्रश्न है। इस विवाद का कारण है संस्कृत साहित्याकाश मे एक से अधिक कालिदासो का होना। राजशेखर १०वीं शताब्दी ई— तक कम से कम तीन कालिदास हो चुके थे—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

शृङ्गारे ललितोदगारे कालिदासत्रयी किम्।।

परन्तु सभी विद्वान रस मत से सहमत नहीं है। जिस पर विद्वान एकमत है, ऐसी रचना तो केवल छ ही है— रघुवश, कुमार सम्भव, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा विक्रमोर्वशीयम्। सप्तम् रचना ऋतुसंहार को कुछ विद्वान कालिदासकृत नहीं मानते। इसका कारण है कि उसकी शैली अन्य छ ग्रन्थो जैसी नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह कालिदास की प्रथम कृति है इसलिये उसकी भाषाशैली का स्तर उतना ऊँचा न हो जितना अन्य कृतियो का। इस पर मल्लिनाथ की टीका भी

१— (१) रघुवश, (२) कुमारसम्भव, (३) मेघदूत, (४) विक्रमोर्वशीय, (५) मालविकाग्निमित्रम्, (६) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (७) ऋतुसंहार, (८) कुन्तलेश्वरदौत्य, (९) अम्बास्तव, (१०) कालीस्तोत्र, (११) कल्याणस्तोत्र (१२) काव्यनाटकालङ्कार, (१३) , (१४) गगाष्टक, (१५) घटकर्पर, (१६) चर्चास्तव, (१७) चण्डिकादण्डकस्तोत्र (१८) ज्योतिर्विदाभरण, (१९) दुर्षटकाव्य, (२०) नलोदय (२१) नवरत्नमाला, (२२) पुण्यबाणविलास, (२३) मकरन्दस्तव, (२४) , (२५) मगलाष्टक, (२६) महपद्याष्टक, (२७) रत्नकोश, (२८) राक्षसकाव्य, (२९) लक्ष्मीस्तव, (३०) लघुस्तव, (३१) विद्वद्विनोदकाव्य, (३२) वृन्दावन काव्य, (३३) वैद्यमनोरमा, (३४) शुद्धिचन्द्रिका, (३५) वृन्दावन काव्य, (३६) वैद्यमनोरमा, (३७) शुद्धिचन्द्रिका, (३८) शृङ्गारसारकाव्य, (३९) श्यामलादण्डक, (४०) श्रुतबोध, सप्तश्लोकी, (४१) रामायण, (४२) सेतुबन्ध।

नहीं है। चाहे कारण जो भी हो परन्तु अतः यह लगभग निश्चित है कि यह कालिदास की ही कृति है ऐसा डा. मिराशी^१ डा. कपिल देव द्विवेदी^२ आदि विद्वान भी मानते हैं इसके अतिरिक्त डा० मिराशी ने अपनी पुस्तक कालिदास में रावण वध सेतुबध नामक महाकाव्य को कालिदास प्रणीत माना है। इस काव्य की भाषा शैली प्रसाद गुण युक्त तथा सरल है किन्तु यह काव्य है विचार करने पर यह सिद्ध हो चुका है कि यह काव्य कालिदास प्रणीत न होकर प्रवरसेन द्वारा रचित है।

ऋतुसंहार

कालिदास कृत काव्यों में ऋतुसंहार प्रारम्भिक ग्रन्थ माना जाता है। कई विद्वानों को सन्देह है कि कदाचित् उक्त काव्य कालिदास द्वारा सर्जित नहीं है। क्योंकि यह काव्य कालिदास के नैतिक गुणों से रहित है। भाषा शैली अत्यन्त साधारण होने के साथ साथ वैचित्र्य से रहित है। काव्य का वर्ण्यविषय स्वतः बोधगम्य हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उच्चकोटि के टीकाकारों ने कालिदास के अन्य काव्यों की टीका तो की है, परन्तु उन्होंने इसकी टीका नहीं प्रस्तुत की है। साहित्य शास्त्रियों ने भी इसकी एक भी पंक्ति उद्धृत नहीं की। अतएव उनके लिये भी यह उपेक्षा का विषय रहा।

परन्तु पाश्चात्य विद्वान इससे कालिदास की कृति ही मानते हैं। उपर्युक्त आपत्तियों का उत्तर वे इस प्रकार देते हैं— टीकाकारों ने इसकी व्याख्या इसलिये नहीं की क्योंकि यह महाकवि के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा सरल एवं बोधगम्य है, अतएव उन्होंने इसकी टीका की आवश्यकता नहीं समझी साहित्यशास्त्रियों ने इसका उद्धरण इसलिये नहीं दिया क्योंकि वे सरल ग्रन्थों से उद्धरण नहीं देते।

उपर्युक्त इन विभिन्न प्रकार के वैमत्यों में कितनी वास्तविकता है कितनी नहीं— यह एक अलग विषय है, परन्तु इतना अवश्य है कि ऋतुसंहार कालिदास की ही कृति है। हाँ यह कालिदास के आरम्भिक काव्य की रचना है। जिस प्रकार

१ कालिदास— डा. मिराशी (पृष्ठ ६७)

२ अभिज्ञान शाकुन्तलम् की भूमिका (सम्पादक, डा. कपिल देव द्विवेदी पृष्ठ १४)

युवावस्था और प्रौढ़ावस्था में बहुत अन्तर होता है इसी प्रकार ऋतुसंहार एव उनकी अन्य रचनाओं में शिल्प कलादि सभी त्रुटियों से महानान्तर है।

ऋतुसर्ग में ६ सर्ग तथा १४४ पद्य हैं। प्रत्येक सर्ग में १६ से २८ तक श्लोक सख्या है। इसमें षडऋतुओं— ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर तथा वसन्त इत्यादि का मनोहर वर्णन मिलता है। महाकाव्यों तथा नाटकों में यत्र—तत्र स्फुट रूप में अथवा प्रसंगवश ही ऋतुओं का वर्णन आया है किन्तु सम्पूर्ण काव्य साहित्य में ऋतुओं का ऐकात्मिक वर्णन एकमात्र ऋतुसंहार में ही प्राप्त होता है।

उन ऋतुसंहार में ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन रूप से हुआ है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन में, उस ऋतु का वृक्ष लताओं और पशु—पक्षियों पर घटित प्रभावों तथा उनके आगमन से कामी जनो की चित्तवृत्ति और व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तनों उनके हृदयों में उठने वाले विभिन्न प्रकार के विचारों का वर्णन कवि ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से किया है।

ग्रीष्म ऋतु सूर्य के प्रचण्ड आतप और चन्द्रमा की स्पृहणीय ज्योत्सना के साथ आती है। कामिनियाँ उज्ज्वल रत्नों और दीप्ति कौशेय वस्त्रों से विभूषित हो, ऋतु की शोभा में चार चौद लगाती हैं। अर्धरात्रि में युवक वर्ग गीत, नृत्य एव सुरा में आनन्द का अनुभव करते हैं। युवकों के प्रेम की ईर्ष्या से शोकाकुल निशाकर भी छिप जाता है।

वर्षाकाल

वर्षाकाल राजा रूप धारण कर आता है। शस्य श्यामलता बसुन्धरा युवा कामिनीवत् प्रतीत होते हैं। 'नदिया यवनोन्मत चचल युवतियों की भाति बड़े वेग से समुद्र का आलिङ्गन करने जा रही हैं। चतुर्दिशाओं में मधुर ध्वनि गुजित हो रही है। चपला अधेरी रात्रि में प्रिय समागम के लिये विह्वल अभिसारिकाओं का पथ प्रदर्शन कर रही है।' कितना मनमोहक वर्णन कवि ने किया है।

कालिदास ने कितने सुन्दर ढग से शरद् की प्रणय व्यजना का कथन किया है।

असितनयनलक्ष्मी लक्षयित्वोत्पलेषु

क्वणितकनककाची मत्तहसस्वनेषु।

अधररूचिरशोभा बन्धुजीवे प्रियाणा

पथिकजन इदानी रोदिति भ्रान्तचित ॥ (३/२६)

शरद् वर्णन नि सन्देह ऋतुसहार का श्रेष्ठ अंश है।

चतुर्थ तथा पचम सर्ग में कवि ने हेमन्त और शिशिर ऋतु का वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन पूर्व तीन सर्गों की अपेक्षा मनोहर नहीं है तथा यत्र—तत्र शिथिलता आ गयी है। इन ऋतुओं में प्रकृति सुन्दरी के नेत्राल्हादक पुष्पादि अलंकार परिलक्षित नहीं होते, अतएव ४ ५ श्लोको में ही कवि ने प्रकृति गाथा को समाप्त कर दिया है। शेष श्लोको युवक—युवतियों की मधुर हाव—भावों तथा लीला विन्यासों का हृदयाकर्षक वर्णन है।

अतः कवि ने मनोहर एवं रमणीय वसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्राण है। यह अपने ढग का अद्वितीय वर्णन है। इस ऋतु का इतना आह्लादकारी वर्णन इतनी सरल एवं सुलझी हुई भाषा में शायद ही अन्यत्र किया गया हो। इस ऋतु में वृक्ष पुष्पयुक्त, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनियां कामयुक्त पवन परिमलयुक्त, सन्ध्याकाल सुखकारी, तथा दिन रमणीय होते हैं।

मेघदूत

यह महाकवि कालिदास कृत लघुत्रयी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मेघदूत समस्त संस्कृत गीतिकाव्य साहित्य का परम उज्ज्वल रत्न है। एक विरही यक्ष की मार्मिक मनोव्यथाओं के अभूतपूर्व चित्रण ने इस काव्य को अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो प्रधान भागों में विभाजित है।— पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ। इस ग्रन्थ का विस्तृत वर्णन लघुत्रयी का परिचय नामक अध्याय में किया जायेगा।

कुमारसम्भव

कालिदास की लेखनी से प्रसूत महाकाव्यों की सारणी में कुमार सम्भव को प्रशसनीय स्थान प्राप्त है । इस ग्रन्थ में उमा शिव के विवाह तथा कार्तिकेय की उत्पत्ति का प्रतिभा चमत्कृत वर्णन है । यह ग्रन्थ लघुत्रयी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । महर्षि अरविन्द के कथनानुसार प्राक्तन संस्कृत साहित्य में कुमार सम्भव को वही महनीय स्थान है जो आङ्ग्ल साहित्य में मिल्टन के पैराडाइज लास्ट का । इस महाकाव्य का विशद वर्णन लघुत्रयी का परिचय में किया जायेगा ।

रघुवश

क इह रघुकारे न रमते

रघुवश कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है इसमें उनकी परिपक्व प्रज्ञा एवं प्रौढ़ प्रतिभा के दर्शन होते हैं । रघुवश में १६ सर्ग तथा २६ सूर्यवशी राजाओं का यशोगान है । यह महाकाव्य लघुत्रयी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि 'यह महाकाव्य उपदेशात्मक दृष्टिकोण भी रखता है । उन्हें के शब्दों में प्रकृतिरजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृति-हिसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है । रघुवश काव्य लिखने का सम्भवतः यही कारण था ।'

मालविकाग्निमित्रम्

यह शृङ्गाररस प्रधान ५ अंकों का नाटक है । यह कालिदास की प्रथम नाट्य कृति है, इसलिये इसमें वह लालित्य, माधुर्य एवं भाव गाम्भीर्य दृष्टिगोचर नहीं होता जो विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में है । विदिशा का राजा अग्निमित्र इस नाटक का नायक है तथा विदर्भराज की भगिनी मालविका इसकी नायिका है । इस नाटक में इन दोनों की प्रणय कथा है । डा. रमाशंकर तिवारी^१ ने इस नाटक के

१. कालिदास— डा. रमाशंकर तिवारी पृष्ठ २६६

विषय में लिखा है। “वस्तुतः यह नाटक राजमहलो में चलने वाले प्रणय षड्यन्त्रों का उन्मीलक है तथा इसमें नाट्यक्रिया का समग्र सूत्र विदूषक के हाथों में समर्पित है।

गौतम को निकाल दीजिये तो अग्निमित्र निष्प्रभ बन जायेगा वैसे भी अग्निमित्र का जो चित्र चित्रित हुआ है न प्रणय वेग में न प्रणय धनत्व में अन्य गुणों की बात ही क्या ? कालिदास ने प्रारम्भ में ही सूत्रधार से कहलवाया है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्तरदभजन्ते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ १/२

अर्थात् पुरानी होने से ही न तो सभी वस्तुएँ अच्छी होती हैं और न नयी होने से बुरी अथवा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठतम वस्तु को अङ्गीकार कर लेते हैं और मूर्ख लोग दूसरों के बताने पर ग्राह्य अथवा आग्राह्य का निर्णय करते हैं।—

अध्यापक का वास्तविक चित्रण खींचते हुए कवि का कथन द्रष्टव्य है।

लब्धास्पदोऽस्मीति विवाद भीरोस्ति क्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागम केवलजीविकायै त ज्ञानपण्यं वणिज वदन्ति ॥ १/६६

अर्थात् ‘जो अध्यापक शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के अँगुली उठाने पर चुप रह जाता है तथा केवल पेट के लिये विद्या पढाता है वह पण्डित नहीं, अपितु ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलायेगा।

वस्तुतः यह नाटक नाट्य साहित्य के वैभवशाली अध्याय का प्रथम पृष्ठ है।

विक्रमोर्वशीयम्

यह पाँच अंकों का एक त्रोटक (उपरूपक) है, इसमें राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। मालविकाग्निमित्र की अपेक्षा इस नाटक में कवि की नाट्यकला का सुन्दर विकास हुआ है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है, पात्रों की संख्या कम है। इसकी कथा ऋग्वेद (१०/६५) तथा शतपथ ब्राह्मण

(११/५/१) से ली गयी है। महाकवि कालिदास ने इस नाटक को मानवीय प्रेम की अत्यन्त मधुर एवं सुकुमार कहानी में परिणत कर दिया है। वस्तुतः डा. रमाशंकर तिवारी का यह कथन कितना सटीक है कि— कालिदास ने प्रस्तुत नाटक में एक तप्त लोहे को दूसरे तप्त लोहे से जोड़ दिया है। इसके प्राकृतिक दृश्य बड़े रमणीय हैं। भाषा प्रसादगुण युक्त और स्वाभाविक अलङ्कारों से अलङ्कृत है। इस नाटक के सम्बन्ध में हेनरी वेल्स का कथन भी द्रष्टव्य है। ऑग्ल कवि वाइरन ने मनुष्यों तथा फरिश्तों के प्रेम का वर्णन करने वाले अपने नाटक को स्वर्ग और पृथिवी (Heaven and Earth) का जो शीर्षक प्रदान किया था वह इस नाटक को भी दिया जा सकता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

यह महाकवि की सर्वोत्कृष्ट रचना है जिसे न केवल भारतीय अपितु पूरे विश्व साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय आलोचकों के मतानुसार काव्यों में नाटक सुन्दर होता है, तथा नाटकों में शाकुन्तल सुन्दर है— काव्यों में नाटक रम्य तत्र रम्या शकुन्तला ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में सात अंक हैं जिनमें हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त तथा कण्वऋषि की पालिता कन्या शकुन्तला के मिलन वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा का नाटकीय चित्रण अत्यन्त सजीवता एवं कमनीयता के साथ किया गया है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व से लिया गया है। महाकवि कालिदास ने मूल कथा में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन कर अत्यन्त रोचक बना दिया है। कथानक का शारांश इस प्रकार है।

हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए कण्वऋषि के आश्रम में जाते हैं जहाँ शकुन्तला से उनका मिलन होता है। राजा तथा शकुन्तला का समागम होता है। उसे अपनी अगूठी देकर वापस लौट आते हैं। शकुन्तला उनके वियोग में खिन्न बैठी रहती है। एक दिन दुर्वासा उनके आश्रम में जाते हैं किन्तु शकुन्तला दुष्यन्त के विषय में चिन्तित होने के कारण अतिथि सत्कार नहीं करती। दुर्वासा शकुन्तला को

शाप देते हैं कि दुष्यन्त तुम्हें भूल जायेगा। कण्वऋषि शकुन्तला को शिष्यो के साथ हस्तिनापुर भेजते हैं। मार्ग में अँगूठी गिर जाती है। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त उसे भूल जाते हैं। दिव्य ज्योतिः स्वर्ग लोक उठा ले जाती है वहाँ पर माता मेनका के साथ मारीच के आश्रम में रहने लगती है। कुछ समय पश्चात् भरत नामक पुत्र उत्पन्न होता है। अन्त में मारीच के आश्रम में जाकर भरत तथा शकुन्तला को प्राप्त कर दोनों के साथ राजधानी वापस आता है। मिलन तथा मारीच के आशीर्वाद से नाटक की समाप्ति होती है।—

शाकुन्तलम्

शाकुन्तलम् में कालिदास ने प्रेम तथा करुणा का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया है। शकुन्तला के प्रतिगृह गमन कवि ने जैसा करुण चित्र अंकित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कण्व जैसा वीतराग तपस्वी भी उसकी विदाई के अवसर पर शोकाकुल एवं भाव विह्वल हो जाता है तो सामान्य गृहस्थों की बात ही क्या है।—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया ।

कण्ठ स्तम्भित वाष्प वृत्तिक्लुषश्चिन्ता जड दर्शनम्

वैक्लव्य मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकस

पीडयन्ते गृहिण कथं न तममा विश्लेषदुःखैर्नवै ।।—

महाकवि कालिदास का प्रकृति चित्रण अत्यन्त उच्च कोटि का है। प्रकृति तथा मनुष्य के बीच घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध का प्रदर्शन यहाँ प्राप्त होता है। शकुन्तला के विदाई के अवसर पर सम्पूर्ण वनस्थली शोकाकुल है। वृक्ष मृग आदि शोकाकुल हैं। प्रकृति तथा मनुष्य के सम्बन्ध का ऐसा मार्मिक चित्रण अत्यन्त दुर्लभ है।—

पातु न प्रथम व्यवस्पति जल युष्मास्वपीतेषु या,

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।

आद्ये व कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सव,

सेय याति शकुन्तला प्रतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

शकुन्तला के वियोग मे सारा तपोवन दु खी है। इसका वर्णन इस श्लोक मे चित्रित किया गया है।—

उदगलितदर्भकवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूरी ।

अपसृतपाण्डुपत्रामुञ्चन्त्यश्रुणीव लता ।। अ०शा० ४/१२

महाकवि कालिदास शृङ्गार रस के सिद्ध कवि है। शृङ्गार के दोनो पक्षो सयोग तथा वियोग का चित्रण बडी कुशलता के साथ किया है। उपमाओ के प्रयोग मे वह दक्ष है इस दृष्टि से उनकी बराबरी का कोई अन्य कवि नही है। शकुन्तला के विदाई के अवसर पर कण्व ने कन्या की तुलना बन्धक रखे धन से की है तथा कण्व के मुख से उपमा का कितना सुन्दर वर्णन करवाया है।

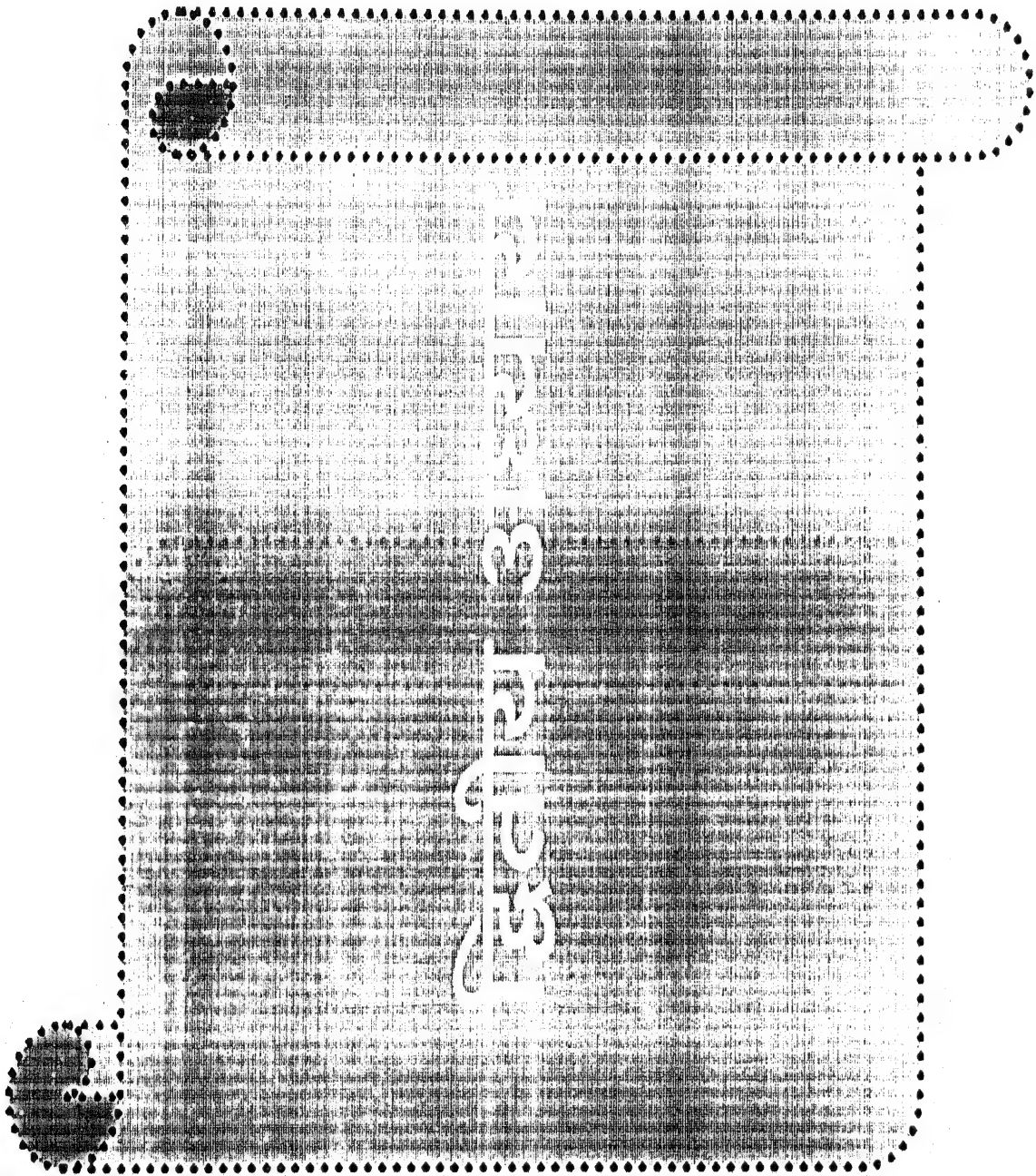
अर्थो हि कन्या परकीय एव, तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतु ।

जातो ममाय विशद प्रकाम प्रत्यर्पित न्यास इवान्तरात्मा ।। अ०शा० ४/२२

भारतीय आलोचको ने उपमा कालिदासस्य कहकर इस महाकवि के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रशंसा करते हुए जर्मन कवि गेटे ने यह उद्गार व्यक्त किये है— 'यदि यौवन बसन्त का पुष्प सौरभ तथा इनके अन्त के फलो को देखना चाहते हो, यदि वह सब देखना चाहते हो, जिससे आत्मा आकर्षित मुग्ध तथा तृप्त होती है। यदि स्वर्ग तथा पृथ्वी के ऐश्वर्य को एक साथ पाना चाहते हो तो मैं शाकुन्तल का नाम लूंगा और उसके साथ ही सब कुछ कह दिया जायेगा।'





शैली-परिभाषा एवं स्वरूप

साहित्य सङ्गीत एवं कला जीवन की वह अनुभूति है जो मानवता का शृङ्गार ही नहीं अपितु निर्माण भी करती है। साहित्य शब्द और अर्थ का वह मञ्जुल गुफन है जहाँ रमणीयार्थ प्रतिपादन के लिये शब्द और अर्थ में प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। सौन्दर्य जीवन का वह परम तत्त्व है जहाँ मानव को ऐन्द्रिय सुख ही नहीं वरन् आत्मानन्द की प्राप्ति भी होती है। साहित्य का सम्पूर्ण प्रयास सौन्दर्याभिव्यक्ति में निहित रहता है। सौन्दर्य में कला की विविधता और आत्मा की अभिव्यक्ति इस प्रकार प्रस्फुटित होती है जिसे देखकर सहृदय ब्रह्मानन्द सहोदर या वेद्यान्तर शून्यता की स्थिति का अनुभव रहता है। जब से साहित्य का सृजन हुआ और जब तक इसका विस्तार होता रहेगा तब तक किसी न किसी रूप में सौन्दर्य का प्रतिपादन होता रहेगा। इस सौन्दर्य को लोगो ने भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिपादित करने का प्रयास किया है किन्तु इसकी वाङ्मयी मूर्ति है।—

इस सौन्दर्य-प्रतिपादन में शब्द इसका वाह्य तत्त्व है और अर्थ आन्तरिक। इसी आन्तरिक तत्त्व में काव्य की आत्मा है जिसे लोगो ने समय-समय पर विभिन्न नामों से विवेचित किया है। काव्य का वाह्य-तत्त्व कवि की अद्वितीय अर्थ सम्पदा है। इसी अर्थ-सम्पदा से साहित्यिक जगत् प्रकाशित होता रहता है।—

साहित्यिक अभिव्यजना कला की परिणति है। अभिव्यजना की विशिष्ट पद्धति कही जाती है। शैली सामान्य और विशेष दोनों अर्थों में प्रयुक्त होती है। वेदों से लेकर यदि आज तक के साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह एक ही शैली शब्द अर्थ विविधता के साथ जुड़ा हुआ है।

शैली शब्द का प्रथम प्रयोग एव परिचय भारतीय वाङ्मय में कुल्लूकभट्ट (सन् ११५०—१३००) कृत टीका मनुस्मृति में मिलता है।^१

वेदों में शैली शब्द का व्यापक अर्थ है। देवताओं की स्थिति विशेष के रूप में शैली शब्द प्रयुक्त हुआ है। माध्यान्दिन संहिता में शील शब्द देवता विशेष के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस देवता—विशेष का मध्य अजनि—वेध्य है जिसका अर्थ लीपना और आजना से है।—

‘वृहदारण्यकोपनिषद्’ में शैलिनि शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ अभिधान विशेष है।^२ दोनों धातुओं के अर्थ पर विचार किया जाए तो अर्थ विभिन्नता के उपनिषद् साहित्य का अभिधान विशेष रूप शैली शब्द के अर्थ के अधिक सन्निकट है। शैली शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाए तो शील में होने वाले तत्त्व को शैली कहते हैं। कहने का आशय यह है कि शील का अर्थ स्वभाव होता है जो वस्तु वेशिष्ट्य के निर्माण का कारण होता है।—

पाणिनि के धातु पाठ में शील धातु एकाग्र होना^३ और अभ्यास होना^४, के अर्थ में प्रयुक्त है। शाकटायन ने शीड धातु से शील को निष्पन्न माना है।^५ होते हुए भी तात्त्विक अर्थ में मतभेद की सम्भावना का अभाव है।

‘शील धातु का अर्थ एकाग्र होना यदि किया जाए तो यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि एकाग्रता या समाधि शील या स्वभाव का तात्त्विक अर्थ है। व्यक्ति जब स्वभाव की स्थिति में रहता है तो वहाँ इतर भार तिरोहित हो जाते हैं। विश्व के जितने भी विषय हैं चाहे दर्शन हो या मनोविज्ञान, कला अथवा कला से इतर विषय, सभी की उत्पत्ति समाधि के बीज से ही होती है। यही शील अथवा समाधि की स्थिति कविता का सृजन करती है। शब्द—रचना या शब्द गुम्फन कवि के ‘स्व की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में कवि के स्वभाव के विम्ब से सहृदय का हृदय भावित हो उठता है।

१ बलदेव उपाध्याय - भारतीय काव्य शास्त्र पृष्ठ १६६

२ वृहदारण्यक उपनिषद् ४/१/२

३ ‘शील समाधौ’ सि कौ पृष्ठ २८८

४ ‘शील उपाधरणे’ ‘उपधारणमध्यास’ सि कौ पृ ३६० प्रकाशन— खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई सन् १९१४

यदि शील का अर्थ अभ्यास होना माना जाए तो भी यह अर्थ शैली की आत्मा का अभिव्यक्त करता है। अर्थ या कृति अभ्यास का प्रतिफलन है। अभ्यास की नैरन्तर्यता की दृढ़ भूमि को प्राप्त रमणीयार्थ की ही अभिव्यक्ति होती है।

साहित्यिक उद्यान के रमणीय अर्थ रूपी सुमन प्रतिभा के साथ—साथ—अभ्यास के जल से प्रतिस्फुटित होकर अपने सौरभ का विखेरते हैं। इसलिए अभ्यास और शील में मौलिक अर्थ होते हुए भी अर्थान्तर का अभाव ही है।

शील शब्द के यदि शीङ् धातु का स्वीकार किया जाए तो किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होगा। शयन अर्थ में प्रयुक्त होने वाली शीङ् धातु पद शैल्या की आधार शिला है।—

यास्क के निरुक्त^१ पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यही प्रतीत होता है कि यदि दो स्थलों पर आने वाला शील शब्द शैली के पर्याय में पर्यवसित होता है। यास्क शील को अभ्यास की पराकाष्ठा अथवा पुनरुक्ति की परिनिष्ठिता में अन्तर्भूत कर लेते हैं।

दुर्ग ने इसी अभ्यास की अभिव्यक्ति को नित्य शब्द से जोड़ कर इसे स्व—भाव की अभिव्यक्ति में समाहित किया है।^२

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने जिस रूप में जिस अर्थ में शैली शब्द का प्रयोग किया है वह अर्थ आज के शैली शब्द के अधिक सन्निकट है।

यही शील धातु अण् प्रत्यय से युक्त होकर शैली का रूप धारण कर स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने की स्वाभाविक विशेषता अथवा किसी विशेष अर्थ की विशेष रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता अथवा प्रवृत्ति को चरितार्थ करती है। महाभाष्यकार^३

१ 'तर' शीलम् निरुक्त १०/४२ प्रतिष्ठाशीलभुपशम् आत्मा । निरुक्त १४/१०

२ 'स हि नित्यमयस्ते शब्दे स्तेति' दुर्ग १०/४२

३ महाभाष्यकार २/१/३

प्रदीपकार कैयट ने स्व-भाव में होने वाली वृत्ति को शैली का बाना पहनाकर आधुनिक भाषाविज्ञान में प्रयुक्त होने वाले शैली विज्ञान के अर्थ को अपने में समाहित कर लिया है।

मुग्धबोध व्याकरण^१ की टीका में भी शैली शब्द अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति को प्रकाशित करता है। इतिहास के पृष्ठों में जब हम दृष्टिपात करते हैं तब शैली की विविधता देश काल जाति वस्तु और व्यक्ति के भेद से अनन्त रूपों में दिखाई पड़ती है। पहाड़ी शैली राजपूती शैली नागर शैली गान्धार शैली आदि इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

आधुनिक युग में शैली शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के स्टाइल के अर्थ में होता है, और अंग्रेजी के स्टाइलिस्टिक का हिन्दी अनुवाद शैलीविज्ञान चल पड़ा है।—

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में स्टाइल (Style) शब्द के २५ से भी अधिक अर्थ दिये गये हैं। इन अर्थों की विवेचना के पश्चात् यही अर्थ निकलता है कि स्टाइल शब्द ग्रीक के 'Stylos' एवं लैटिन के (Styles) से सम्बन्धित होकर शैली के रूप में प्रयुक्त हो रहा है।

किसी भी भाषा का मूलशब्द कालान्तर में अपने अर्थ को छोड़कर सामान्य अर्थ का अथवा अपने मूल अर्थ को छोड़कर अर्थान्तरों का अभिधायक हो जाता है।—

‘लिखने की नोकदार कलम के रूप में प्रयुक्त होने वाले लैटिन का (Styles) शब्द कालान्तर में लिखने के ढंग, लिखित रचना, लेखक विशेष की अभिव्यक्ति की विशेषता, बोलने का ढंग, रीति या प्रथा, किसी प्रकार रचना पद्धति की विशिष्टता में प्रयुक्त होने लगा।

१ आचार्यगाम्भिर्य शैली यत् सामान्येनभिधाय विशेषेण विवृणोति।

आज शैली शब्द आन्तरिक अर्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ वाह्य रूपों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। शैली शब्द के अर्थ वैशिष्ट्य को देखने के लिये हमें विभिन्न लेखकों की विचारधाराओं का आकलन करना पड़ेगा।

शैली की परिभाषा

शैली की परिभाषा कर्ता कृति और भोक्ता के आन्तरिक पक्ष को अभिव्यक्त करती हुई व्यक्ति और वस्तु के मूल तत्वों को एक सशक्त संगठन प्रदान करती है।

मोरियर की 'शैली किसी भी वस्तु के होने की पद्धति है'^१ का कहना है कि वैज्ञानिक शोध के अशमात्र उत्साह से भी शैली पद का आख्यान किया जाय तो यह अनिवार्यता सम्पूर्ण साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र और आलोचना के सिद्धान्तों को परिव्याप्त कर लेता है।^२

इस कथन में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम कवि के द्वारा प्रयुक्त की गयी भाषा की विशेष पद्धति है। भाषा की विशेष प्रकार की संरचना काव्य के सौन्दर्यात्मक पहलू को अभिव्यक्त करती है।

वस्तुपरक चिन्तन भाषा की संरचना की कुक्षि से अकुरित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होता है। विषय वस्तु की सार्थकता को व्यक्त करने के लिये गेटे ने बताया है कि 'शैली रचना का वह उच्च एवं सक्रिय सिद्धान्त है जिसके द्वारा लेखक अपने विषय की गहराई में उतरकर विषय के अन्तस्थ का उद्घाटन करता है'^३

१ स्पेन्सर पृ १०-११

२- To us style is a disposition of existence, a way being

३ Style is a higher and active principle of composition by which the writer, penetrates and reveals the inner form of his subject स्पेन्सर पृष्ठ १०-११

इस परिभाषा के अन्तर्गत कवि अनेक विकल्पो में से किसी सशक्त विकल्प को जिसे वह सिद्धान्त की कसौटी पर खरा उतार सकता है— माध्यम बनाकर विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व को अभिव्यक्त करता है।— वलीनर्थ बुक्स और रावर्ट वैनभारे की दृष्टि में चयन एवं व्यवस्था में शैली की भावना निहित रहती है। चयन और व्यवस्था शब्द कविता के वाह्य पक्ष—शब्द तत्त्व और आन्तरिक पक्ष—अर्थतत्त्व के बीच में एक ऐसा सामजस्य स्थापित करते हैं जिसके द्वारा कविता की रमणीयता कवि के अतिरिक्त पूरे रसिक वृन्द को अभिभूत कर लेती है। शब्दों का चयन वैयाकरणिक व्यवस्था के प्रतिकूल उपस्थित तो नहीं होते लेकिन व्याकरण की सीमा में पूर्णतः प्रतिबद्ध भी नहीं रहते। शैली की इस विचारधारा में गुणभाव की सजा होते हुए भी कविता का सशक्त माध्यम की ओर इंगित करने का सफल प्रयास माना जा सकता है। वैयाकरणिक सीमा चयन की पद्धति को अभिभूत नहीं कर पाती। कविता का आन्तरिक तत्त्व इतना रमणीय एवं सशक्त होता है कि उसके समक्ष व्याकरणिक शृङ्खला उसी प्रकार छिन्न—भिन्न हो जाती है जैसे बसन्त की मादकता योगी के समाधि को शिथिल कर देती है। भाषागत नियम अचर होते हुए भी नकारात्मक पृष्ठभूमि की जीवन्तता में विच्छिन्न नहीं होते। चयन की सार्थकता वस्तुनिष्ठता की रमणीयता के प्रतिपादन में पर्यवसित होती है।

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान बफो का उद्धरण 'शैली स्वयं व्यक्ति है, रचयिता की वैयक्तिक विशेषता को अभिव्यक्त करता है'।

इस परिभाषा के अन्तर्गत कृतिकार की सम्पूर्ण अनुभूतियों का बिम्ब शब्दों के माध्यम से नए अर्थों में अभिव्यक्त होता है। वस्तुतः यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो प्रत्येक कृतिकार की उसकी स्व-अनुभूति वैशिष्ट्य के प्रतिपादन में ही प्रवृत्त रहती है।

डा० जानसन, ब्राउन, ददले आदि अनेक विद्वानों की दृष्टि में "शैली का अर्थ कलात्मक अभिव्यक्त में व्यक्तित्व की सत्ता को परिभाषित करने में पर्यवसित हुआ है"।

यद्यपि इस परिभाषा में सत्यता प्रतिभासित होती है किन्तु शैली की वैयक्तिकता निर्भान्त नहीं है क्योंकि शैली समूहात्मक अभिव्यक्ति में भी प्रतिबिम्बित होती है। कलाकार की वैयक्तिकता यदि समूह का प्रतिबिम्ब तत्त्व नहीं है तो वह वैज्ञानिक कोटि में नहीं जा सकती। यद्यपि शैली की वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है किन्तु बिना समूहात्मक अभिव्यक्ति के एक निश्चित रूपरेखा तैयार नहीं की जा सकती। शैली के वैज्ञानिक होने में वैज्ञानिक उत्सर्जन का विशेष महत्व है।

अनेक विद्वानों ने शैली को प्रतिमान के विपथन की सजा दी है। कहने का आशय है शैली भाषा के सामान्य मानक रूप से विचलन अथवा में होती है।^१

इस परिभाषा के प्रबल समर्थक ब्लाक वेलेन्डर है। इस परिभाषा के प्रतिमान और विपथन शब्द शैली के स्वरूप निर्धारक हैं।

भाषा की प्रतिमानता एकरसता की परिणति नहीं है। युग धर्म, सामाजिक समय की सक्रान्ति और वैचारिक सक्राति के कारण रूपान्तर को प्राप्त होती रहती है। रचनाकार की कृतियों की प्रतिमानता एकरूपता से अवच्छिन्न नहीं होती कालिदास के रचनाओं के सूक्ष्म विवेचन उनकी समस्त कृतियों में प्रतिमानान्तर के ही चित्र उपस्थित करते हैं।

यह बात दूसरी है कि समकालीन रचनाओं का प्रतिमान कुछ सीमा तक समान होता है। वस्तुतः प्रतिमान प्रमाता के मानस में परम्परागत प्रवाह के प्रति फलन के रूप में विद्यमान रहता है। विभिन्न कालीन रचनाओं के प्रतिमान एक नूतन चिन्तन की पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। जब हम किसी भी रचना का मूल्यांकन करते हैं तो उस युग की रचना के पूर्वकाल की रचना के भाषिक प्रतिमान की आधारशिला पर ही रचनाओं के वैशिष्ट्य का चित्र बनाते हैं।

शैली प्रतिमान से विपथन अथवा विचलन की ओर जाने वाली भाषिक स्थिति है। विपथन अनेक प्रकार से अनेक रूप से अनेक स्तर पर हो सकता है। अभिव्यक्ति के नवीन सृजनात्मक पक्ष को उन्मीलित करने के लिये कवि की कला लीक से हटकर विपथन की ओर गमन करती है उदाहरणार्थ भारवि का किरातार्जुनीयम् महाकाव्य लिया जा सकता है। इस विपथन में यदि सृजन की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का समावेश होता है तो अभिव्यक्ति का प्रतिफलन सौन्दर्य का विम्ब प्रस्तुत करता है। यदि विपथन केवल कलात्मक अथवा कोरा चमत्कार प्रदर्शन करने के लिये होता है तो इस विपथन का कोई मूल्य नहीं होता।

इस विपथन में अनेक प्रकार की अवधारणाएँ हैं। कवि नूतन शब्दों की संरचना के माध्यम से अर्थान्तर में विलास लाता है। उसके शब्द अथवा रुढिगत अर्थों की शृङ्खला से मुक्त होकर सहृदय—श्लाघ्य अर्थों का निर्माण करते हैं, उसके शब्दों में अर्थों की निहित कमनीयता सहृदय को बार—बार अपनी ओर आकृष्ट करती है।

इस विचलन का प्रभाव ही है कि विशेष अर्थ में प्रयुक्त होने वाले वैदिक शब्द लौकिक साहित्य में अर्थान्तर को प्राप्त होते हैं। इस नूतन शब्दों की रचना में अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं का समावेश दिखाई पड़ता है। धातु एवं तिङन्त शब्द कहीं कृदन्त के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो कहीं उपसर्ग विहीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो कहीं केवल उपसर्ग का प्रयोग होता है।

इस विपथन में वैयाकरणिक विपथन यदि गहन स्तर को प्राप्त होता है तो एक ऐसे नूतन अर्थ की सर्जना होती है जिसे देखकर सहृदय आश्चर्यचकित हो जाता है। इस वैयाकरणिक विपथन में लिंग, वचन आदि के प्रयोग भी समाहित हैं।

इस प्रकार के विपथन में मनोहारी विम्ब उपस्थित होते हैं, जिसमें अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति होती है। कवि कभी—कभी स्वनियम परक

विपथन के माध्यम से कथ्य को अत्यन्त रमणीय बना देता है। इस प्रकार के विपणन में अर्थ विषयता काल विषयता शब्द विपरिणम विषयता आदि की सत्ता देखी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कविता अटपटी सी लगती हुई भी एक नूतन अर्थ की सर्जना अपने गर्भ में छिपाए रहती है। इस प्रकार कवि विशेष प्रकार के विपथन से अपने को बाधता रहता है। जब यह विपथन उसकी विशिष्टता का माध्यम बन जाता है। तो उस कवि के भावों की अभिव्यक्ति ही शैली कही जाती है।

इस विपथन में काव्य की प्रचलित विधाओं के प्रति एक विद्रोह अन्तर्निहित रहता है। कवि अपने विपथन में अग्र-प्रस्तुति की भावना की उद्भावना करता है। उसका विशेष प्रयोग कला के सौन्दर्य के प्रत्यापक बन जाते हैं।

भाषिक अग्र-प्रस्तुति तर्क की सीमा तोड़ करके जीवित नहीं रह सकती इसीलिए तर्क का सम्बल लेकर विशेष प्रयोग हमें उपस्थित होने वाली भाषिक अग्र-प्रस्तुति पाठक के जिज्ञासा को उद्भावित करने में सफल होती है। इस भाषिक विपथन में सप्रेषण का मौलिक तत्त्व कुछ विशेष रूप में उपस्थित होता है। इस नूतन प्रयोग के मर्म को समझने के लिये पाठक की सहृदयता और कला मर्मज्ञता उसकी मूलनिधि है। इस भाषिक अग्र प्रस्तुति में भाव सौन्दर्य के तत्त्व को जानने के लिये विश्लेषणात्क प्रतिभा की आवश्यकता होती है।

कविता और सामान्य प्रयोग की भाषा में एकरूपता नहीं होती। कविता की भाषा के पद उपवाक्य कृदन्त, तिङन्त प्रत्यय, वाक्य आदि सरचनात्मक तत्वों में निहित होकर अलौकिक सौन्दर्यात्मक अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। इसकी प्रक्रिया सायास और सहज भी हो सकती है। सायास प्रक्रिया में जबकृत्रिमता आ जाती है तो सम्प्रेष्य पङ्गु बनकर अपना मनोहारी स्वरूप उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे पीले पत्रों के बीच अन्तर्निहित सुमन के गुच्छे।

यदि इस प्रक्रिया में सहजता होती है तो अभिव्यक्ति सशक्त होकर सीमातीत आनन्द की अनुभूति कराती है। इस भाषिक अग्र प्रस्तुति में सादृश्य विधान की संरचना विपथन के उदात्त स्वरूप को प्राप्त कर आह्लादक अर्थों की उद्भावना करती है।

सादृश्य का तात्पर्य आवर्तन मात्र ही नहीं है वरन् शब्द और अर्थ तत्त्वों का ऐसा व्यतिरेक अथवा समरूप राम विभाजन उपस्थित करना है जिसमें कविता का सौन्दर्य पूनम के चन्द्र-सदृश अभिव्यक्त हो उठे।

शैली की दूसरी परिभाषा! सामूहिक विशेषताओं का समुच्चय है। किसी भी व्यक्ति की कृति बहुत अर्थों से युक्त होते हुए भी कुछ विशेषताओं से युक्त होती है। यह विशेषता उसके अभिव्यक्तिक पक्ष को स्पष्ट करती है।

जैसे लेखकों अथवा कवियों में अप्रस्तुत-प्रयोग चयन विपथन समान्तरता पुनरुक्ति कोषीय शब्दों का प्रयोग संरचनामूलक स्तर की बारम्बार अलंकार समासादि के प्रति मोह कुछ विशेष प्रयोग की विशेषताएँ पायी जाती हैं। यही अभिव्यक्तिक विशेषताओं का समूह ही शैली कही जाती है। उदाहरणार्थ संस्कृत साहित्य की वृहत्त्रयी की रचनाओं को लिया जा सकता है। अब यह बात दूसरी है कि वृहत्त्रयी की रचनाओं में एकरूपता के साथ-साथ विभिन्न रूपों का बाहुल्य है। वस्तुतः इस प्रकार की विशेषता वैयक्तिक होती है। यदि वैयक्तिक विशेषताएँ कुछ सीमा तक सामान्य का रूप ले लेती हैं तो अभिव्यक्तिक विशेषताओं का समूह रूपशैली व्यापकता को प्राप्त हो जाती है।— सपोर्टों के शब्दों में शैली विज्ञान शैली का अन्तर्वाक्यीय वैशिष्ट्य है। “कहने का आशय यह है कि भाषाविज्ञान वाक्य और उसके विभिन्न अंगों का अध्ययन करता है। किन्तु शैलीविज्ञान वाक्य से बड़ी इकाई पाठ का विश्लेषण होता है। इस पाठ के विश्लेषण से ही शैली विषयक सधारणा का प्रस्फुटन होता है। सम्पूर्ण काव्य एक वाक्य नहीं होता अतएव वाक्य से व्यापक स्तर पर अन्तःसम्बन्ध के विश्लेषणात्मक पहलू का अध्ययन

करना ही शैली है। इसलिये हिल ने काव्य की अपेक्षा व्यापक सन्दर्भ में व्याख्येय भाषा तत्वों के अन्त सम्बन्ध में शैली की निष्पन्नता प्रतिपादित की है।

काव्य के अनेक वाक्यों में ही कवि की अपनी अनुभूति का सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है। इसलिये शैली अन्तर्वाक्यीय वैशिष्ट्य सिद्ध होती है।

मरी की दृष्टि में शैली भाषा की उस विशेषता का नाम है जो किसी के भाव अथवा विचार को ठीक-ठीक अभिव्यक्ति करती है।^१ भाषा एक इकाई के अन्त सम्बन्धों से निष्पन्न होती है अतः इसके विश्लेषणात्मक वैशिष्ट्य से कवि के भाव अथवा विचार की सूक्ष्मता का ज्ञान होता है।

‘सुन्दर पाप’ केवल सुन्दर और पाप के अन्त सम्बन्ध से ही अभिव्यक्त नहीं होता है वरन् पूर्ण दृष्टि में सुन्दर पाप इस पूरी पंडित के अन्त सम्बन्ध के अध्ययन से “सुन्दर पाप” के वास्तविक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। बिना भाषा की विशेषता का जाने कवि के भाव की सूक्ष्मता के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। इस भाषिक विशेषता के माध्यम से कवि के अन्तर्भाव और उसके द्वारा प्रयोग किये गये शब्दों के द्वारा किसी प्रकार जाने जाते हैं। इसलिये भाषा की विशेषता को शैली के नाम से परिभाषित किया गया है।—

मरी की शैली को स्पष्ट करते हुए बताया कि ‘शैली’ शब्द पर कवि वैज्ञानिक गहराई से विचार करे तो इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य तथा आलोचनात्मक सिद्धान्त आ जायेगे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि काव्य में होने वाले सौन्दर्य तथा आलोचनाशास्त्र के नियम शैली के स्वरूप के प्रतिपादक हैं। यह परिभाषा एक व्यापक क्षेत्र का परिशीलन करती है।

इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण आलोचना के सिद्धान्त तथा कवि के सौन्दर्य चिन्तन समाविष्ट हो जायेगे। काव्य भाषा का व्याकरण सामान्य भाषा के व्याकरण से विशिष्ट कोटि का होता है। व्याकरणिक भाषा शास्त्र कविता के

१— "Style is a quality of language, with communicate precisely emotion or thought"

काव्य तत्व का निर्धारक है किन्तु काव्य भाषा का व्याकरण काव्य के अन्तः सौन्दर्य को परिनिष्ठित रूप में उपस्थित करता है जहाँ अर्थ विस्तार का सौन्दर्यात्मक अनुभूति का भोग किया जाता है। इसलिये सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य रूप शैली का अध्ययन काव्य के संरचनात्मक और सौन्दर्यात्मक अर्थों की अभिव्यक्ति करने में सहायक सिद्ध होती है।

प्लेटो के अनुसार जब विचार को एक रूप दिया जाता है तब शैली का प्रादुर्भाव होता है। विचार की प्रतिलिपि रूप शैली को परिभाषित करने के लिये गेटे ने भी बताया कि किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है। *an author's style is a faithful copy of his mind*

शापेन हावेर ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया शैली व्यक्तित्व की वाह्याकृति है।¹

चेस्टर फील्ड ने “इसे विचारों की पोशाक कहा है”।²

इन परिभाषाओं में शैली का तटस्थ लक्षण किया है। प्रत्येक कलाकार के विचार किसी न किसी रूप में सौन्दर्यात्मक अर्थों का उपधारण कर लेता है। कवि इन्हें अभिव्यक्त करने के लिये जिस पद्धति का आश्रय लेता है वह उसकी शैली कही जाती है।

सेलेद ने शैली को तकनीक का नहीं अपितु दृष्टि का प्रश्न माना है। सम्पूर्ण परिभाषाओं को देखने से यही ज्ञात होता है कि शैली की जितनी भी परिभाषाएँ दी हैं, उसमें चार तत्वों—वस्तुनिष्ठता, वैचारिक पृष्ठभूमि कृतिकार के व्यक्तित्व तथा अभिव्यक्तिक वैशिष्ट्य की प्रधानता रहती है।

डाक्टर भोलानाथ³ तिवारी ने “शैली विज्ञान में भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट ढंग को शैली बताया है। इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया, ‘शैली

1 Style is the Physiognomy of mind

2 Style is the dress of thought

3 आचार्यगणमय शैली यत् सामान्येनमिधाय विशेषण विवृणोति।’

भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढंग से है जो व्यक्तित्व तथा विषय से सबद्ध होकर तथा जो विचलन चयन सुसयोजन समान्तरता एव अप्रस्तुत विधान आदि सामान्य अभिव्यक्ति के लिये आसुलभ उपकरणों पर आधृत होता है।

इस परिभाषा में अभिव्यक्तिक पद्धति की प्रधानता के साथ-साथ कृतिकार का वैशिष्ट्य भाषिक अभिव्यक्ति से पृथक होता है जिसमें कृतिकार का व्यक्तित्व उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में दर्पण में प्रतिबिम्बित होता रहता है।

श्री भोलानाथ तिवारी की परिभाषा व्यापक परिवेश को समाहित करती है। वस्तुतः शैली कृतिकार की रचनाकार अभिव्यक्तिक विशेषता है जिसमें भाषिक नियमों की यथार्थता विशिष्ट रूपों में उपस्थित होकर श्रोता या पाठक को नूतन अर्थों की कारुणी पिलाकर मदमस्त कर देती है।

कला की भाषा विविध रूपों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है। सम्पूर्ण कलात्मक भाषा में एक अद्वितीय अर्थाभिव्यक्ति रहती है। यदि सत्यता के मार्ग का अनुसरण किया जाए तो यही कहना पड़ेगा कि कोई भी कला न भाषा का वहन करती है और न अर्थ रखती है। वह तो एक प्रकार का प्रतीक है जिसमें हम शब्दार्थ के व्यंग्यों का अन्वेषण करते हैं।

भाषा तत्त्वतः संकेतो या प्रतीको का आधार तत्त्व है जिसका सम्बन्ध सार्वभौम नहीं होता वरन् सीमाबद्ध होता है। फिर भी सामाजिक और अन्तर के भावों का प्रतिबिम्ब किसी भाषा के दर्पण को देखा जा सकता है। भाषा एव सांस्कृतिक रूप में अर्थ के ज्ञान का सृजनात्मक रूप में। इसी के द्वारा भौतिक और मानवीय अभिव्यक्तियों की अभिव्यजना होती है। भाषा में अनुभव का प्रतिरूप देखा जाता है। भारतीय दार्शनिकों ने भाषा के भाषकीय स्वरूपों के विश्लेषण के साथ-२ उसके दार्शनिक तत्वों की मीमांसा प्रस्तुत की है। भारतीय चिन्तन की प्रक्रिया के अन्तराल में यदि प्रवेश करें तो हमें यही प्रतीत होता है कि जहाँ एक ओर व्याकरण में अखण्ड वाक्य स्फोट, न्याय में पदार्थ और मीमांसा में शब्द नित्यत्व के विश्लेषण के तत्त्व रूप आयाम मिलते हैं वहीं

दूसरी ओर भरतमुनि के अभिनय और शब्द के बीच अनेक प्रकार के सम्बन्धों की व्याख्या वामनकृत् विशिष्ट पद-रचना रीति कुन्तक के मार्ग सिद्धान्त की मीमांसा अभिनवगुप्त का शब्दार्थ एव ध्वनि विवेचन मम्मट की शब्दार्थ की मौलिक विवेचना विश्वनाथ का रसात्मक वाक्य पण्डितराज जगन्नाथ का रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द काव्य की मीमांसाएँ मिलती हैं।

इन दो प्रकार की भाषाओं में एक प्रकार की भाषा काव्य भाषा की सर्जना को प्राप्त करती है। इस काव्य भाषा की सर्जना अलंकार के बीज से प्रारम्भ होकर ध्वनि के पुष्प में परिणति होती है। भारतीय साहित्यशास्त्र या काव्यशास्त्र की मुख्य भूमिका शब्द और अर्थ तथा उसके सम्बन्धों की ग्रन्थियों को सुलझाने में रही है। भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक विद्वानों ने अनेक रूपों में उनकी व्याख्या प्रस्तुत की है। काव्य सौन्दर्यात्मक अर्थों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानव के शिव तत्त्व का श्रृंगार करता है। वह किसी सीमा में बँधकर अर्थों की अभिव्यक्ति नहीं करता। उसका सौन्दर्यात्मक अर्थ ब्रह्मानन्द सहोदर है जो असीम अलौकिक और लोकोत्तर रमणीयता की अनुभूति कराता है यह अर्थ अनुभवात्मक होता है जिसकी अखण्डता स्वयं सवद्यता और वेद्यान्तर-शून्यता का अपलाप नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त वर्णित अलौकिक अर्थ की प्रतीति काव्य के सम्बन्धों के माध्यम से ही होती है। शब्द का प्रयोग अनेक स्थितियों के जन्म का कारण बनता है और यही शब्द स्थितियों के माध्यम से अत्यन्त रमणीय और उससे इतर अर्थों का बोध कराता है। शब्द में जिस अर्थों की प्रतीति या केवल अर्थबोध होता है उसके लिये मूलतः न शब्द कारण है और न अर्थ वरन् हमारी रुचि, हमारी संस्कृति, जीवन का व्यवहार यथार्थता की अनुभूति तथा मानसिक प्रक्रिया भी सहायक होती है। इसीलिए एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये अनेक विद्वान अनेक प्रकार के माध्यम का आश्रय लेते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र की रचना प्रक्रिया वस्तुनिष्ठता की ओर अधिक झुकी हुई है। लेकिन

यह कहना अरागत नहीं होगा कि वस्तुनिष्ठता में भी कवि की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। यही कारण है कि एक ही कवि की रचनाओं में विभिन्नता पायी जाती है तो अनेक कवियों की रचनाओं की विभिन्नताओं का अपलाप कैसे किया जा सकता है।

भारतीय काव्यशास्त्र भाषा के सगठनात्मक तत्वों पर एक अच्छी मीमांसा प्रस्तुत करता है। प्रत्येक शब्द और अर्थ के प्रत्येक अवयवों की मीमांसा में उसकी सूक्ष्म प्रतिभा का दर्शन होता है। किन्तु इसकी वैयक्तिक भूमिका गौण हो जाती है। आधुनिक आलोचक जिस शैली की विवेचना करते हैं उस शैली के विविध आयाम तो काव्य शास्त्र में देखने को मिलते हैं। किन्तु शैली का एकात्मक रूप देखने को नहीं मिलता है। लेकिन यह कहना कि 'भारतीय काव्यशास्त्र में शैली की विवेचना नहीं है, अतर्क—सगत है—

भारतीय 'शैली' को समझने के लिये उसके विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मूल्यांकन आवश्यक है। भारतीय शैली विज्ञान को यदि रीति विज्ञान की सजा दी जाए तो यह बात तर्कपूर्ण नहीं लगती। इसलिये भारतीय शैली के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये हमें भारत से लेकर पण्डित राजजगन्नाथ की विवेचनाओं का मूल्यांकन करना पड़ेगा।—

अलङ्कार के सम्पूर्ण कृतियों को या उनके आचार्यों को दो भागों में
१— अलङ्कारवादी २— अलङ्कारवादी विभक्त किया जा सकता है।

सर्व प्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अभिनय के प्रसङ्ग में शैली को प्रवृत्तियों के रूप में उल्लिखित किया है। भरत ने इस प्रवृत्ति में देश—प्रदेश की वेषभूषा और रहन—सहन के विविध परिवेश को अभिव्यक्त किया है। अवन्ति, दक्षिणात्य, मागधी और पाचाली प्रवृत्तियों के माध्यम से अभिनय की विविधता के साथ—साथ भौगोलिक विविधता की प्रतीत होती है। अवन्ति भारत के पश्चिम भाग, दक्षिणात्य दक्षिण भारत, ओड, मागधी, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश की ओर पाचाली मध्यदेश की प्रवृत्ति कहलाती थी।^१

भरत की दृष्टि में प्रवृत्ति उस विशेषता का नाम है जो नाना देशों की वेशभूषा भाषा तथा आचार को अभिव्यक्त करता हो। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रवृत्ति केवल भाषा की सवालिका ही नहीं वरन् इस प्रवृत्ति में वेश तथा आचार भी प्रतिबिम्बित होता रहता है। इस प्रवृत्ति में केवल भाषा का वाह्यतत्त्व ही प्रतीत होता है।^१

भरतमुनि ने इसलिये प्रवृत्ति की कल्पना की क्योंकि उनका लक्ष्य नाट्य या अभिनय था न कि काव्यात्मक अर्थों का विवेचन। इसलिये राजशेखर ने इस प्रवृत्ति को वेश-विन्यास का क्रम माना है। यद्यपि भरतमुनि ने भौगोलिक आधार पर काव्यप्रवृत्तियों का विचार प्रस्तुत किया है किन्तु इस प्रवृत्ति के बीच से रीति सिद्धान्त अडकुरित हुआ है।

वाणभट्ट ने भी देशभेद से चार प्रकार की पद्धतियों का संकेत किया है। वाणभट्ट के अनुसार भारत के उत्तर भू-भाग के कवि की रचनाओं में श्लिष्ट भाषा का चमत्कार देखा जाता है। पश्चिम भारत के लोग अलंकार-विहीन भाषा के माध्यम से सौन्दर्यात्मक अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। दक्षिणात्य कवियों की भाषा के उत्प्रेक्षा अलंकार से अलंकृत होकर अपने अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं एवं पूर्वी भारत के कवियों की भाषा में अक्षरों का आडम्बर अधिक रहता है।

वाणभट्ट ने इस संकेत में भौगोलिक सीमाबद्ध कवि की शैलियों का चित्रण है उनके द्वारा रचित हर्षचरित का जब हम अध्ययन करते हैं, तो उनकी दृष्टि बड़ी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कहने का आशय यह है कि वाणभट्ट की सम्मति में इन चारों शैलियों का सामाजिक अथवा इनका समष्टि प्रयोग ही कवि शैली की सर्वोत्कृष्ट प्रमाणपत्र है।

वाण की दृष्टि में काव्य की कसौटी के लिये नवीन भाव सौन्दर्य अग्राम्या जाति, अश्लिष्ट श्लेष, स्फुट रस, नर्तन करने वाले पद, अक्षरवृन्द की आवश्यकता है।^२

१ तत्र वेशविन्यास क्रम प्रवृत्ति अध्याय ३ काव्यमीमांसा प्रकाशन राष्ट्रभाषा परि० विहार

२ नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्ट स्फुटोरस।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥ हर्ष चरित्र १/८

वाण के शैली विवेचन की प्रक्रिया में गुण और अलंकार के साथ-साथ रसानुभूति की अभिव्यक्ति है। इनकी शैली भौगोलिक दलदल से युक्त होकर काव्य की चारुता के निष्पादन की अहम् भूमिका निभाने वाली काव्यात्मक विधा है। भरत की प्रवृत्तियाँ अभिनयात्मक स्वरूप की जहाँ विवेचिका है वही पर वाण की शैली विषयक अवधारणा। कवि की कसौटी तथा काव्यात्मक रमणीयता की अभिव्यञ्जिका है।

वाणभट्ट के पश्चात् भामह आदि ने सिद्धान्त रूप में रीतियों की चर्चा की है। उन्होंने वैदर्भ और गौड शब्दों का प्रयोग किया है। दण्डी वामनादि आचार्यों ने रीति के भौगोलिक विभाजन को भरत की प्रवृत्तियों को आधार बनाया है। वामन के बाद होने वाले रूद्रट ने गौणी आदि रीतियों की व्याख्या रसो की परिप्रेक्ष्य में की है।

भामह के पश्चात् रीतियों का विवेचन वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर हुआ है। दण्डी के अनुसार काव्य रचना के मार्ग अनन्त हैं।^१ क्योंकि कवि की संख्या अगणित है। उन्होंने मार्ग पद का प्रयोग कर एक नवीन उद्भावना या मार्ग-दर्शन किया है।

अलंकारवादी रीति-विवेचन

अलंकारवादी आचार्य शब्दार्थ की विवेचना में उलझे हुए हैं। उनका दृष्टिकोण शब्द और अर्थ की चारुता के प्रतिपादन में सीमित है। किन्तु अलंकारवादी आचार्यों ने व्यङ्ग्यरूप अर्थ को प्रमुख स्थान देते हुए शब्दों के आन्तरिक और बाह्य तत्त्वों की विवेचना को गौण रूप ही प्रदान किया है।

अलंकार, रीति और वक्रोक्ति को मानने वाले आचार्यों का दृष्टिकोण सीमित प्रतीत होता है। किन्तु इसके विपरीत रस, ध्वनि और औचित्य के प्रतिपादन के माध्यम से आचार्य काव्य के विराट स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं।

१ तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं कवि प्रतिकविस्थिता। काव्यादर्श १/१०

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो एक कोटि के अलंकारवादी आचार्य शब्दार्थ के बिन्दु से यात्रा प्रारम्भ करके उसी बिन्दु पर पहुँचकर विश्राम लेते हैं तो दूसरी कोटि के अलंकारी शब्दार्थ के बिन्दु से चलकर रस ध्वनि आदि व्यापक काव्य तत्वों की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। दोनों कोटि के आचार्यों के सूक्ष्म विवेचन से भारतीय काव्यशैली की एक निश्चित रूपरेखा स्पष्ट हो जाएगी। अलंकारवादी विवेचन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि अलंकारवादी आचार्य भी एक मत के नहीं हैं।

कुछ आचार्य उपमादि अलंकार को ही काव्य का जीवन तत्व मानते हैं इसके विपरीत कुछ आचार्य गुण या रीति को। गुण या रीति को महत्व देने वाले प्रमुख आचार्य दण्डी और वामन के सिद्धान्तों की यदि मीमांसा की जाए तो यह स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि इनकी विवेचना में रीति का ही सर्वाधिक महत्व है। इन दोनों आचार्यों की ही दृष्टि में रीति या गुण काव्य अङ्गी है तथा अन्यान्य तत्व अङ्ग हैं लेकिन दोनों आचार्यों के दृष्टिकोणों में अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है। दण्डी मार्ग के माध्यम से गुणों के महत्व का प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार भरत के द्वारा प्रतिपादित दस काव्यगुण वैदर्भ मार्ग के प्राण तत्व हैं।^१

वामन का दृष्टिकोण इससे भिन्न है। वामन गुणों के कारण रीति के वैशिष्ट्य पर अधिक बल देते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि दण्डी के अनुसार प्रतिपादित सिद्धान्त—गुण सम्पदा वामन की दृष्टि में रीति सम्प्रदाय के नाम से विभूषित होगा और वामन का रीति सम्प्रदाय दण्डी का गुण सम्प्रदाय कहलाएगा।

आचार्य दण्डी ने मार्ग शब्द का प्रयोग रीति के मार्ग को प्रशस्त किया। उनकी दृष्टि में मूलतः वैदर्भी और गौणी दो मार्गों की ही सत्ता है। ये दोनों मार्ग भौगोलिक सीमा से मुक्त नहीं हैं। उनके वर्णन से यह स्पष्ट ज्ञात

१ भरत के दस गुण

श्लेष प्रसाद समता समाधि माधुर्यमोज पदसौकुमार्यम्।

अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते॥ नाट्यशास्त्र

होता है कि वैदर्भ और गौणी दो मार्ग दण्डी के समय तक के कवियों में प्रसिद्ध हो चुके थे। दण्डी की स्वीकृति में यद्यपि भौगोलिक सीमा भाषित होती है किन्तु उनकी मार्ग विवेचना में व्यक्तिनिष्ठता का स्पष्ट संकेत मिलता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को सबके सामने प्रस्तुत किया कि प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट शैली होती है।^१

इसलिये मार्ग असंख्य होते हैं। दण्डी की मार्ग विवेचना मौलिकता का प्रथम सोपान है। इनकी दृष्टि में रीति और गुण के सम्बन्ध में सापेक्षता है। गौणी मार्ग में गुणों का प्रायः विपर्यय रहता है। प्रायः शब्द का अभिप्राय यह है कि अर्थ व्यक्ति औदार्य और समाधि गुण दोनों वैदर्भ और गौणी में समान रूप से पाए जाते हैं। कहने का आशय यह है कि अर्थाभिव्यक्ति के अभाव में काव्य रचना का औचित्य ही नहीं सिद्ध हो पायेगा। इस प्रकार औदार्य गुण से रहित काव्य इतिवृत्त से रहित नहीं कहा जा सकता है। समाधि गुण तो काव्य की सर्वस्व सम्पदा है। इन तीनों गुणों के अतिरिक्त शेष सातों गुणों का विपर्यय गौणी मार्ग की आधारशिला है। यद्यपि दण्डी ने वैदर्भ मार्ग के प्राणभूत दस गुणों को भरतमुनि के द्वारा स्वीकृत दस गुणों को स्वीकार किया है। किन्तु दोनों आचार्यों के लक्षण में पर्याप्त अन्तर है। दण्डी के इस कथन 'एषा विपर्यय' के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि 'एषा' का अर्थ दस गुणों से है। दूसरे विद्वानों का कहना है कि 'एषा' का सम्बन्ध प्राणों से है और विपर्यय का अर्थ अन्यथा से। अतएव श्लेषादि गुण वैदर्भ मार्ग के प्राण तत्त्व हैं। इसके विपरीत गौणीय मार्ग के तत्त्व हैं। अतः विद्वानों की दृष्टि में गौणी मार्ग में श्लेषादि दस गुणों का अन्यथात्व पाया जाता है।

यदि इस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कि 'एषा विपर्यय' का तात्पर्य श्लेषादि गुणों से है। विपर्यय का तात्पर्य यह नहीं कि अत्यन्त विपरीत वरन् उसका अर्थ है अत्यन्त उत्कर्ष का

अभाव । इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दण्डी के मत में वैदर्भ मार्ग जितना श्रेष्ठ है उतना गौणीय मार्ग नहीं । विपर्यय का अर्थ अन्यथात्व लेने से गुणों का विवेचन ही समाप्त हो जायेगा ।

दण्डी की दृष्टि में काव्य शोभा की वृद्धि करने वाले ही अलङ्कार हैं इस धर्म का व्यापक क्षेत्र है । इसके अन्तर्गत श्लेषादि गुण उपमादि अलङ्कार समस्त सन्धि सन्ध्यङ्ग अलङ्कार सामान्य के अन्तर्गत गुणादि की सत्ता विशेष अलङ्कार के रूप में रहती है पर कही कही इन दोनों की सक्रान्ति भी देखी जाती है । माधुर्य गुण में रसवत्ता और रस स्थिति शब्दों का प्रयोग सक्रान्ति का ज्वलन्त उदाहरण है ।^१ दण्डी ने रसों को भी गुणों में अन्तर्भूत कर दिया है । समाधि गुण की विवेचना के प्रसंग में समाधि गुण को कवि सम्प्रदाय का उपजीव्य मानकर गुणों की सर्वातिशायिता सिद्ध की है । इस प्रकार उनकी गुणात्मक मार्ग की प्रतिष्ठा रीति को अपनी निजी विशेषता है ।—

दण्डी के पश्चात् वामन ने रीति सम्प्रदाय की विधिवत् स्थापना करके काव्य के शैलीगत वैशिष्ट्य का सूत्रपात किया है । इनकी दृष्टि में काव्य की आत्मा रीति है ।^२

यद्यपि वामन से पूर्व भामह और दण्डी ने रीति की विवेचना की है, किन्तु उनकी विवेचना में रीति का लक्षण नहीं किया गया है । वामन की रीति सम्पूर्ण काव्याङ्गों का अङ्गी तत्त्व है । वामन की रीति विशिष्ट पदरचना है ।^३ विशिष्ट का अर्थ है गुण सम्पन्न ।^४ कहने का आशय यह है कि विशिष्ट पद रचना गुणात्मक है । गुण से तात्पर्य काव्यशोभाकारक धर्म है । इस प्रकार वामन की रीति का तात्पर्य है काव्य शोभाकारक शब्द और अर्थों से युक्त पदरचना । यह काव्य शोभाकारक धर्म गुण कहलाते हैं ।^५ ये गुण ओजस् प्रसादादि हैं

१ मधुर रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति । (काव्यादर्श १/५१)

२ रीतिरात्मा काव्यस्य (काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति) १/२/६

३ विशिष्ट पदरचना रीति (काव्यसूत्र १/२/८)

४ काव्यशोभायाः कर्तारौ धर्मा गुणा (काव्यसूत्र ३/१/६)

५ (काव्यसूत्र ३/१/२)

यमकादि अलङ्कार नहीं। ओजस् प्रसादादि गुणो से ही काव्य की शोभा की उत्पत्ति होती है। यमकादि अलङ्कार तो शोभावृद्धि के हेतु होते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रीति के गुणात्मक वैशिष्ट्य के कारण ही काव्यत्व की शोभा स्थापित होगी और उपमादि अलङ्कारों से काव्य की शोभा की वृद्धि होगी। शोभा का तात्पर्य वस्तुतः शब्द और अर्थगत सौन्दर्य है।

वामन की दृष्टि में सौन्दर्य अलङ्कार है। अलङ्कार शब्द उपमादि अलङ्कार में होता है और यह सौन्दर्य रूप अलङ्कार दोषों के परित्याग तथा गुण एवं अलङ्कारों के उपादान से होता है। वस्तुतः काव्य सौन्दर्य एवं अलङ्कार दोषों के परित्याग तथा गुण एवं अलङ्कारों के उपादान से सम्पन्न होता है। कहने का आशय यह है कि काव्य के आत्मस्थानीय तत्त्व को गुणात्मक वैशिष्ट्य ही परिपुष्ट करता है। किन्तु उपमादि अलङ्कारों से काव्य का सौन्दर्य तत्त्व निर्धारित होता है। वामन की दृष्टि में श्लेषादि गुण काव्य के स्वरूप निर्धारक तत्त्व होने के कारण काव्य के नित्य धर्म हैं और उपमादि अलङ्कार काव्य शोभा में अतिशयिता लाने के कारण काव्य के अनित्य धर्म कहे जाते हैं। यद्यपि उपमादि अलङ्कार अनित्य धर्म हैं फिर भी वामन के रीत्यात्मक काव्य के महत्वपूर्ण धर्म हैं। श्लेषादि गुण काव्य की नित्यधर्मता को चरितार्थ करते हुए भी उपमादि अलङ्कार की भौति अलङ्कार शब्द से वाच्य होते हैं।

वामन का रीति—विवेचन रीतिवाचक और अलङ्कारवादी विचारों का केन्द्र है। गुणात्मक रीति की महत्ता की स्वीकृति ने इन्हें एक ओर रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तक सिद्ध कर दिया है। वहीं दूसरी ओर रीति के गुणात्मक वैशिष्ट्य को अलङ्कार मानने के सिद्धान्त ने इन्हें अलङ्कारवादी आचार्यों की कोटि में ला रखा है। वामन ने काव्य की आत्मा रीति के तीन भेदों को स्वीकार किया गया है वैदभी, गौणी और पाचाली। इनकी पाचाली रीति के नई उद्भावनाओं ने शैली की नई विधा की स्थापना की है। शैली देश—विदेश के नाम से इसलिये जानी जाती है क्योंकि विदर्भ आदि देशों में इनका आविष्कार

हुआ है।^१ यह बात यद्यपि अक्षरशः सत्य है कि देशादि विशेष से शैली के स्वरूपात्मक उपकार नहीं होते हैं। किन्तु देशों के नाम पर रीतियों का नामकरण रचना वैशिष्ट्य के आधार पर होता है। कोई भी शैली देशगत होती हुई सार्वभौमिकता की परिधि में बँध जाती है। वामन रीतियों का भेद श्लेषादि गुणों के आधार पर ही करते हैं। वैदर्भी में ओजस् प्रसाद सभी गुण का ग्रहण होता है।^२

वैदर्भी की व्याख्या में वामन ने एक श्लोक उद्धृत करते हुए बताया है वैदर्भी में दोषों की मात्रा का अभाव तथा समस्त गुणों से युक्त वीणा के स्वर सा माधुर्य रहता है।^३ इस वैदर्भी रीति के बिना वाणी का माधुर्य उसी प्रकार सुरक्षित नहीं होता जैसे बिना मधुमास के मधु का सुख नहीं होता। ओज और कान्ति से युक्त रीति को गौणी कहा जाता है। इस रीति में माधुर्य और सौकुमार्य का अभाव होता है। इसलिये इसकी सत्ता में समास बाहुल्य एवं उग्रपदों का अधिक्य रहता है।

माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त पाचाली रीति श्लिष्ट पदों की वार्ता से रहित होती है। साथ ही साथ इनके पदों में कान्तिविहीनता का सत्ता पायी जाती है। ऐसा इसलिये होता है कि रीति में ओज एवं कान्ति का अभाव होता है।

१ सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते ।

यत्नोऽस्या कविता कार्य कोऽलङ्कारोऽनया विना ।।

वामन की दृष्टि में इन रीतियों का काव्य के लिये वही महत्त्व है जो किसी चित्र के लिये रेखाओं का होता है। सम्पूर्ण रीतियों में वामन के द्वारा स्वीकृति दस गुणों से युक्त वैदर्भी रीति ग्राह्य है।^४ इसके विपरीत पाचाली

१ विदर्भाद्विषु दृष्टत्वात् तत्समाख्या । काव्यसूत्र (१/२/१०)

२ समग्रै, वैदर्भी । काव्यसूत्र (१/२/११)

३ ओज कान्तिमयी गौडीया । काव्यसूत्र (१/२/१२) ।

४ माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पाचाली । काव्यसूत्र १/२/१३

और गौणी रीतिया स्वरूप गुणो के कारण ग्राह्य नहीं है। इन रीतियों में आरोहण कम का अभाव है क्योंकि अत्तत्त्व से तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। अर्थ गुणो से युक्त वैदर्भी रीति समास जाल से मुक्त होकर रस की धारा प्रवाहित करती हुई सहृदय के हृदय का आवर्जन करती है।

वामन और दण्डी की रीति विवेचना की यदि मीमांसा की जाए तो यही स्पष्ट प्रतीत होता है कि दण्डी श्लेषादि गुणो को अलकार सामान्य के भीतर अन्तर्भूत करते हैं। उपमादि अलकार वृत्ति लक्षणादि से विशेष अलकारों के रूप में स्वीकार करते हैं। वामन की गुण विवेचना दण्डी से भिन्न होते हुए भी काव्य की व्यापकता में समाहित है। वामन भी अलकार सामान्य के भीतर गुणो को स्वीकार करते हैं क्योंकि उनकी स्पष्ट धारणा है कि विशिष्ट गुणात्मक रीति ही काव्य की आत्मा है।

माधुर्य आदि गुणो में रसों की सत्ता इस प्रकार समाहित हो जाती है, जैसे रेखाचित्रों के बीच सभी रंग समाहित हो जाते हैं। रीति सिद्धान्त के सन्दर्भ में वामन की जो विचार धारा है उसके साम्प्रदायिक स्थापना का आग्रह है। यह बात दूसरी है कि इसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। फिर भी काव्य रचना की शैलियों के स्वरूप को व्यक्त करने में सफल सिद्ध हुई।

अलकारवादियों की परम्पराओं में दण्डी और वामन की रीति—विवेचना सैद्धान्तिक विन्दु से प्रारम्भ होकर साम्प्रदायिक वृक्ष का निर्माण करने का प्रयास करती है। अन्य अलकारवादी रीति की विवेचना सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर उससे भिन्न तत्वों की स्थापना करते हैं। इस प्रकार के विवेचकों में भामह, रुद्रट राजशेखर, भोजराज और कुन्तक का विशेष महत्त्व है।

भामह

आचार्य भामह ने परम्परा—प्राप्त वैदर्भी और गौणी दो भागों का ही विचार प्रस्तुत किया है। भामह का काव्यालङ्कार उनकी अलकारवादिता का

प्रमाण पत्र है। काव्यालङ्कार की मूल विचार धारा वक्रोक्ति और उससे प्रसूत समस्त शब्दालङ्कार एव अर्थालङ्कार के प्रतिपादन में प्रस्फुटित हुई है।^१

भामह वामन की तरह रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी दृष्टि में रीति तो कविता कामिनी की कुशल सेविका है। काव्य के मनमोहक स्वरूप के निर्धारण के लिये जिन प्रमुख तत्वों की आवश्यकता होती है। तत्त्व में अलङ्कारता अर्थयता न्यायता और अनाकुलता काव्यों में अलङ्कार की अवश्यक स्थिति ही अलङ्कारवत्ता है। यह अलङ्कारिता वक्रोक्ति तथा अन्य सभी अलङ्कारों को साथ लिये हुए कविता—कामिनी के स्वरूप का निर्धारण करती है। अग्राम्यता शिष्ट शब्द और मजुल भावों को लेकर कविता—कामिनी में सौन्दर्य का सृजन करती है। अर्थात् साभिप्राय अर्थ चमत्कार से कविता का श्रृंगार करती है। लोक और शास्त्र से अविरुद्ध काव्य का वस्तुतः निर्धारण न्यायता की तूलिका से होता है। अनाकुलत्व व्यर्थ के शब्दालङ्कार के मोह को त्यागकर अर्थ गाम्भीर्य का सृजन करता है।

भामह का कथन है कि पाँच तत्वों के सम्मिश्रण से कविता—कला पूर्णिमा को प्राप्त होती है। कहने का आशय यह है कि पाँच तत्वों की अभिव्यक्ति से गौणी मार्ग भी अपने वास्तविक स्वरूप में निखर आता है। इन तत्वों के अभाव में वैदर्भी मार्ग उपहास का पात्र बनता है।

भामह का आग्रह है कि वक्रोक्ति और अर्थ चमत्कार के अभाव में मार्ग कविता—कामिनी की सर्जना नहीं करता वरन् एक वर्ण सुखद गेय^२ वस्तु—विन्यास का आलङ्कार मात्र प्रस्तुत करता है। जब वैदर्भी मार्ग की यह स्थिति होती है तो गौणीय की क्या स्थिति होगी, इसका हृदय सहृदय ही कर सकते हैं। भामह की दृष्टि सङ्कुचित होते हुए भी कुछ व्यापकता का आश्रय लेती है। भामह की दृष्टि में माधुर्य, ओज, प्रसाद गुणों के द्वारा वैदर्भी और गौणी प्रसाद गुणों के

१ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते। (२/८५) काव्यालङ्कार।

२ अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजु कोमलम्।

भिन्नं गेयमिवैदं तु केवलं श्रुति पेशलम्॥ काव्यालङ्कार १/३४.

द्वारा वैदर्भी और गौणी मार्ग नियन्त्रित होते हैं। उत्कट समास—विरहित कोमल कान्त पदावली माधुर्य और प्रसाद गुणों का निर्माण करती है। इसके विपरीत ओज गुण का वैभव का उत्कृष्ट समास के गौरव में देखा जाता है।

भामह की दृष्टि में गुण और मौलिक सम्बन्ध नहीं है। माधुर्यादि गुण वैदर्भी या गौणीय मार्ग के गुण न होकर सत्काव्य के गुणात्मक रूप हैं।

भामह ने मार्ग की लोकरूढिता का तिरस्कार करके उसकी प्रादेशिकता और उसकी रूढ वस्तुपरकता पर आघात कर भरत के द्वारा प्रतिपादित मार्ग निरूपण को एक मौलिक तथा तर्कमूलक प्रतिष्ठा प्रदान की है। उनका वैदर्भ तथा गौणीय मार्ग तारतम्य की सीमा से मुक्त है। उनकी श्रेष्ठता और निष्कृष्टता में केवल गतानुगतिका मात्र है। इस प्रकार भामह की दृष्टि में सामान्य और विशेष प्रकार के गुणों के अनुरोध से ही वैदर्भ और गौणी काव्यमार्ग का निर्माण होता है।

रुद्रट

रुद्रट ने समास को रीति के मुख्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया। उनका अर्थवान शब्द पाच प्रकार का होता है।^१ नाम, आख्यातादि पाच प्रकार के शब्दों में नाम की दो प्रकार की वृत्ति होती है। समास से युक्त वृत्ति की तीन रीतियाँ होती हैं। रीति भगविच्छिति आदि पर्याय है।^२ रुद्रट ने वामन को वैदर्भ गौणी और पाचाली इन तीनों रीतियों में सीधी सख्या लाटीया जोड़कर रीतियों की सख्या चार कर दी है।

लघु, माध्यम और दीर्घ समासों के आलम्बन से पाचाली लाटीया और गौणीय रीतियों का स्वरूप निर्धारण होता है।

१ ननु शब्दार्थो काव्य शब्दस्तत्रार्थताननेकविधः ।

वर्णानां समुदायः स च भिन्नः पञ्चधा भवति ॥ २/१ (काव्यालङ्कार २/१)

२ नाम्ना वृत्तिद्वेधा भवति समासासमासभेदेन ।

वृत्ते समासवत्यास्तत्र स्यू रीतयस्तिष्ठन् ॥ काव्यालङ्कार २/३

इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि पाचाली रीति में दो या तीन पद समस्त होते हैं। लाटीय में पाँच या सात गौणी रीति में कवि अपनी शक्त्यानुसार समासों का बाहुल्य उत्पन्न कर सकता है।^१

रुद्रट का दूसरा प्रास्थानिक भेद महत्वपूर्ण है। इनकी रीतिया भौगोलिक भाषा शैली और वैयक्तिक भाषा शैली के निमोक में नहीं बधी हुई हैं वरन् रीतिया रसोचित और विषयोचित होकर ही सत्काव्य का निर्माण करती हैं।^२

शृङ्गार एव करुण रसों में वैदर्भी एव पाचाली रीतियों का विकास देखा जाता है तथा भयानक एव अद्भुत रसों में लाटीया और गौडीया रीतियों का विन्यास अपेक्षित है। रुद्रट का कथन है कि माधुर्य और ललित धर्म वाले रसों में असमारा या किंचित समास की सत्ता को स्वीकार करने वाली वैदर्भी या पाचाली रीति का विलास काव्य को रसमय बनाता है। जब कि इन धर्मों के विपरीत रसों में माध्यम समास या दीर्घ समास को अगीकार करने वाली लाटीया या गौणी रीति को स्वीकृति चमत्कार उत्पन्न करती है।

रीति के सम्बन्ध में रुद्रट की विभिन्न मान्यताएँ समास विषयक रीति का विभाजन हैं। समासहीन रचना वैदर्भी की आधारशिला है।^३ पाचाली में स्वल्प समास बाहुल्य रहता है। ये रीतिया अलङ्कार नहीं होता वरन् ये शब्दाश्रित गुण हैं।^२ काव्यालङ्कार वृत्ति यद्यपि रुद्रट ने बारहवे, चौदहवे और पन्द्रहवे अध्याय में रस और उनके भेद की विशद विवेचना की है फिर भी अलङ्कार निरूपण में ही उनका विशेष आग्रह है। अलङ्कारों का निरूपण उन्होंने करीब-करीब छह-सात अध्यायों में किया है। इसीलिए इन्हें अलङ्कारवादी आचार्य के अन्तर्गत रखा जाता है।

१ पाचाली लाटीया गौडीया चेति नामतोऽभिहिता ।

लघुमध्यायत विरचनसमासभेदादिमास्तत्र ॥ काव्यालङ्कार ३

२ इह वैदर्भी रीति पाञ्चाली वा विचार्य रचनीया ।

मधुराललिते कविना कार्ये वृत्ती तु शृङ्गारः ॥ काव्यालङ्कार १४/३७

३ वृत्ते रसमासाया वैदर्भी रीतिरेकैव ॥ काव्यालङ्कार २/६

राजशेखर

चौदह विधाओं का एक मात्र आधार काव्य विधा को मानने वाले राजशेखर ने काव्यविधा को धर्म और अर्थ को पारित का साधन माना जाता है।^१ राजशेखर का यह मत सिद्ध करता है कि वे काव्य में गुण और अलङ्कार सजा को सुरम्य पूर्वक स्वीकार करते हैं। इन्होंने वृत्ति की सत्ता स्वीकार करने के लिये काव्य पुरुष की कथा निर्माण की। इन्होंने वेश विल्यास को प्रवृत्ति नाच गान आदि विलास की वृत्ति और वचन विन्यास क्रम को रीति की सजा दी है।^२

राजशेखर ने वैदर्भी पाचाली और गौणी तीन रीतियों को स्वीकार किया है।^३ राजशेखर ने रुद्रट की लाटीया रीति को पाचाली रीति के ही भीतर ही अन्तर्भाव कर लिया भरतमुनि की ओजमागधी पाचाल मध्यमा अवन्ति और दक्षिणात्य नामक चार प्रवृत्तियों की ओर भारती सात्वती आरभटी और कैशिकी नामक चार वृत्तियों का अवलम्ब लेकर राजशेखर ने वैदर्भी गौणी पाचाली रीतियों का सुत्रपात किया है। भरतमुनि को आजमागधी प्रवृत्ति और भारती वृत्ति की सत्ता में राजशेखर की गौणी की आत्मा निवास करती है। पाचाल मध्यमा प्रवृत्ति और सात्वती आरभटी वृत्तियों में राजशेखर की पाचाली रीति का निन्यास देखा जा सकता है। इनकी पाचाली रीति, भरत की अतन्हि प्रवृत्ति और सात्वती कौशिकी वृत्तियों में निवास करती है। भरत की दक्षिणात्य प्रवृत्ति तथा कैशिकी वृत्ति की सात्भूत राजशेखर की वैदर्भी रीति है।^४ राजशेखर का रीति विभाजन क्रमशः रुद्रट का अनुशरण प्रतीत होता है। वैदर्भी में समास का अभाव तथा स्थानोचित अनुराग की सम्भावना रहती है।

१ रीतियों नालङ्कार, किं तर्हि शब्दाश्रया गुणा रति।

२ सकल विद्यास्थाने । काव्यमीमांसा वृ० १०/११,

३ तत्र वेष विन्यास क्रम प्रवृत्ति विलास विन्यास क्रमो वृत्ति, वचनविन्यास क्रमो रीति।

तृ० अ (पृ० २१)

४ रीतयास्तु त्रिस्त्रिंशस्तास्तु पुरस्तात्

। काव्यपुरुषोत्तमतिनामक, तृतीय अध्याय पृ० २३

पाचाली में लघु समास तथा लघु अनुप्रास की स्थिति रहती है। गौणी में दीर्घ समास एवं अत्यधिक अनुप्रास रहता है। सम्पूर्ण रीतियों में वैदर्भी रीति सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसमें सरस्वती का साक्षात् निवास रहता है। बालरामायण नामक नाटक में इन्होंने वैदर्भी रीति को रसप्रसूत वाक् देवता का आधिक्य माना है। बालरामायण में इन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि वैदर्भी रीति में माधुर्य गुण की प्रधानता रहती है। इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि पाचाली और गौणी रीति में ओज की प्रधानता रहती है। यद्यपि प्रसादगुण का उल्लेख नहीं मिलता फिर भी यह सिद्ध हो जाता है कभी स्थिति सर्वत्र समान रहती है।

रामायण के एक श्लोक में इसकी एक रीति 'मैथिली' भी जानी जाती है। यह वैदर्भी के समान कथा की प्रतीत होती है।^१

राजशेखर के इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि उनकी सम्पूर्ण मौलिक उद्भावनाओं में परम्परा का परित्याग नहीं है। रीतियों के भीतर रसों की स्थिति इनके द्वारा स्वीकृत की गयी है। इसीलिए इन्हें भी अलंकारवादी आचार्य कहा जाता है।

भोजराज

रीतियों के विवेचन में भोज की मौलिकता अपने आप में महत्वपूर्ण है। शृङ्गार प्रकाश में इन्होंने पाचाली गौणी वैदर्भी रीतियों की विवेचना की थी। किन्तु सरस्वती कण्ठाभरण में इन्होंने अवन्तिका और मागधी की भी कल्पना करके इन्होंने रीतियों की संख्या ६ कर दी है। वैदर्भी एवं पाचाली की मध्यस्थ अर्थात् दो तीन या तीन चार समास पदों वाली रीति अवन्तिका कही जाती है।^२ भोज की रीति विवेचन में राजशेखर की अनुकृति विवेचित

१ बालरामायण— दशम अङ्क

२ सरस्वती कण्ठाभरण २/३२

होती है।^१ इन्होंने रीति का प्रतिभाषित करने का सफल प्रयास किया है। वैदर्भी आदि पन्थ काव्य में मार्ग कही जाती है। गत्यर्थक 'रीड' धातु से निष्पन्न होने के कारण मार्ग रीति कहे जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भोज की दृष्टि में रीति का अर्थ है कवि गमन मार्ग।^२

भोज ने रीतियों की परिभाषा में मौलिकता की स्थापना की है। इसकी लाटीय रीति समस्त रीतियों का सम्मिश्रण है। वही रीति यदि सम्पूर्ण मिश्रण की अभावता को प्राप्त होती है तो वही रीति मागधी कही जाती है। वैदर्भी रीति में समास का अभाव होता है। उसमें श्लेषादि गुणों के साथ-साथ वीणा के स्वर के समान माधुर्य रहता है। भोज की पाचाली रीति पाच छह समास पदों से युक्त होती है तथा इसमें ओज और कान्ति नामक गुणों के अभाव के साथ-साथ माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त होती है।^३ गौणी रीति उत्कट समास से युक्त होकर ओज और कान्ति नामक गुणों को धारण करती है।^४

भोज मूलतः अलंकारवादी विचारक सिद्ध होते हैं क्योंकि इनके श्लेषादि गुण शब्दार्थगत होते हैं इसके विपरीत रसवादी विचारक माधुर्यादि गुणों को रसगत मानते हैं। इन्होंने रीति का विवेचन वामन के आधार पर किया है।

कुन्तक

रीति विवेचन के इतिहास में कुन्तक का विशेष महत्व है। कुन्तक ने रीति के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग करके रीति को भौगोलिक सीमा से मुक्त किया है। इनका वक्रोक्तिकाव्य जीवितम् विचार अलंकारवादी

१ समस्त पदाभोज कान्तिविवर्जिताम्।

मधुरा सुकुमारा च पाचाली कवयो विदुः॥

२ समस्तपच मधुरा सुकुमारा च पाचाली कवयो विदुः॥ सरस्वती कण्ठाभरण २/३०

३ समस्तात्युक्त पदाभोज कान्तिगुणान्विताम्। गौडीयेति विजानन्ति रीति रीतिविक्षण ॥ २/३१)

४ सरस्वतीकण्ठाभरण

दृष्टिकोण का परिपूरक है। इनकी रीति विवेचना में मौलिकता के साथ-साथ अलंकारवादिता प्रतिविम्बित होती है।

कुन्तक की रीति विवेचना भौगोलिक सीमा से मुक्त होकर कवि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का प्रतिफल है।^१ इनकी सज्ञा रीति न होकर मार्ग है। स्वरादि की सख्या के समान मार्गों की सख्या तीन है। कुन्तक इन मार्गों को कवियों के प्रस्थान अर्थात् काव्य का हेतु मानते हैं।^२

ये मार्ग सुकुमार विचित्र एव माध्यम नाम से जाने जाते हैं। कुन्तक ने वैदर्भी आदि रीतियों को सुकुमार, विचित्र और माध्यम नाम इसलिए दिया है कि कवियों के स्वभाव का प्रतिफलन हाती है। यदि रीतियाँ का देश भेद के आधार पर स्वीकार किया जाये तो रीतियों की सख्या अन्त हो जाएगी। अतः कवि स्वभाव के भेद कारण रचना में भेद स्वाभाविक है।^३ स्वाभाविक शक्ति के साथ निपुणता और अभ्यास काव्य निर्माण के हेतु सिद्ध होते हैं। इसलिये कुन्तक के मार्ग भेद की आधारशिला स्वाभाविकता सिद्ध होती है। व्युत्पत्ति और अभ्यास स्वभाव की अभिव्यक्ति के हेतु बनते हैं। स्वभाव व्युत्पत्ति और अभ्यास के उपकार आर उपकारक रूप में अवस्थित होने के कारण स्वभाव पहले प्रारम्भ होता है और व्युत्पत्ति और अभ्यास उनका परिपोषण ठीक उसी प्रकार करता है जैसे चन्द्रकान्तमीठा का चन्द्र की किरणें।^४

कुन्तक ने स्वभाव के आधार पर सुकुमार मार्ग की विस्तृत विवेचना की है। कवि की अम्लान प्रतिभा से स्फुरित होने वाला आह्लादक शब्द तथा अथ से रमणीय तथा स्वाभाविक रूप से हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले

१ सम्प्रति यत्र ये मार्गा कविप्रस्थानहेतवः।

सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमसो चोभयात्मकः ॥ वक्रोक्ति जीवितम् १/२४

२ तत्र तस्मिन् काव्ये मार्गा पन्थानस्त्रयः सम्भवन्ति।

३ कविस्वभाव भेद निबन्धत्वेन काव्य प्रस्थान भेद समञ्जसता ग्राह्यते

४ सर्वस्य दस्य चिदनादिनासनाभ्यासाधिदासितचेतसः

प्रथमोर्न्मषः स्वभावाभिव्यञ्जनेनैव साफल्यं भजतः ॥ १ पृ ६६

अल्प अलंकारों से युक्त तथा प्रदार्थों के स्वाभाविक नैपुण्य को अभिव्यक्त करने वाला रमणी के लावण्य के सादृश्य शोभातिशय का पोषण करने वाला प्रतिभा से उल्लसित होने वाला सुकुमारमार्ग है। जिस मार्ग से कालिदास की कविता कामिनी यौवन के सौरभ को विखेरती हुई अठखेलिया करती हुई गयी है।^१ कुन्तक का सुकुमारमार्ग माधुर्य प्रसाद लावण्य और अभिजात्य गुणों से सुशोभित होकर कविताकामिनी का श्रृङ्गार करता है। समास विहीन माधुर्य गुण कानों में कोकिला की ध्वनि घोलता हुआ अपने रमणीय अर्थ से सहृदय को आनन्द की सरिता में मज्जित कराता है।^२

कुन्तक का विचित्र मार्ग वक्रोक्ति वैचित्र्य पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति है। विचित्र मार्ग अत्यन्त दुःसंवरणशील है। इस मार्ग में शब्द और अर्थ के भीतर अर्थात् स्वरूप में प्रवेश किये हुए वक्रता की विच्छति स्फुरित होती हुई सी लक्षित है। इस मार्ग में कवि-प्रतिभा का चमत्कार देखा जाता है। इसीलिये कुन्तक ने बताया कि विचित्र मार्ग का आश्रय योग्य कवि उसी प्रकार ले सकते हैं जैसे सुभट लोग वीरों की तलवार की धार पर चलते हैं। कहने का आशय यह है कि सुकुमार मार्ग जिस प्रकार रस-भावादि की अनुभूति के स्वाभाविक चित्रण की प्रधानता रहती है उसी प्रकार वैचित्र्य मार्ग में सौन्दर्यात्मक कला की प्रधानता रहती है।^३

इस विचित्र मार्ग को अलंकृत करने वाले माधुर्य, प्रसाद लावण्य और अविभिजात्य गुण होते हैं। वैचित्र्य मार्ग का माधुर्य गुण पदों में विदग्धता का रस प्रवाहित करता हुआ शिथिलता का परित्याग कर वाक्य विन्यास की

१ अम्लान प्रतिभोदिभन्ननवशब्दार्थ बन्धुर ।

अयत्नविहितस्वल्प मनोहारिविभूषण ॥ वजी प्रथमोन्मेष

२ श्रुतिपेशलता सुस्पर्शमिव चेतसा ।

स्वभावभसृणच्छायमाभिजात्य प्रचक्षते ॥ वक्रोक्ति जीवितम् १/३२

३ विचित्रो यत्र वक्रोक्तिवैचित्र्य जीवितायते ।

परिस्फुरति यस्यान्त सा काव्यतिशयाभिधा ।

सोडति दुः सचक्षरो येन विदग्धकवयो गता ।

खड्गधारा पथेनैव सुभटानां मनोरथा ॥ वक्रोक्ति जीवितम् १/४२-४३

रमणीयता का श्रृंगार करता है।^१ किन्तु इस मार्ग के प्रसाद गुण में किंचित ओज का स्पर्श रहता है किन्तु इसमें समासहीन पदों की रचना कविता के अर्थ सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है। विचित्र मार्ग के लावण्य गुण में परस्पर पदों में सश्लिष्टता रहती है तथा विसर्गों से युक्त अन्त वाले तथा सयोग से पूर्व तत्त्व पदों के सयोग से कविता के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है।

कुन्तक के विचित्र मार्ग के अभिजात्य गुणों का निरूपण करते हुए बताया है कि जो न तो बहुत अधिक कोमल कान्ति वाली होती है और न अधिक काठिन्य को धारण को धारण करता है। वह कवि प्रौढि से निर्मित अर्थात् कवि की समग्र कुशलता से सम्पादित अभिजात्य गुण सहृदय के हृदय को आनन्दित करने वाला होता होता है।^२

कुन्तक ने तृतीय मार्ग मध्यम मार्ग की विवेचना में चार कारिकाओं का उपयोग किया है। मध्यम मार्ग में कवि की दोनों प्रतिभाओं की सहज तथा व्युत्पत्त्यादिजन्य कान्ति के उत्कर्ष से शोभित होने वाले सुकुमारता एवं विचित्रता सकीर्ण होकर कविता सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। पूर्व के कथित दोनों मार्गों के गुण माध्यम मार्ग की वृत्ति का आश्रय लेकर सघटना की शोभा के विरुद्ध करता है। दोनों मार्गों के सम्मिश्रण की स्पर्धात्मक भूमिका सहृदय के हृदय को आनन्दित करती है। इस मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर के रमणीय वस्तु के व्यसनी एवं कवि सहृदय कविता के माध्यम से आनन्द प्राप्त करते हैं।^३

कहने का आशय यह है कि सुकुमार और विचित्र दोनों के सम्मिश्रण के बीज से निर्मित होने वाले सहज और आहार्य सौन्दर्य की समन्विति आनन्दानुभूति का कारण बनती है। कुन्तक ने विचित्र मार्ग में भी माधुर्यादि

१ असमस्तपदन्यास प्रसिद्ध कविवर्त्मनि।

किञ्चिदोज स्पृशन् प्रायः प्रसादोऽप्यत्र दृश्यते॥ वजी १/४५

२ यन्नातिकोमलच्छाय नातिकाठिन्यमुद्वहत्।

अभिजात्य मनोहारि तदत्र प्रौढिनिर्मितम्॥ वजी १/४८

३ माधुर्यादिगुणग्रामो वृत्तिमाश्रितत्य मध्यमम्।

यत्र कामीय पुण्यति वन्धच्छायातिरिक्ताम्॥ वजी ५०

गुणों की सत्ता का निरूपण किया है। माधुर्यादि चारों गुण यद्यपि सुकुमार मार्ग और वैचित्र्य मार्ग दोनों में रहते हैं किन्तु दोनों में इनकी स्थिति के मौलिक भेद का अपलाक नहीं किया जा सकता। माध्यम मार्ग सुकुमार और विचित्र मार्ग के सम्मिश्रण की परिणति है इसीलिए कुन्तक ने माध्यम मार्ग के माधुर्यादि गुणों का लक्षण न करके उनके उदाहरणों से ही उनकी सत्ता सिद्ध की है।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह ने वैदर्भ और गौडीमार्ग के अलंकारवदा अग्रम्यता अर्थयता न्यायता और अनुकूलत्व ये पाँच सामान्य गुण ही काव्य का निर्धारण करते हैं।^१

अलंकारवता आदि सामान्य गुण शब्दार्थ रूप काव्य के नित्य धर्म हैं, क्योंकि इनके बिना काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है।^२ शब्दार्थ की अलंकारवत्ता इन्हे अलंकारवादी आचार्य की उपाधि से विभूषित करती है। वैदर्भ और गौणी मार्ग काव्य के लिये अप्रधान तत्त्व सिद्ध होते हैं क्योंकि ये काव्य के अनिमत तत्त्व हैं। इसीलिए भामह को अलंकारवादी आचार्य माना जाता है।^३

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के आचार्य कुन्तक की मौलिक परम्परा के किंचित अंश को स्पष्ट करने वाली आलंकारिक परम्परा है। इनके सुकुमार आदि मार्गों की सकल्पना कवियों के प्रास्थानिक भेद के रूप में रचनात्मक वैशिष्ट्य का प्रतिफल है। कुन्तक का काव्य शब्दार्थ का साहित्य है।^१ इस साहित्य में शब्द और अर्थ की आह्लादकारिणी अभिव्यक्ति सम्पादित की जाती है। इस सन्दर्भ

१ अलंकारवदग्राम्यमर्थं न्याय्यमनाकुलम्।

गौडीयमपि साधीयो वैदर्भमिति नान्यथा। भामह काव्यालङ्कार ३५

२ रूपकादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्वहुधोदित।

न कान्तमपि निभूष विभाति वनिताननम्॥ काव्यालङ्कार १३

३ तदेतदाहु शौशब्द नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी।

शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्ट द्वय तु न॥ काव्यालङ्कार १५

४ शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशलिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणि॥ ब जी प्रथमोन्मेष

की पृष्ठ भूमि में वक्रोक्ति वह केन्द्र बिन्दु है जो सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करती है। यह वक्रोक्ति वह केन्द्र बिन्दु है जो सम्पूर्ण साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करती है। यह वक्रोक्ति अलंकार रूप है जिसमें कवि चातुर्यपूर्ण भंगिमा का विलास देखा जाता है।^१ अलंकार शब्दार्थ है इस मान्यता के कारण शब्द और अर्थ अलंकार की कोटि में रखे जा सकते हैं। कुन्तक की वक्रोक्ति की सत्ता काव्यव्यापी धर्म के रूप में सामान्य स्थिति को प्राप्त कर शब्द और अर्थ के साथ नित्यत्व सम्बन्ध को प्राप्त होती है।^२ अतएव कुन्तक को अलंकारवादी आचार्य माना जा सकता है।—

वामन तो अलंकारवादी आचार्य है ही। इनकी काव्य ग्राहिता अलंकार की सत्ता पर आधारित है।^३ उपमादि अलंकार काव्य शोभा की अतिशयता के हेतु शब्द और अर्थ के अनित्य धर्म है। वामन की विशिष्ट पद रचना रीति काव्य व्यापी धर्म होने के कारण उसकी नित्यता काव्य के आत्मत्व को सिद्ध करती है। इस रीति के श्लेषादि गुण नित्य सम्पत्ति हैं। वामन के यही गुण अलंकारों के रूप में काव्य शोभा के सामान्य और नित्य धर्म हैं। इनका रीति सिद्धान्त साम्प्रदायिक इसलिये है क्योंकि रीति काव्य का सामान्य धर्म ही नहीं वरन् काव्य की आत्मा है। इनका विवेचन इन्हें अलंकारवादी आचार्य सिद्ध करता है।

रीति प्रक्रिया की अलंकार तथा अलंकार्यता

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह का रीति विवेचन काव्य प्रक्रिया का अनित्य धर्म है। अलंकारवत्ता आदि सामान्य गुण तथा नित्य गुण शब्दार्थ के अलंकार और गौण रूप से रीति अर्थात् मार्ग के भी अलंकार्य हैं और शब्दार्थ अलंकार्य है। साथ ही साथ भामह की रीति विवेचना भी काव्य का एक गाण तत्त्व है जिसे हम अनित्य कह सकते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शब्दार्थ अलंकार्य है।

१ उभावेताबलकायो तपो पुनरलकृति।

२ वक्रभाव प्रकरणे प्रबन्धे वास्ति यादृश।

३ काव्य ग्राह्यम् लङ्कारात्। काव्यसंस्कार सूत्र वृत्ती प्रथमाधिकरणे

माधुर्य ओज प्रसाद नामक विशिष्ट गुणों की स्वीकृति समासाधीन होकर रीति (अर्थात् मार्ग) के स्वरूपात्मक औचित्य को प्रकट करते हैं। चूँकि माधुर्य ओज प्रासाद गुण समास के अधीन निर्धारित होने के कारण शब्दार्थ रूप काव्य के विशिष्ट धर्म होते हैं। साथ ही साथ ये विशिष्ट गुण भामह के मार्ग के उपकारक होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि माधुर्य आदि विशिष्ट गुणों की अलंकारता और रीति तथा मार्ग की अलंकार्यता सिद्ध होती है।

वामन का रीति विवेचन काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है। उनकी दृष्टि में रीति या मार्ग काव्य की आत्मा है।^१ उनकी विशिष्ट पद रचना रीति वैदर्भी गौणी और पाचाली मार्ग की संरचनाओं पर आधारित है। वस्तुतः पद रचना का गुणात्मक वैशिष्ट्य रूप रीति की अलंकारिता सिद्ध होती है। क्योंकि वामन ने यह स्वीकार किया है कि काव्य की सत्ता का मूलधार अलंकार की ग्राहिता है और यह अलंकार सौन्दर्यात्मक सत्ता की अभिव्यक्ति के लिये दोष के परित्याग, गुण तथा अलंकारों के उपादान पर आधारित होता है।^२ काव्यालङ्कार वामन की दृष्टि में काव्य शोभा की वृद्धि करने वाले श्लेषादि गुण विशिष्ट पद रचना रूप रीत्यात्मक काव्य के अनित्य अलंकार हैं। श्लेषादि गुण तथा उपमादि अलंकार दोनों ही शब्दार्थ रूप काव्य के शोभाधारक धर्म हैं। केवल अन्तर इतना है कि उपमादि अलंकारों की अनित्यता है और श्लेषादि गुणों की नित्यता है। वामन की रीत्यात्मक काव्यता श्लेषादि गुणों की विरहता से कथमपि सिद्ध नहीं हो सकती है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि रीति अलंकार की अपेक्षा व्यापक तत्त्व है। अलंकार रीति की अपेक्षा से अलंकार है रीति अलंकार्य क्योंकि रीति काव्य का आत्मस्थानीय तत्त्व स्वीकृत है। इस प्रकार रीति की अलंकार्यता और उपमादि की अलंकारता सिद्ध होती है। वक्रोक्तिवाद के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक के शब्दार्थ अलंकार्य है और वक्रोक्ति

१ रीतिरात्मा काव्यस्य। काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १/२/६

२ सौन्दर्यमलङ्कार। १/१/२

काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्। स दोषागुणालङ्कार ।। काव्यालङ्कार

अलंकार है।^१ उनकी दृष्टि में काव्य बिना मार्ग के उसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता जैसे उष्णता के अभाव में अग्नि। इसलिये यह सिद्ध होता है कि सुकुमारादि मार्ग काव्य का नित्य धर्म है। काव्यरूपता वक्रोक्ति के बीज से अभिव्यक्त होती है। कवि स्वभाव^२ ही वक्रता के कारण ग्राह्य होते हैं। वस्तुतः कुन्तक की वक्रोक्ति और शब्दार्थ रूप काव्य में अलंकार तथा अलंकार्य भाव सम्बन्ध साक्षात् है किन्तु वक्रोक्ति का रीति के साथ यही सम्बन्ध शब्दार्थ के कारण सिद्ध होने के कारण परम्परा है।

अलंकारवारियों की दृष्टि में रीति का अस्तित्व

काव्य शास्त्र की लम्बी यात्रा ने अनेक सिद्धांतों को जन्म देकर साहित्य शास्त्र की सूक्ष्मता की मीमांसा प्रस्तुत की है।

पूरे काव्यशास्त्र को अलंकारवादी और अलंकार्यवादी विवेचन की कोटि में विभक्त कर सकते हैं। रस ध्वनि औचित्य सिद्धान्तों की स्थापना करने वाले आचार्य अलंकार्यवादी कहे जाते हैं। तीनों सिद्धांत में जितना महत्वपूर्ण सिद्धान्त रस और ध्वनि का है उतना औचित्य का नहीं है। रस और ध्वनि वादी आचार्यों ने रीति की स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। औचित्यवादी आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि से औचित्य ही काव्य की आत्मा है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि में जो वस्तु जिसके अनुरूप हो उसको औचित्य कहते हैं, और उचित का भाव ही औचित्य कहलाता है।^३ उनकी दृष्टि में औचित्य ही काव्य का प्राणरूप है। जिस काव्य में प्राणरूप औचित्य नहीं है उसमें अलंकारों तथा गुणों का विनियोजन सर्वथा उसी प्रकार व्यर्थ है।^४

१ वाच्यमभिधेय वाचक शब्दों, वक्रोक्तिरलंकरणम्॥ वजी १/२३

२ कवि स्वभाव भेदनिबन्धनत्वेन काव्यप्रस्थानभेद समञ्जसता गायते। वजी प्रथमोन्मेष

३ उचित प्रहुराचार्या सदृश किल तस्य तत्।

उचितस्य च यो भावस्तदोचित्यं प्रचक्षते॥ औचित्यविचार चर्चा ७

४ काव्यस्यायमलंकारैः किं मिथ्यागणितैः गुणैः।

यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते॥ औचित्यविचारचर्चा ४

जैसे अष्टावक्रानारी को वस्त्राभूषण से अलंकृत करना। प्रायः सभी आचार्यों ने किसी न किसी रूप में औचित्य को स्वीकार किया है लेकिन क्षेमेन्द्र के औचित्य में वैशिष्ट्य है। क्षेमेन्द्र का कथन है कि अलंकार अलंकार ही है और गुण गुण होते हैं। परन्तु रससिक्त काव्य का स्थिरात्मक जीवित तत्त्व तो औचित्य ही है।^१

अलंकारों का अलंकार्यत्व उचित स्थान पर विन्यास होने के कारण है इसी प्रकार औचित्य सीमा को स्वीकार करने वाले गुणों का गुणत्व है।^२ क्षेमेन्द्र का रससिद्ध गुणौचित्य और रीत्यौचित्य की स्पष्ट मीमांसा प्रस्तुत नहीं करता। रीति के सम्बन्ध में जिस प्रकार अन्य आचार्यों ने विचार प्रस्तुत किया है उसी प्रकार का विचार औचित्यविचार चर्चा में देखने को नहीं मिलती है। ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन के उपनागरिका आदि शब्द वृत्तियों और कैशिकी आदि अर्थ वृत्तियों के लिये औचित्य की व्यवस्था^३ करते हुए रीति के औचित्य^४ की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। इस प्रकार का विचार क्षेमेन्द्र की लेखनी से प्रसूत नहीं हुआ इसलिये औचित्य का शैली के साथ उतना महत्व नहीं है जितना रस और ध्वनि का।

आनन्दवर्धन

ध्वन्यालोक जैसे महान ग्रन्थ के प्रणेता आनन्दवर्धन ने पूर्व के आचार्यों के द्वारा स्वीकृत रीति और मार्ग के अर्थ में सघटना शब्द का प्रयोग किया है।^५ यह सघटना पदगत भी होता है और वाक्यगत भी^६।

१ अलंकारस्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणा सदा।

औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम्॥ औचित्यविचारचर्चा ५

२ उचितस्थानविन्यासदलकृतिरलङ्कृति।

औचित्यादच्युता नित्य भवन्त्येव गुणा गुणा॥ औचित्यविचारचर्चा।

३ रसाद्यनुगुणत्वेन व्यवहारोऽर्थशब्दयो।

औचित्यवान् यस्ता एता वृत्तयो द्विविधास्मृता। ध्वन्यालोक २/३३

४ विषयात्रयमत्यन्तदौचित्य ता नियच्छति।

काव्यप्रभेदाश्रयत स्थिता भेदवती हि सा॥ ध्वन्यालोक ३/७

५ वाक्ये सघटनायाच स प्रबन्धेऽपि दीप्यत। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत

६ सघटना प्रदग्ता वाक्यगता च ...। लोचन ३/२

आनन्दवर्धन ने सघटना को रचना नाम देकर सघटना के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया है।^१ रसादि की व्यञ्जकता की विवेचना के अवसर पर सघटना की चर्चा उपस्थित कर रीति की सकल्पना को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। आनन्द वर्धन की दृष्टि में रसादि सघटना से भी व्यग्य होते हैं। इनका कथन है कि असलक्ष्य कम व्यग्य ध्वनि सघटना में भी भाषित होती है। सघटना में सम् उपसर्ग घट् धातु + ल्युट् प्रत्यय (भाव में लगा) हुआ है। सघटना के स्वरूप व्याख्या में आचार्य आनन्दवर्धन का कहना है कि सघटना मूलतः समास में रहती है। अर्थात् समास-रहित मध्यम समास से विभूषित तथा दीर्घ समास वाली तीन प्रकार की सघटनाये रस की व्यञ्जक होती है।^२ आनन्दवर्धन का यह विवेचन सिद्ध करता है सघटना व्यक्ति सापेक्ष न होकर प्रवृत्ति सापेक्ष या सिद्धान्त सापेक्ष है। दीधितकार ने सघटना को स्पष्ट करते हुए बताया कि सघटना पद और वाक्य के सन्निवेश की शक्ति है अर्थात् सघटना में पद और वाक्यों का औचित्यपूर्ण सन्निवेश किया जाता है।^३ ध्वनिकार की दृष्टि में सघटना वैदर्भी पाचाली और गौणी रीति का रूपान्तर है। कहने का आशय यह है कि जो असमासा सघटना है उसे वैदर्भी रीति कह सकते हैं और मध्यम समास रचना को पाचाली रीति और दीर्घ समासा रचना को गौणी रीति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन की सघटना न भौगोलिक स्वर्ण श्रृंखला में आबद्ध है और न कवि की स्वाभाविक भाषा शैली में ही। इनकी सघटना वक्ता वाच्य विषय, काव्य के भेद, पर्याय वन्ध परिकथा खण्ड कथा आदि से निर्धारित होती है।^४

१ ध्वन्यालोक ३/६

२ असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।

दीर्घसमासेति त्रिधा सङ्घटनोदिता।। ध्वन्यालोक ३/५

३ सङ्घटनायां पदवाक्यसन्निवेशचमत्कारीतौ।। ध्वन्यालोक दीधित

४ अविद्यमानः समासो ग्रन्था सा वैदर्भीरूपेका, मध्यमेमेना/ तृतीय उद्योत दीधिति

आनन्दवर्धन ने वक्ता या वाच्य के औचित्य को ही सघटना का नियामक माना है।^१ वक्ता या तो कवि होता है या कवि निबद्ध होई पात्र। वाच्य भी ध्वन्यात्मक रस का अंग होता है अथवा रसाभास का अंग। वाच्य अभिधेपार्थ होता है। वाच्य की बहुप्रकारता देखी जाती है। कवि निबद्ध पात्र में पात्र के औचित्य का ध्यान देना पड़ता है। जब कवि या कवि निबद्ध वक्ता रस भाव से युक्त होता है और रस की ध्वनि रूप व्यंग्य न होकर रसबद्ध अलंकार हो तब माध्यम समासात्मक घटना रस की अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार पात्र विशेष की दृष्टि में रचना का विविध स्वरूप निर्धारित होता है। सरस एव नीरस पात्रों के द्वारा सघटना निर्धारित होता है।^२

आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित विषय के अन्तर्गत काव्य प्रभेद आदि रूप आ जाते हैं।^३ आनन्दवर्धन ने सघटना के नियामक जिन हेतुओं की चर्चा की है उसका अध्ययन करने से यही ज्ञात होता है कि आनन्दवर्धन की सघटना पूर्वाचार्यों की भांति न तो भौगोलिक लौह शृङ्खला में बधी हुई है और न सामूहिक भाषा शैली की रूढ़िता को वहन करती हुई अपना दम तोड़ रही है। इनकी सघटना कवि की स्वच्छन्दतावादी के बीज से भी उद्भावित नहीं होती। इनकी सघटना में तो कवि और विषय दोनों के सन्निवधन के औचित्य का सन्निवेश है। अभिव्यक्ति के लिये कवि स्वतन्त्र रूप से विषय का चयन करते हुए किंचिद् परम्पराओं से आबद्ध रहता है। इसलिये इसकी स्वच्छता के लिये किंचिद् नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। अतः आनन्दवर्धन ने सघटना के लिये विशेष व्यवस्था का नियमन किया उनकी

१ विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्यं ता नियच्छति।

काव्यप्रभेदाश्रयतः स्थिता भेदवती हि सा ॥ ७ तृतीय उद्योत

२ तत्र वक्ता, कवि कविनिबद्धो वा

करुणविप्रलम्भयोस्त्वसमासैव सङ्घटना। ध्वन्यालोक ३/६ की व्याख्या

३ विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्यं ता नियच्छति।

काव्यप्रभेदाश्रयतः स्थिता भेदवती हि सा ॥ ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत ७

दृष्टि में जैसी व्यापक्रम देखी जा सकती है वह अन्यत्र नहीं मिलती। वृत्ति के औचित्य का अनुशरण रसाभिव्यक्ति पर आधारित है। आख्यायिका तथा कथा में गद्य निबन्धन का बाहुल्य होने के कारण उनकी रचना में सघटना का आभाव नहीं है। आख्यायिकाओं में तो मध्यम समास और दीर्घ समास वाली सघटना का ही औचित्य सौन्दर्यवर्धक होता है। कथा में विकटबन्ध की प्रचुरता होते हुए भी रसबन्ध^१ के औचित्य का अनुबन्ध करना चाहिए।^२ आनन्दवर्धन ने सघटना की स्थिति का निर्णय करते हुए बताया कि रीति अलंकार गुण आदि तत्त्व भावादि के अग सिद्ध होते हैं। इनकी दृष्टि में रसभावादि ध्वनि काव्य की आत्मा है। काव्य की आत्मा होने से काव्य का सबसे प्रधान तत्त्व है। अलंकार आदि तो ध्वनि रूप लावण्यमयी नारी के अलंकार तुल्य हैं। माधुर्य, ओज प्रसाद में तीनों गुण रस के नित्य धर्म के रूप में स्वीकृत किये गये हैं। यदि इन गुणों की सघटना रूप रीति की अभेदता स्वीकृत की जाती है तो सघटना का भी रस के समवाय सम्बन्ध सिद्ध होगा। लेकिन आनन्दवर्धन तो सघटना से निरपेक्ष रस की सत्ता स्वीकार करते हैं। रचना की नीरसता और सरसता सघटना पर आश्रित है। वीर और रौद्र रस की व्यञ्जना के लिये दीर्घ समास की ही अपेक्षा नहीं होती। समासहीन रचना भी वीर और रौद्र रस की व्यंगिका सिद्ध होती है। इसी प्रकार दीर्घ समास की शैल्या पर शयन करने वाली कविता कामिनी में भी शृंगार का विलास देखा जा सकता है।^३ इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि गुण और सघटना की न एकरूपता है और न तादात्म्य ही। गुण सघटना के अधीन नहीं होते क्योंकि गुण और सघटना में धर्म धर्मों का भाव का सम्बन्ध नहीं होता। इसीलिये सघटना का विषय नियत नहीं होता है। वस्तुतः अलंकारों के आश्रय शब्द और

१ एतद्यथोक्तमौचित्यमेव तस्या नियामकम्॥

सर्वत्र गद्यबन्धेऽपि छन्दोनियमवर्जिते॥ ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत।८

२ आख्यायिकायाया तु भुम्ना मध्यमसमासादीर्घसमासे एव सघटने । लोचन ३/८

३ शृङ्गारे दीर्घसमासा दृश्यते रौद्रादि समासा चेति तत्र शृङ्गारे दीर्घ समासा । ध्वन्यालोक लोचन।

अर्थ होते हैं और गुणों के आश्रय रस होते हैं किन्तु सघटना के आश्रय इन दोनों में से कोई नहीं है। पद वाक्य आदि की तरह सघटना को भी रस का व्यजक होना चाहिये।

आनन्दवर्धन की दृष्टि में रीतियों की कोई आवश्यकता नहीं है। शब्द प्रधान रीतियों का चमत्कार जनक गुण ही प्रधान तत्त्व है और इस गुण की रसमात्र वृत्त्यता सिद्ध होती है। इसलिए रीतियों का पृथक् निरूपण आवश्यक है।^१ इसी प्रकार शब्द तत्वाश्रित उपनागरिका आदि वृत्तियाँ और अर्थ तत्त्व से आश्रित कैशिकी आदि वृत्तियाँ रीति तत्त्व की अनुगामिनी हैं। इसलिए इनकी भी ध्वनि काव्य में आवश्यकता नहीं होती।^२

मम्मट

मम्मट ने काव्यप्रकाश में वृत्त्यानुप्रास के प्रसङ्ग में वृत्ति का विचार करते हुए बताया कि वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं। उपनागरिका परुषा कोमला। माधुर्य वर्णों से युक्त उपनागरिका ओज प्रकाशक वर्णों से युक्त वृत्ति को परुषा तथा उससे भिन्न वर्णों से युक्त वृत्ति को कोमला कहते हैं।^३ मम्मट की दृष्टि में इन्हीं वृत्तियों को गौणी, पाचाली और वैदर्भी रीति भी कहा जाता है।^४ इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मम्मट की दृष्टि में वृत्ति और रीति में अर्थान्तरता नहीं है। मम्मट के विचारों में वृत्ति^५ का अर्थ है नियत वर्णों वाली रचना का निश्चित नाम दे सकते हैं। उन्होंने गुण विवेचन के प्रसङ्ग में माधुर्य ओज प्रसाद गुण को नियत रसों में बहने वाला माना है। चित्र के द्रुत का कारण जो आह्लादकता है उसे माधुर्यगुण कहा जाता है इस प्रकार का

१ रीतिलक्षण । ध्वन्यालोक लोचन ३/४७

२ शब्दतत्वाश्रया काश्चिदर्थस्तत्त्वयुजोऽपरा ।

वृत्तयोऽपि प्रकाशन्ते ज्ञातेऽस्मिन् काव्यलक्षणे ॥ ध्वन्यालोक लोचन ३/४७

३ माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते ।

ओज प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा कोमला परै ॥ काव्यप्रकाश नवम् उल्लास ६/१०८/१०६,११०

४ एतास्तिस्त्रो वृत्तय वामनादिदीना मते

वैदर्भीगौडीपाञ्चाल्याख्या रीतियो मता । काव्यप्रकाश नवम् उल्लास ।

५ वृत्ति नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापार । काव्यप्रकाश नवम् उल्लास सूत्र १०४ की वृत्ति

माधुर्य गुण शृंगार और शान्त रसो मे पाया जाता है। ओज गुण वीभत्स और रौद्र रसो मे तथा प्रसाद गुण समस्त रसो मे तथा सम्पूर्ण रचनाओ मे पाया जाता है।^१ माधुर्यादि गुण मम्मट की दृष्टि मे वर्ण समास पद सघटना रूप रचनाओ से व्यक्त होता है। मम्मट के इस प्रकार के कथन से व्यक्त होता है।^२

वृत्ति अथवा रीति का सम्बन्ध वर्ण समास तथा पद—सघटना रूप रचना से है। इन्होने यह भी स्पष्ट किया है कि समास के अभाव मे अथवा मध्यम समास और सौकुमार्य माधुर्य युक्त रचना रूप वृत्तियो से माधुर्य की अभिव्यक्ति होती है। दीर्घ समास एव विकट सघटना से ओज गुण व्यजित होता है। उल्लास मम्मट की दृष्टि मे रचना वर्ण समास आदि गुणो के व्यजक नही होते उनके अतिरिक्त वक्ता वाच्य तथा प्रबन्ध के औचित्य के अनुरूप रचना समास वर्ण के व्यजक होते है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मम्मट ने रसो के अनुरूप शब्द चयन की व्यवस्था दी है। वैदर्भी आदि रीतिया न भौगोलिक सीमाबद्ध है और न कवि स्वभाव प्रसूत ही। वामन की वैदर्भी आदि रीतिया मम्मट की उपनागरिका आदि वृत्तिया है लेकिन दोनो मे इतना ही अन्तर है जितना गगन और वसुधा मे। मम्मट की वृत्तिया वर्ण एव समास मे अनुस्यूत है। इन वृत्तियो की अलकारता सिद्ध होती है न कि अलकार्यता।

मम्मट ने सम्पूर्ण विवेचनाओ को यदि आलोचना की जाए तो यही प्रतीत होता है कि मम्मट की मार्ग विवेचना स्पष्ट नही वरन् उलसी हुई है। वृत्त्यानुप्रास के प्रसंग मे वृत्ति की विवेचना मे वृत्ति, रीति या सङ्घटना की एकरूपता की स्पष्टता नही है। मम्मट को स्पष्ट रूप से शब्द वृत्ति, समास वृत्ति और रचना वृत्ति की नियतता की स्पष्ट व्याख्या करनी चाहिये थी लेकिन इन्होने प्राचीन सामग्रियो के रहने पर भी एक सारगर्भित तथा रीति विवेचना को प्रस्तुत नही किया है। वर्ण वृत्ति के अन्तर्गत वर्ण सादृश्य के रूप मे वृत्त्यानुप्रास और वर्णवृत्तिरूप जिसके द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है

१ काव्यप्रकाश अष्टम् उल्लास, ६८ ६९, ७०

२ वर्णा समासो रचना तेषा व्यजकतामिता काव्यप्रकाश अष्टम् /७३

दोनो के अन्तर की रूपरेखा प्रस्तुत की जानी चाहिये थी। दोषो के विद्यमान होने पर भी मम्मट के विचार आनन्दवर्धन से प्रभावित है।

विश्वनाथ

रसवादी आचार्यों में साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने रीति विवेचना की मौलिकता को प्रस्तुत^१ करने का प्रयास किया है। इनकी दृष्टि में रीति पदरचना या पद सघटना है। जिसकी अङ्गता रसादि की उपकारिकता है।^२

विश्वनाथ का वाक्य रसात्मक वाक्य है।^३ गुण अलंकार तथा रीतियाँ रसात्मक काव्य के अङ्ग होते हैं।^४ आनन्दवर्धन की भाँति विश्वनाथ की अवयव सस्थान रूप रीतियाँ^५ अलंकार कोटि में आती हैं। क्योंकि वे काव्य के प्रधान तत्त्व रस का उपकार करती हैं। विश्वनाथ की दृष्टि में रीतियों की संख्या तीन या चार है। ये रीतियाँ वैदर्भी गौडी पाचाली और लाटीया हैं।^६ लाटीया वृत्ति को रूद्रट ने सर्वप्रथम स्वीकृति दी थी। विश्वनाथ ने इस वृत्ति को स्वीकार करके रीतियों की संख्या चार कर दी है। वैदर्भी रीति उसे कहते हैं जिसकी रचना माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से परिपूर्ण रहती है तथा उसमें स्वल्प समास अथवा समास शून्यता रहती है।^७ गौणी रीति में ओज गुण के अभिव्यञ्जक वर्णों की परिपूर्णता तथा समास प्राचुर्यपूर्ण उद्भट रचना शीलता रहती है। इसके विपरीत पाचाली रीति में माधुर्य और ओज गुणों के अभिव्यञ्जक वर्णों को छोड़कर शेष वर्णों से अर्थात् प्रसाद गुण के अभिव्यञ्जक वर्णों से परिपूर्णता

१ समासाभावो मध्यम समासो वेति समास तथा

माधुर्यवती पदान्तरयोगेन्द्र रचना माधुर्यस्य व्यञ्जिका ।

२ पद सघटना रीतिरगसस्थातिशेषवत् उपकारवती रसादिनाम् । सा द ६/१

३ वाक्य रसात्मक काव्य । सा द १/३

४ उत्कर्षहेतव प्रोक्ता गुणालंकार रीतयः । सा द ६/३ ।

५ रीतियोऽवयव सस्थान विशेषवत् । सा द १/३ की वृत्ति

६ साहित्यदर्पण ६/१

७ माधुर्यव्यञ्जकै वर्णै रचना ललितात्मिका । अवृत्तिरल्पवृत्तित वैदर्भी रीतिरिष्यते । सा द नवम् परिच्छेद

रहती है जिसमे पाच या छह पदो तक का समास रहता है।^१ लाटीरीति मे वैदर्भी और पाचाली रीतियो का वैशिष्ट्य समाहित रहता है। आचार्य विश्वनाथ की रीतिया केवल पद रचना से ही अभिव्यक्त नही होती। वक्ता और विषय के भेद से रचना मे अन्तर आ जाता है। विश्वनाथ की रीति विवेचना मे आनन्दवर्धन की सघटना विवेचन का फल दिखाई पडता है।

सम्पूर्ण विवेचनाओ पर यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि रीति सघटना या पद रचना को नियन्त्रित करती है। किसी भी साहित्य का अपना वैशिष्ट्य होता है जिसके माध्यम से भागो की अभिव्यक्ति होती है। विश्वनाथ ने स्पष्ट शब्दो मे रीतियो के स्वरूप का निर्धारण किया है। मम्मट की भाति सन्दिग्धता का अवसर नही दिया है। विश्वनाथ की रीतियाँ पूर्व मतो के साथ साथ शारदातनय के भाव प्रकाशन से विशेष प्रभावित है। व्यक्ति की भिन्नता से रीतियो की भिन्नता की सीमा नही है। फिर भी उन्हे चार भागो मे विभक्त करना वर्कसगत प्रतीत होता है।^२

पण्डित राज जगन्नाथ

पण्डित राज जगन्नाथ यद्यपि स्पष्ट रूप से रीति विवेचना नही की किन्तु उनके गुण विवेचन के सागर से रीति विषयक विचार रत्नो को निकाला जा सकता है। समता नामक गुण विवेचन के समय उन्होने बताया कि प्रारम्भ से अन्त तक एक ही प्रकार की रीति का होना समता कहा जाता है। इसकी चन्द्रिका व्याख्या मे रीति को उपनागरिका, पुरुषा और कोमला सज्ञा दी गयी है। इन्ही को वैदर्भी गौणी पाचाली भी कहा गया है।^३

१ समस्तपद्यपदो बन्ध पाचालिका मता। साद ६/४

२ प्रतिवचन प्रतिपुरुष तदवान्तरजातित प्रतिप्रीति।

आनन्त्यात् सक्षिप्त प्रोक्ता कविभिश्चतुर्धैव।। भाव प्रकाशन पृ० ११।

पुसि पुसि विशेषण कवि—कापि सरस्वती। १२

३ उपक्रमादासमाप्ते रीत्याभेद समता। प्रथम मानस, रसगगाधर पृ० २३

रीते उपनागरिका वृत्ति लक्षणाया वैदर्भ्यादे

अभेद एकरूपता समता नाम गुण इत्यर्थ चन्द्रिका।

इसी प्रसंग में पण्डित राज जगन्नाथ ने कहा है वहाँ उपनागरिका वृत्ति से ही आरम्भ और उसी से समाप्त की गयी है।^१

पण्डितराज जगन्नाथ मम्मट की भाति केवल तीन गणों को स्वीकार करते हैं। माधुर्यादि गुणों की प्रतीति कुछ निश्चित वर्ण वाली शब्द रचना से होती है। दीर्घ समास से माधुर्य रस की प्रतिकूलता सिद्ध होता है। वैदर्भी रीति में दीर्घ समास का अभाव होता है। इसलिए वैदर्भी रीति के द्वारा माधुर्य गुण की व्यञ्जना होती है। पण्डित राज जगन्नाथ ने वैदर्भी रीति की विवेचना करते हुए बताया है कि विद्वज्जन उस रचना विशेष को वैदर्भी कहते हैं। जिसमें माधुर्य गुण के भार से परिपूर्ण सुन्दर पदों और वर्णों का विन्यास होता है जिसमें रचनाकार की व्युत्पत्ति प्रकाशित होती है— प्रसाद गुण से जो युक्त होती है, जिसमें रस का पूर्ण परिचायक होता है। इस वैदर्भी रीति को ही कुछ लोग उपनागरिका वृत्ति से अलंकृत करते हैं।^२ पण्डितराज जगन्नाथ^३ ने ओज गुण के प्रसाद गुण की अभिव्यक्ति सभी रचनाओं में होता है।^४

ध्वनिवादियों की रीतिमूलक चिन्तन की अलंकारिता

ध्वनिवादी अथवा रसवादी आचार्यों की कविता—कामिनी का लौकिक शृंगार रस तत्त्व है इसलिए इनकी कविता का प्राणतत्त्व ध्वनि या रस तत्त्व है। इन तत्त्वों के अतिरिक्त गुण अलंकार और रीति तत्त्व की अलंकारिता सिद्ध होती है क्योंकि इनका वर्णन अंग के रूप में किया जाता है। इन अलंकार तत्त्वों की एकरूपता केवल अलंकार को लेकर है नहीं तो इनके स्वरूप और

१ तत्रध्युपनागरिका । रसगगाधर

२ एभिर्विशेषविषयै समान्यैरपि च दूषणै रहिता ।

माधुर्यभारभगुर सुन्दर पद— वर्णविन्यासा ।।

व्युत्पत्तिमुदिगन्ती निर्मातुर्या प्रसादयुक्ता ।

ता विबुधा वैदर्भी वदन्ति वृत्ति गृहीतपरिपाकाम् ।। प्रथम भाग पृ० २८४ रसगगाधर

३ दीर्घवृत्त्यात्म गुम्फ ओजस । पृ २५६ रसगगाधर चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

४ अयं च सर्वसाधारणो गुण । पृ २५६ रसगगाधर चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

स्थिति में विभिन्नता है। इसका नित्य धर्म गुण महत्वपूर्ण तत्त्व है। अलंकार तो अनित्य धर्म है। रीति तत्त्व पद और वाक्य में अलंकारिता उत्पन्न हुआ शब्दार्थ का ही रचना धर्म बनकर गुणों के माध्यम से रसों का उपकारण सिद्ध होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि रीति पद और वाक्य के सघटनात्मक पहलु का निर्धारण करती है। अलंकार शब्द और अर्थ चमत्कार उत्पन्न करता है। और विशिष्ट रचना धर्मिता से व्यजित होने वाले गुण रस के उपकारक सिद्ध होते हैं।

रीति विवेचन पर विहगम दृष्टि

सम्पूर्ण आचार्यों की रीति विवेचना को एक सूत्र में नहीं बाधा जा सकता है। जैसे आत्म तत्त्व की विवेचना में मतैक्य नहीं है उसी प्रकार रीति विवेचना के तात्त्विक निर्णय में मतभेद की स्थिति है रीति की परिभाषा, काव्य में उसकी स्थिति उसकी संख्या तथा सैद्धान्तिक मान्यताओं में आचार्यों के निरूपण में कहीं भी एकरूपता देखी नहीं जाती। वामन की रीति विशिष्ट पद रचना है, वही आनन्दवर्धन की रीति सघटना के नाम से जानी जाती है। विश्वनाथ इस रीति को काव्य के शारीरभूत शब्दार्थ की रचना मानते हैं। वामन के रीति काव्य की आत्मा है जबकि आनन्दवर्धन विश्वनाथ मम्मट आदि इसे गुणों का अभिव्यजक धर्म मानते हैं। ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों ने तो ध्वनि या रस को काव्य ही माना है। दोनों मान्यताएँ समुद्र के दो तट हैं। वामन का प्रधान तत्त्व रीति अलंकार्यवादी आचार्यों का गौण तत्त्व है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है। कि वामन जिस रीति को कविता कामिनी का लवण्य मानते हैं उसे ध्वनिवादी आचार्य शरीर के सुसंगठित अंग मानते हैं। रीतियों की संख्या में पर्याप्त मतभेद है। वामन आदि ने रीतियों की संख्या जहाँ तीन मानी है विश्वनाथ ने उनकी संख्या चार कर दी है। विश्वनाथ की विवेचना में प्राचीनता के साथ-साथ अर्वाचनीयता का भी सौंरभ है। रीतियों के नाम में भी एकरूपता का अभाव है, किसी ने इसे मार्ग कहा, किसी ने

रीति की सज़ा दी किसी ने सघटना या रचना की सज़ा दी। इसके अतिरिक्त इनके नामों में भी मौलिकता स्वाभाविकता और पारम्परिकता की सत्ता देखी जाती है। मम्मट ने तो उपनागरिका आदि नामों से विभूषित करने का प्रयास किया है।

रीति के स्वरूप तथा नामतः अन्तर के साथ-साथ दोनों प्रकार के अर्थात् अलंकार और अलंकार्यवादी आचार्यों के विवेचन की प्रक्रिया में सर्वथा विपरीतता देखी जाती है। वामन की दृष्टि में काव्य का आत्मस्थानीय तत्त्व रीति केवल प्रधान तत्त्व ही नहीं वरन् आकाश की भाँति उनकी काव्य व्यापकता भी प्रतिपादित की गयी है। वामन की रीति का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि वह उपादेय और उपादेयता दोनों कोटियों में व्याप्त रहता है। इनकी रीति प्रक्रिया गुण अलंकार, रसादि तत्वों को समेटते हुए अपनी प्रधानता अभिव्यक्त करती है। रीति की उपजीव्यता, अलंकार गुण को उपजीविता में परिवर्तित कर देती है। वामन की सम्पूर्ण विवेचनाओं में पद गुम्फन प्रक्रिया पर विशेष बल दिया है। इस प्रक्रिया में रस की प्रधानता उसी प्रकार अन्तर्भूत हो जाती है जैसे अलंकार प्रिया अलंकार के बोझ से लदी हुई तारुणी का लावण्य।

जब हम अलंकार्यवादी अर्थात् ध्वनिवादियों आचार्यों की रीति विवेचना पर दृष्टिपात करते हैं तो यही प्रतीत होता है कि इनके यहाँ काव्य व्यापी अंगीतत्त्व रस तत्त्व ही काव्य पुष्पिका का सौरभ है। रीति, गुण, अलंकार इन आचार्यों की दृष्टि में अग बनकर राजा के सेवक की भाँति काव्य तत्त्व का उपकार करते हैं। वामन ने तो काव्यगत रसों का समावेश कान्ति नामक गुण में ही कर डाला है।^१ वामन ने कान्ति नामक^२ गुण को वैदर्भी रीति से निकृष्ट^३ गौणी रीति का आधार माना है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि

१ दीप्त कान्ति । दीप्ता रसा शृङ्गारादयो यस्य स दीप्त रस ।

३/२/१५ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (वामन)

२ ओज कान्तिमती गौणी । वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति ।

३ तासा पूर्वा ग्राह्या । वामन काव्यालंकार १/२/२४

वामन ने अपने काव्य तत्व में रस की कितनी महत्ता स्वीकार की है। वामन के विपरीत अलकार्यवादी आचार्य रसादि को ही काव्य की आत्मा मानकर कविता के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।

वामन का रीति तत्व ही नहीं वरन् गुण—तत्व भी काव्य का नित्य एव व्यापी धर्म सिद्ध होता है। वामन की दृष्टि में रीति के काव्य का अस्तित्व नहीं है किन्तु श्लेषादि गुणों के अभाव में भी रीति की कल्पना नहीं की जा सकती।^१ वामन का रस तत्व गुण और रीति की भाँति काव्य का नित्य एव काव्यव्यापी तत्व नहीं है। इन्होंने उपमालकार को काव्य शोभा में अतिशयता लाने वाले अनित्य धर्मों के रूप में स्वीकार किया है। कहने का आशय यह है कि गुणों के बिना पद—रचना के वैशिष्ट्य की सत्ता असिद्ध होकर रीति का निर्माण कर सकती। वामन का रस तत्व गुण और रीति की भाँति काव्य का नित्य और काव्यव्यापी तत्व नहीं है। इन्होंने उपमा अलकार को काव्य शोभा में अतिशयता लाने वाले अनित्य धर्मों के रूप में स्वीकार किया है। कहने का आशय यह है कि गुणों के बिना पद—रचना के वैशिष्ट्य की सत्ता असिद्ध होकर रीति का निर्माण नहीं कर सकती। इसकी विवेचना की जा चुकी है कि रस किंचित गुणों का धर्म है। काव्य की शोभा का मूलतत्त्व विशिष्ट पद रचना है। अलकार तत्व तो उस शोभा की वृद्धि करने वाले अनित्य धर्म हैं। इस प्रकार वामन की रीति विवेचना स्थूलात्मक प्रक्रिया का प्रतिफलन रूप प्रतीत होता है। वामन का सारा श्रेय गुणात्मक पद रचना को सवारने में है। कुन्तक का मार्ग तत्व कवि स्वभाव से नियन्त्रित होने के कारण अनेकों गुणों के संयोग से काव्य—तत्व का निर्माण करता है। उनके यहाँ वक्र—मणितत्व का ही वैशिष्ट्य है।

ध्वनि रसवादी आचार्य रीति या मार्ग विवेचना की मरीचिका से उन्मुक्त है। उनके यहाँ रीति या मार्ग सघटना पद वाक्य योजना मात्र की परीचिका प्रस्तुत करती है। यह सघटना या रीति काव्य का अनियत तत्व है।

१ विशेषो गुणात्मना । १/२/८ वामन काव्यालकार सूत्रवृत्ति।

अलंकारवादी आचार्यों की दृष्टि में सघटना की ही नहीं वरन् वर्ण पद वाक्य आदि की रस व्यञ्जकता स्वीकार की गई है। इन आचार्यों ने माधुर्यादि गुणों को रस का नित्य धर्म^१ स्वीकार किया है। इसलिए माधुर्यादि गुणों की रसव्यञ्जकता सिद्ध होती है। माधुर्यादि गुणों की सत्ता वर्ण पद आदि की विशेष सघटना पर आधारित है। इसलिए वर्ण आदि की भी रस—व्यञ्जकता सिद्ध होती है। सघटना या रीति की रस—व्यञ्जकता नीरस काव्यों में संभव नहीं है। इसलिए गुण और सघटना को एकात्मकता सिद्ध नहीं होती है। अलंकारवादियों के यहाँ रीति की उपादेयता काव्य के अग्ररूप में है।

सम्पूर्ण आचार्यों की रीति—विवेचना का मूल तत्त्व है कि विशिष्ट रचना—पद्धति को रीति मार्ग या सघटना का नाम दिया है लेकिन काव्य में इसकी सत्ता और इसकी उपादेयता के निर्धारण में मतभेद है। इसलिए रीति को एक परिभाषा के अन्तर्गत सूत्रित करना समुद्र को मुट्ठी में बन्द करना है। इतना होते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण आचार्यों की रीति—विवेचना भौगोलिक मान्यताओं पर आधारित नहीं है वरन् कवि—स्वभाव से प्रादुर्भूत है। यह दूसरी बात है कि एक भौगोलिक परिवेश ने कवि—स्वाभाविकता को सीमाबद्ध कर दिया किन्तु इसकी व्यापकता पर उगली नहीं उठाई जा सकती है। प्रत्येक कवि—स्वभाव की विशिष्टता से होने वाली रचना अनन्त रीतियों के पाश में बंध जाएगी इसलिये उस रीति को कुछ सीमा में बाधना आवश्यक है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने जिस प्रकार शैली अथवा रीति की विवेचना की है उसके मूल में पद—सघटनात्मक विन्यास परिलक्षित होता है।

रीति और वृत्ति

गत्यर्थक 'रीड०' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगने पर रीति शब्द की निष्पत्ति होती है। अमरकोष में रीति का अर्थ 'प्रचार और स्पन्दन' किया गया

१ ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मन ।

उत्कर्षहेतवः स्युरचलस्थितयो गुणा ॥ ८/६६— मम्मट का प्र अष्टम उल्लास

है।^१ लेकिन काव्यशास्त्र में रीति का अर्थ मार्ग या पद्धति है। रीति के वाच्यार्थ और काव्यशास्त्र में रीति का अर्थ मार्ग या पद्धति है। रीति के वाच्यार्थ और काव्य—प्रयुक्त अर्थ की दूरी की उपेक्षा करते हुए आचार्यों द्वारा स्वीकृत अर्थ का आश्रय लेना चाहिए। सर्वप्रथम वामन ने अपने काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति में रीति शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि दण्डी और भामह ने इस रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया था। दोनों शब्दों के प्रयोग का लक्ष्य काव्य—रचना की पद्धति का विश्लेषण करना है। यह बात कल्पित नहीं वरन् सत्य है कि काव्य निर्माण के पश्चात् ही उसके भाषा शास्त्र या व्याकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। मानव स्वभावतः कलात्मक रुचियों का स्थूलात्मक संगठन है। प्रकृति के अवयवों में गीत्यात्मक कविता का प्रभाव देखा जा सकता है। मानव के हृदय से स्वतः कविता की धारा फूटती है। मनुष्य चेतन प्राणी होने के कारण देश काल एवं परिस्थिति से पूर्णतः प्रभावित होता है। इसलिए अनेक भावों की अभिव्यक्ति भौगोलिक और सांस्कृतिक मार्ग का आश्रय लेकर नूतन ससार की सृष्टि करती है। कला या कविता के सृजन के पश्चात् आलोचक उसके नियम का निर्धारण करता है। कविता की सृष्टि आलोचक की बुद्धि को झकझोर कर उसे कुछ नियम—सरचना के लिए बाध्य करती है। यह तो आलोचक की बुद्धि की सूक्ष्मता तथा हृदय की संवेदनशीलता पर निर्भर है। कि यह कविता—कामिनी के लावण्य को किस रूप में देखता है। कविता का प्रधान तत्त्व उसका भाव या रस पक्ष होता है। संगठनात्मक तत्त्व उसका वाह्य पक्ष है। किन्तु यही संगठनात्मक तत्त्व भाव या रस तत्त्व का वाहक होने के कारण कविता का उपकारक तत्त्व सिद्ध होता है।

भामह और दण्डी ने कविता के वाह्य—पक्ष— जिसे हम शब्द—रचना पद—रचना या वाक्य—सरचना कह सकते हैं— को मार्ग की संज्ञा दी है और यही मार्ग रीति के रूप में विकसित होकर सङ्घटना, सरचना आदि नामों से

विभूषित होता है। भरतमुनि द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र सम्पूर्ण काव्य शास्त्र का आकर ग्रन्थ है। वस्तुतः रीतिशास्त्र रीतिसिद्धान्त या मार्ग सिद्धान्त का प्रारम्भिक केन्द्र बिन्दु भरतमुनि या नाट्य शास्त्र है। भरत-मुनि ने नाट्यशास्त्र में चार प्रकार की प्रवृत्तियों— आवन्ती दाक्षिणास्य पाचाली और ओड मागधी का उल्लेख किया है। इन प्रवृत्तियों का प्रयोग प्राप्तीय वेश-भूषा आचार और वार्ता के प्रयोग के लिये किया है।^१

भरत के इस मत का समर्थन राजशेखर और सिंहभूपाल ने भी किया है। प्रवृत्ति जहा व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होती है रीति उसके एकदेशीय अर्थ अर्थात् वचन विन्यास को अभिव्यक्त करती है। प्रवृत्ति का माप-दण्ड भौगोलिकता की परिणिति है। जब कि रीति काव्य की रचना धार्मिकता की प्रवृत्ति का है। भरतमुनि प्रवृत्ति के अतिरिक्त वृत्ति शब्द का भी प्रयोग किया है उनकी दृष्टि में वृत्तियाँ नाट्य की माताएँ हैं।^२ भरतमुनि ने दो प्रकार की वृत्तियाँ स्वीकार की हैं— शाब्दी और आर्थी। शृंगारतिलक^३ में वृत्तियाँ रस की अवस्थाओं की सूचिका कही गई है। यही कारण है कि अभिनवगुप्त की दृष्टि में रसोचित चेष्टाविषयक वृत्ति है।^४ भरतमुनि ने चार प्रकार की वृत्तियाँ सात्वती भारती, कौशिकी और आरभटी मानी हैं। भारती शब्दी वृत्ति है और शेष तीनों वृत्तियों की आर्थी सज्ञा है। भारती का अर्थ वाणी होता है। इसलिए इसे शब्दी वृत्ति कहा गया है। लघुसिद्धान्तकौमुदी में वृत्ति का प्रयोग पाँच अर्थों— कृदन्त, समास, तद्धित एकशेष तथा सनादयन्त धातु रूप में किया है। इसकी यदि मीमांसा की जाए तो ये शाब्दी वृत्तियाँ अर्थ की भी अभिव्यक्ति करती हैं।^५ साहित्य में वृत्ति शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। शब्द शक्तियों

१ प्रवृत्ति देशविशेषगता वेशभूषा समाचार वैचित्र्यप्रसिद्धा उच्यते।— अभिनव भारती ६३/६८

२ चतस्रो वृत्तयो होता सर्वनाट्यस्य मातृका
स्युनायिकादिव्यापारविशेषा नाटकादिषु ।। सा द ६/१२३

३ चतुस्त्र वृत्तो गेय रसावस्थान सूचित ३/५२

४ रसोचित एव चेष्टाविशेषो वृत्ति । लोचन ३/४०

५ परार्थाभिधानम् वृत्ति । सहस्रपा २/१/४/ लघुसिद्धान्त कौमुदी की वृत्ति

की अभिव्यक्ति के लिए वृत्ति शब्द का प्रयोग शक्ति का पर्याय मात्र सिद्ध होता है। भरतमुनि ने वृत्तियों का प्रयोग नाट्यमाताओं के रूप में कैशिकी आदि वृत्तियों के लिए किया है। समास और असमास के रूप में वृत्ति शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार के अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। अनुप्रास जाति के अर्थ में वृत्ति शब्द का प्रयोग आचार्या ने किया है।

भरत मुनि की वृत्ति या शृङ्गार रस की अभिव्यजिका है। कैशिकी शृङ्गार और हास्य की सात्वती वीर रौद्र और अद्भुत की आरम्भटी भयानक और वीभत्स की अभिव्यजिका है। भारती वृत्ति सभी रसों में वर्तमान रहती है।^१ अभिनव भारती में आचार्य अभिनवगुप्त ने वृत्ति का अर्थ व्यापार के रूप में ग्रहण किया है। यह व्यापार पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाला है।^२ नाट्यदर्पणकार ने अभिनवगुप्त के मार्ग का अनुसरण किया है।

समास और असमास के रूप में वृत्ति का प्रयोग करने वाले रुद्रट ने भामह के द्वारा प्रचलित मार्ग में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया। रुद्रट ने समास और असमास भेद से दो प्रकार की वृत्तियों की स्वीकृति दी है। समास वाली वृत्ति के तीन भेद— पाचाली, लाटीया और गौणी है और वैदर्भी रीति समासहीन वृत्ति है। इससे यह सिद्ध होता है कि वृत्तियाँ समासाधीन हैं। यही वृत्ति आगे चलकर वैदर्भी गौणी और पाचाली रीतियों के रूप में प्रसिद्ध हुई। यह बात दूसरी है कि वैदर्भी में समासाभाव या अल्प समास की कल्पना की गई। गौणी में दीर्घ—समास, पाचाली में पाच—छह पदों का समास और लाटी में दो—तीन पदों के समास की कल्पना की गई। अनुप्रास जाति के अर्थ में वृत्ति शब्द के प्रयोग के प्रवर्तक उद्भट ने वृत्त्यनुप्रास के प्रसंग में वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है। उसके तीन भेद हैं। परुषा उपनागरिका और ग्राम्या। परुषावृत्ति के आधार पर होने वाला अनुप्रास परुषानुप्रास, उपनागरिका वृत्ति

१ शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारम्भटी पुन ।

रसे रौद्रे च वीभत्से, वृत्ति सर्वत्र भारती ॥ २/६२ दशरूपकम् द्वितीय प्रकाश

२ व्यापार पुरुषार्थसाधको वृत्ति

। अभिनवभारती १८/११०

पर होने वाला उपनागरिकानुप्रास और ग्राम्या वृत्ति पर आधारित अनुप्रास को ग्राम्यानुप्रास कहते हैं। अनुप्रास जाति के अर्थ में वर्णवृत्ति शब्द का प्रयोग देखा जाता है। इस वृत्ति के प्रयोक्त आचार्य उद्भट ने अनुप्रास के तीन भेदों में वृत्त्यनुप्रास का उल्लेख किया है। उन्होंने पुरुषा उपनागरिका और ग्राम्या वृत्ति के कारण वृत्त्यनुप्रास को स्वीकार किया है।

पुरुषा वृत्ति^१ में शकरादि कठोर सयुक्त वर्णों की सत्ता रहती है। उपनागरिका^२ वृत्ति में तो किसी वर्ण के पंचम वर्ण का संयोग उसी वर्ण के अन्य वर्णों के साथ होता है। ग्राम्या वृत्ति में कोमल वर्णों की संयोजना रहती है। उपनागरिका वृत्ति का नाम शिक्षिता नगरवधू के सौन्दर्य विन्यास का प्रतिबिम्ब है। ग्राम्यावृत्ति ग्राम्य युवतियों के सौन्दर्य की अनुकृति है। इसी वृत्ति के आधार पर वृत्त्यनुप्रास रसगत चारुत्व का प्रतिपादन करता है। उद्भट की वृत्ति, वर्णयोजना की शैल्या में शयन करती हुई रस की वर्षा करती है।

मम्मट ने काव्यप्रकाश में अनुप्रास अलंकार के प्रसंग में नियत-वर्ण-गत रसविषयक व्यापार रूपा वृत्ति की विवेचना प्रस्तुत की है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मम्मट की वृत्ति वह शब्द-संरचना है जो रसों को अभिव्यक्त करती है।

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोजराज ने तीन वृत्तियाँ-सौकुमार्य प्रौढि और मध्यमत्व को स्वीकार किया है। उद्भट की वृत्तियों का नामान्तर रूपा कोमला पुरुषा और ललिता को गम्भीरादि नामक बारह वृत्तियों के अन्तर्गत स्वीकार किया है। भोजराज ने कणाटी आदि बारह अनुप्रास की जातियों की गणना की है। भोजराज ने नूतनता के नाम पर भरत की वृत्तियों में मध्य कैशिकी और मध्यम आरम्भटी जोड़कर उनकी संख्या रद्द कर दी है। इसी प्रकार मागधी और अवन्तिका रीतियों के योग से वैदर्भी आदि रीतियों की भी संख्या छह कर दी है। इस प्रकार भोजराज ने सभी क्षेत्रों में जो नवीनता लाने का प्रयास किया है। उसमें केवल नूतनता का प्रयास मात्र है।

१ काव्यालङ्कार सार संग्रह, १/४

२ काव्यालङ्कार सार संग्रह १/५

रीति और वृत्ति में अन्तर

वृत्ति का अर्थ समास आदि व्यापक अर्थों में प्रयोग किया गया है। वाक्य पद और समासों का सघटनात्मक रूप है। व्याकरण की समास वृत्ति रूद्रट की प्रतिभा से रीति-तत्त्व को प्राप्त कराई गई है या कहा जाए कि समास के कारण जिन्हें वैदर्भी आदि की सज्ञा प्रदान की गई थी उसे रूद्रट ने रीति के साथ तादात्म्य लाने का प्रयास किया है। अभी यह देखा गया है कि वृत्ति साहित्य में कई अर्थों में प्रयुक्त है। मूलतः समास-रचना की आधारशिला रीति वृत्ति से भिन्न होते हुए भी कुछ सीमा तक एक रूप है। वर्णवृत्ति वृत्त्यनुप्रास के रूप में प्रयुक्त होकर रस की अभिव्यक्ति करती है। इसी वर्णवृत्ति ने उपनागरिका ग्राम्य आदि नाम से सिद्ध होकर पांचाली वैदर्भी आदि रीतियों का स्थान ले लिया है। यही कारण है कि काव्यप्रकाश में मम्मट ने उपनागरिका आदि वृत्तियों को वैदर्भी आदि रीतियों को एकरूपता प्रदान की है। परन्तु मम्मट की यह विवेचना वेदवाक्य नहीं है क्योंकि वामन का रीति तत्त्व समास रूपी शैल्या पर ही आधारित रहता है। वर्ण-वृत्ति पर आश्रित उपनागरिका आदि वृत्तियाँ समासाधीन वैदर्भी आदि रीतियों की एकरूपता उसी प्रकार सम्भव हो सकती है जैसे पखुड़ियों और पुष्प की एकरूपता सिद्ध की जा सकती है। वामन की रीति और आनन्दवर्धन आदि की वृत्तियाँ दोनों अपने विशिष्ट अर्थों का सम्पादन करती हैं। आनन्दवर्धन ने सङ्घटना या वृत्ति की जो विवेचना प्रस्तुत की है उससे स्पष्ट पता चलता है कि सघटना या वृत्ति रसों की किसी न किसी प्रकार माधुर्यादि गुणों के द्वारा अभिव्यजिका सिद्ध होती है। रीति की यह स्थिति नहीं है क्योंकि रीति के एक गुण में ही रस अन्तर्भूत हो जाता है।

वर्णवृत्ति या वर्ण योजना रूपवृत्ति रीति के अन्तर्गत इसलिए अन्तर्भूत हो सकती है क्योंकि रीति समास पर आश्रित रहती है। वृत्ति की अनुप्रासता रीति से पार्थक्य की प्रतीति कराती है।

रीति और वृत्ति के अन्तर को दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि वर्ण-वृत्ति के अन्तर्गत समास-वृत्ति रूप रीति नहीं आ सकती। परन्तु समास के अन्तर्गत वर्णवृत्ति का अन्तर्भाव हो सकता है। वर्ण-वृत्ति की उपस्थिति सर्वथा सम्भव है। अनुप्रासगत वर्णवृत्ति समास वृत्ति से कुछ पृथक् ही होती है। दोनों की एकरूपता सहज नहीं है वरन् कृत्रिम है। जितनी प्रकार की वृत्तियों की विवेचना की गई उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वृत्ति की व्यापकता किसी न किसी रूप में स्वीकार की गई है। रीति और वृत्ति केवल सघटनात्मक रूप से कुछ सीमा तक एक रूप में प्रतीत होता है। किन्तु प्रयोजन भेद से उनकी अर्थान्तरता सिद्ध होती है। वर्ण रूपा वृत्ति भी रीति का स्वगत भेद है। अतः रीति से इसके पार्थक्य की कल्पना नहीं की जा सकती है दोनों में यदि कोई अन्तर है तो अवयव और अवयवी का ही है। वृत्त्यानुप्रास की नियामिका वर्णरूपा वृत्ति अनुप्रास अलकार तत्त्व की व्यजिका होने से रीति से सर्वथा विपरीत होती है। अलकार वामन की दृष्टि में शोभा की वृद्धि करने वाला धर्म है इसलिए इसे रीति के अन्तर्गत किसी भी रूप में नहीं रखा जा सकता है।

रीति और मार्ग

‘मार्ग’ वैदर्भी आदि के नाम से जाना जाता है। कुन्तक ने मार्ग को कवि-स्वभाव से सम्बन्धित माना है। इसलिए उन्होंने केवल तीन मार्गों की विवेचना की है। कुन्तक के मार्ग में कवि स्वभाव की प्रधानता होने के कारण मार्ग की विशेष रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

कुन्तक के मार्ग विशेष गुणों से सम्बन्धित है। उन्होंने कवि-स्वभाव के कारण सुकुमार विचित्र और मध्यम मार्ग की कल्पना की है। सुकुमार मार्ग में किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नहीं की जा सकती है। इस मार्ग के द्वारा स्वाभाविक प्रतिभा के काव्यों की रचना की जाती है। कुन्तक के मार्ग में

न रीतियों की उत्तमता मध्यमता और अधमता है न भौगोलिक सीमा का अनावश्यक प्रभाव ही। कुन्तक ने सुकुमार मार्ग के लिए जिन गुणों की कल्पना की है उससे यही प्रतीत होता है कि सभी मार्गों के लिए विशेष प्रकार के गुणों की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् सुकुमारादि मार्ग में माधुर्य प्रसाद लावण्य और अभिजात्य गुणों की सत्ता को स्वीकार किया है। इनके मार्गों में पद बन्ध की उतनी महत्ता नहीं है जितनी विषय की महत्ता है। इनके सुकुमार और विचित्र दोनों मार्गों के माधुर्य नामक गुणों में असमस्त पदों की सत्ता रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि इनके मार्ग पद-रचना धार्मिकता से नियन्त्रित नहीं है वरन् विशिष्ट प्रकार के अर्थों के अभिव्यजक होने के कारण सुकुमारादि मार्गों के अस्तित्व है। रीति में यह बात देखने को नहीं मिलती क्योंकि रीति को समास वृत्ति और वर्ण वृत्ति की रचना धर्मिता की उपेक्षा नहीं कर सकती। रीति तत्त्व कवि का प्रधान तत्त्व माना जाता है।

संस्कृत के आचार्यों ने रचना-पद्धति के लिए मार्ग, रीति सघटना, वृत्ति आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उसके मूल में वर्ण और पदों के विन्यास की प्रक्रिया ही परिलक्षित होती है।

रीति और शैली

जिस प्रकार संस्कृत के आचार्यों ने रचना पद्धति के लिए रीति शब्द का प्रयोग किया है उसी प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र के पण्डितों ने रचना पद्धति के लिए स्टाइल शब्द का प्रयोग किया है। भारतीय चिन्तन-प्रक्रिया में 'रीति' शब्द रचना के गत्यात्मक पहलू की विवेचना करता है। रीति की विशेषता काव्य-रचना पद्धति अथवा कवि रचना-पद्धति दोनों कोटियों में देखी जा सकती है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्टाइल शब्द 'लोहे की नोकदार कलम' के लिए प्रयुक्त हुआ है। क्लासिकल लैटिन में स्टाइल व शब्द का अर्थ लिखने का प्रकार और आत्माभिव्यक्ति के प्रकार में रूढ़ हो गया है। इसलिए आधुनिक साहित्य में अभिव्यक्ति की मनोहारिणी पद्धति अथवा शब्दों के

कलात्मक विन्यास के रूप में शब्द का प्रयोग होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली एक ओर अभिव्यक्ति की प्रकारता को अभिव्यक्त करती है दूसरी ओर वैयक्तिक अनुभूतियाँ काव्य के शब्दों में नवीनतम अर्थों को अभिव्यक्त करती हैं। अग्रेज आलोचक मिलिन्टन परे^१ के अनुसार शैली अभिव्यक्ति का वह विशेष माध्यम है जिसके द्वारा लेखक का परिचय प्राप्त होता है। लोकस के शब्दों के परिधान में अन्तर्निहित व्यक्तित्व की सज़ा ही शैली है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली कवि अथवा लेखक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सम्भवतः आचार्य दण्डी ने व्यक्ति-भेद से काव्य-पद्धति की अनन्तता को स्वीकार किया है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण एक ही रामायण की कथा उत्तररामचरितम् में बालरामायण, अनर्घ राघव आदि में भिन्न रूपों में प्रस्तुत की गई है। सभी रचनाओं में भिन्नता का मूलधार वैयक्तिक भिन्नता है। कुन्तक ने कवियों के द्वारा स्वीकृत रचना-पद्धति-मार्ग को वैयक्तिक आवरण से आच्छादित करके काव्य-रचना को स्वाभाविक कारण का कार्य माना है। दण्डी और कुन्तक दोनों में यद्यपि वैयक्तिकता की बात तो स्वीकार की है किन्तु इसकी आधारशिला पर विभिन्न प्रकार के रचना-धार्मिता रूप चित्र का निर्माण नहीं किया है। यह इसलिए किया गया है क्योंकि कवि भेद की अनन्तता देखी जाती है। इसलिए दण्डी ने दो मार्ग—वैदर्भी और गौणी और कुन्तक तीन मार्ग—सुकुमार, विचित्र और माध्यम की सत्ता की स्थापना कर कवि स्वभाव को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनके प्रयास में अदोषता और गुणत्व का प्रतिफलन है। विश्व में सम्पूर्ण व्यक्तियों की भिन्नता होते हुए भी इनको सीमित भागों में विभाजित किया जाता है। उसी प्रकार आचार्यों ने भी स्वभाव अथवा मार्ग के आधार पर कवि-स्वभाव अनन्तता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह कथन शैली व्यक्ति है, सर्वथा संस्कृत साहित्य के कवियों में भी चरितार्थ होता है। पश्चिम और पूर्व की विचारधाराएँ एकात्मक भिन्नता का

सृजन करती है। पाश्चात्य शैली में व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार की गई है। जब कि संस्कृत साहित्य में वस्तु तत्त्व की स्थापना में वैयक्तिक अभिव्यक्ति अन्तर्निहित हो गई है।

कला सौन्दर्य की अनुपम अभिव्यजना है। इस सौन्दर्य की अभिव्यजना के लिए अनेक पद्धतियों का विकास हुआ। भारतीय कलाविदों ने कला की चौसठ सख्या स्वीकार की है। इन चौसठ कलाओं में सम्भवतः साहित्य को स्वीकार करने में आनाकानी की गई है। भट्टहरि ने तो साहित्य की कलात्मकता को डके की चोट पर स्वीकार किया है। विश्व के सम्पूर्ण साहित्य में कला के द्वारा दो पहलुओं की अभिव्यजना होती है। ये दोनों तत्त्व कला के बाह्य और अन्तरिक तत्त्व होते हैं। वस्तु—निरूपण कला का आन्तरिक पक्ष तथा रेखा एवं शब्दादि विन्यास कला के बाह्य पक्ष होते हैं। भारतीय आचार्यों ने कला के दोनों पक्षों को समान रूप से सवारने का प्रयास किया है। शब्दों में रेखाचित्रों का और अर्थ में शब्द चित्रों का मज्जुल सामंजस्य उपस्थित करने का सफल प्रयास किया है। संस्कृत के कवियों ने जिस सत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए शब्द चित्रों का निरूपण किया है वह तत्त्व रसाभिव्यक्ति है। विश्व का प्रत्येक प्राणी आनन्द प्राप्ति के लिए प्रयास करता है, यह बात दूसरी है कि उसमें आनन्द—प्राप्ति के साधनों में भिन्नता पाई जाती है। भारतीय कवियों की साहित्यिक कृतियों में भारतीयों की चिन्तन धारा का परिपाक अन्तर्निहित है। भारतीय दार्शनिकों की परमतत्त्व ब्रह्म का रसत्त्व रूप अथवा आनन्दात्मक रूप कविता की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। और प्रत्येक कवि की आनन्दात्मक आत्मा अथवा आनन्दानुभूति अथवा वैयक्तिक अभिरुचि की परिणिति अथवा स्वाभाविकता का मूर्तिमान रूप शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। ललित कलाओं चित्रों तथा संगीत आदि के लिए नैपुण्य की आवश्यकता होती है। व्यक्तिवादी नैपुण्य किसी भी अर्थ को सौन्दर्यात्मक परिवेश में खड़ा करके दर्शक या पाठक को आनन्द की अनुभूति कराता है।

इस आनन्दानुभूति का आधार काव्य क्षेत्र में शब्द योजना होता है। यद्यपि शब्द-संयोजना कला का बाह्य पक्ष होता है फिर भी इस बाह्य पक्ष में रसवादी या सहृदय कवि की आत्मा जब चित्रित होती है तो कला कला न होकर अपने सौन्दर्यात्मक पहलू को अभिव्यक्ति देती है। कोई भी कला हो उसमें भावों की गम्भीरता विचारों की एकात्मक गरिमा कवि की प्रतिबिम्बित आत्मा और शैली की उत्कृष्टता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कला का हम दो रूपों से अध्ययन कर सकते हैं एक व्यक्ति रूप तथा समष्टि रूप। कलाकार की व्यक्तिमूलक अभिव्यक्ति जब समष्टि रूपात्मक भावों को मूर्तमान रूप में प्रस्तुत करती है तो कलाकार की कला लोक सीमा का उल्लंघन कर साधारण से लगने वाली वस्तु को अलौकिक बना देती है।

भारतीय कवियों की रचनाओं में उनकी वैयक्तिक भावनाओं पर परम्पराओं का यतिकचित आरोप देखा जा सकता है। लेकिन इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता कि उनकी भावमयी कला में केवल परम्परावादी अथवा अनुकरणात्मक तत्वों का मिश्रणाधिक्य है। भारतीय मनीषियों ने यह स्वीकार किया है कि कवि की प्रतिभा किसी कामिनी की सीमा में बंधकर अपने स्वतंत्र दृष्टिकोणों की हत्या नहीं करती। इसलिए उनकी रचनाओं में जहाँ विविधता पाई जाती है वहीं पर शाश्वत अर्थ के प्रतिपादन की एकरूपता का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है।

पाश्चात्य काव्यमनीषियों ने स्टाइल अथवा शैली को जिस रूप में देखा है उसमें भी उनकी भौगोलिक मान्यता अथवा सांस्कृतिक मान्यता अथवा चिन्तन की नवीनता का प्रतिरूप देखा जा सकता है। प्लेटो ने काव्य भाषा की सहजता विचित्रता और मिश्रिता की जिस रूप से व्याख्या की है उसका प्रतिबिम्ब कुन्तक के तीन मार्गों सुकुमार विचित्र और मध्यम में देखा जा सकता है। दोनों चिन्तकों में भाव तत्व के निर्माण के लिए वैयक्तिक तत्व की प्रधानता का नियमन देखा जाता है।

प्लेटो के पश्चात् अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में रीति के मूलतः दो भेदों की स्वीकृति दी है। उन्होंने साहित्यिक और बादात्मक— जिन्हें हम पद शैली और गद्य—शैली कह सकते हैं रूपों की कल्पना की है। अरस्तू के अनुसार शैली के लिए दो गुण स्पष्टता और औचित्य दो गुणों को स्वीकार किया गया है। इन्हीं शैलियों की निर्दोषता के लिए चार प्रकार के दोषों से मुक्त रहने की शिक्षा प्रदान की है। ये दोष हैं—समासों का अधिक प्रयोग और अप्रयुक्त शब्दों का व्यवहार विशेषण का अधिक आडम्बर दुरुद्ध रूपों का प्रयोग।

अरस्तू की स्पष्टता में सजाओ और क्रियाओं के प्रयोग में सामान्यता वर्णित है और गरिमा नामक गुण में सामान्य प्रयोगों की भिन्नता पर बल दिया गया है। अरस्तू की यह शैली—विवेचना कुन्तक के औदात्य आदि गुणों की स्वीकृति को अभिव्यजित करती है। अरस्तू ने कथ्य के अभिव्यक्ति के प्रकार पर विशेष बल दिया है। यह सम्पूर्ण विवेचन भारतीय रीति विवेचनाओं में प्राप्त होते हैं। भारतीय रीति—विवेचना में भिन्न—भिन्न रसों की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न—भिन्न प्रकार की रचना—पद्धति स्वीकार की गई है। अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित शैली के दोष किंचित या अधिक रूप में भारतीय काव्यशक्तियों ने अपने काव्यशास्त्रों में स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। अगर यह देखा जाए तो अरस्तू के शैलीगत सारे दोष गौणी मार्ग की असयत्ता में देखे जा सकते हैं।

डिमेदियस ने अपने 'आन दी स्टाइल (on the style) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में रीति के चार भेदों को प्रसन्न मसृण (Polished) उदात्त (Stalely) और ओजस्वी (Powerful) भेद माने हैं। डिमेदियस ने जो शै—भेद प्रस्तुत किया है उनमें इन्होंने फीलोडेमस के द्वारा प्रतिपादित तीन भेदों की ज्यों का त्यों ले लिया है। और उसमें एक नये भेद को जोड़ दिया है। डिमेदियस के अनुसार प्रसन्न शैली के मूल तत्त्व असमानता है क्योंकि इसमें विशिष्ट तथा विचित्र शब्दावली समास, अलंकार तथा काव्यरुद्ध भाषा का बाहुल्य देखा जाता है।

मसृण शैली में शोभा और कान्ति का बाहुल्य होता है उदात्त शैली में स्पष्टता और सरलता देखी जाती है अतएव इसमें नित्य प्रति भाषा का प्रयोग होता है। डिमेट्रियस ने इन चारों के विपरीत चार दुष्ट रीतियों शिथिल नीरस और कृत्रिम है। डिमेट्रियस की इस शैली को भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित वैदर्भी आदि मार्गों में अन्तर्भूत किया जा सकता है। डिमेट्रियस की मसृण शैली पाचाली की अनुकृति है। इनकी प्रसन्न शैली कुछ सीमा तक वैदर्भी का पर्याय नहीं तो वैदर्भी के कुछ अंशों को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। दूसरे शब्दों में यदि और थोड़ी सूक्ष्म विवेचना की जाए तो यह कहा जा सकता है। डिमेट्रियस की ये शैलियाँ मम्मट आदि आचार्यों के द्वारा स्वीकृत उपनागरिका और कोमला के अधिक सन्निकट हैं डिमेट्रियस की शैली विवेचना में आनन्दवर्धन की भार्ति पदावली एवं वर्णों की योजना तथा समास-वृत्ति का भी विचार देखा जाता है। सिसरोदे एटिक और एशियाटिक नामक दो शैलियों की विवेचना से काव्य की सहजता और कृत्रिमता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनकी एटिक शैली में सहजता सरलता स्वच्छता यथार्थता तथा अनलकृतता का समावेश वर्णित है। एशियाटिक शैली में अतिशय अलकृत तथा चमत्कारपूर्ण वर्णन का बाहुल्य है। सिसरो की इस शैली विवेचना को वैदर्भी और गौणी रीति के फ्रेम में कसा जा सकता है। सिसरो का शैली विवेचन व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित है जिस प्रकार दण्डी ने व्यक्ति भेद से शैली की अनन्त भेदता स्वीकार की है। उसी प्रकार सिसरो ने भी व्यक्तित्व भेद से शैली-भेद को स्वीकार किया है। सिसरो के शैली-विवेचन में जिस औचित्य विषय और उद्देश्य की नियामिकता की चर्चा की गई है उसका सुसंगठित रूप आनन्दवर्धन की सघटना के लिए स्वीकृत वक्ता वाच्य, विषय बोधक रसादि के औचित्य वर्णन में देखा जा सकता है। रोम के प्रसिद्ध रीतिशास्त्र के प्रणेता होरस ने अपने ग्रन्थ आर्स पोमेटिका में शब्द-चयन शब्द योजना का विश्लेषण करते हुए भारतीय वैदर्भी रीति के स्वर में स्वर मिलाते हुए उन्होंने समासविहीन और कोमल शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है। होरस

की शब्द योजना— जो शैली का प्रमुख तत्व है। कुन्तक के बन्ध विवेचन में अन्तर्भूत किया जा सकता है। उनकी स्पष्टता रूप शैली का गुण भारतीय काव्यशास्त्र के किसी भी पृष्ठ में देखा जा सकता है। अमनोसियस की रीति—विवेचन प्लेटो और सिसरो की रीति—विवेचना की अनुकृति मात्र प्रतीत होती है। इन्होंने व्यक्तित्व और शैली तत्व दो रूपों से शैली—विवेचना प्रस्तुत की है। नकी शैली में व्यक्तित्व की— अभिव्यक्तिकता पद—रचना की नियामकता को तिरस्कृत करती हुई प्रतीत होती है। व्यक्तित्व की अपेक्षा शैली के नियामक तत्व विषय और भाव का औचित्यपूर्ण गुफन काव्य को उत्कृष्टतम बना देता है। इनके शैली—तत्व में शुद्धता स्पष्टतया और समास—गुणता का प्राधान्य देखा जाता है। इस प्रधानता में आनन्दवर्धन की सघटना विवेचना की झलक दिखाई पड़ती है। डायनोसियस में व्यक्ति की नियामकता आनन्दवर्धन की अपेक्षा अधिक है। स्पष्टतया समास आदि गुणों का विवेचन भारतीय आचार्यों के प्रसाद आदि गुणों की विवेचना से साम्य रखता है। डायनोसियस के कोमल, उदात्त और मित्र गुण कुन्तक के सुकुमार आदि मार्ग में अन्तर्भूत किए जा सकते हैं। इनकी पद—योजनात्मक स्वरूप वामन की विशिष्ट पद रचना रीति और आनन्दवर्धन के पद—वाक्य सन्निवेश रूप रचना विधान के रूप में वर्णित हुआ है।

शोपेन हावर ने सहज और आडम्बरपूर्ण जिन दो प्रकार की शैली की विवेचना की है वे दोनों शैलियाँ दण्डी की वैदर्थ और गौणी मार्गों में अन्तर्भूत की जा सकती हैं। लाजायिन्स ने शैली की विवेचना करते हुए बताया कि धारणा की भव्यता भावना की तीव्रता अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग भाषागत आभिजात्य तथा पद—रचना का औदार्य ही शैलीगत विशेषताएँ हैं। भारतीय काव्यशास्त्रियों के सिद्धान्त में इनका सिद्धान्त अन्तर्भूत है। कुन्तक के आभिजात्य गुण पद—रचना की गरिमा वामन आदि आचार्यों के द्वारा औदार्य, कान्ति तथा श्लेषादि गुणों में लाजाइन्स के शैलीगत सिद्धान्त अन्तर्भूत हो जाते हैं।

क्विण्टीनियल के अनुसार शैली एटिक एशियाटिक और रोडियन नामक तीन शैलिया होती है इन शैलियों में शब्द-चयन अलकरण तथा पद-रचना का वैशिष्ट्य देखा जाता है। क्विण्टीमल की दो शैलिया सिसरो की अनुकृति मात्र है जिन्हें वैदर्भी और क्विण्टीमल गोणी रीतियों में देखा जा सकता है। रोडियन शैली भौगोलिक सीमा को अभिव्यक्त करती है। अर्थात् रोडस डील के कवियों की पद्धति को रोडियन शैली कहा गया है। क्विण्टीनियल के द्वारा स्वीकृत शब्द चयन अतण्करण और पद-योजना रूप तीन तत्वों में से प्रथम तत्व को वैदर्भी के माधुर्य गुण में अपना कुन्तक के द्वारा स्वीकृत सुकुमार मार्ग के माधुर्यादि गुणों में अन्तर्भूत किया जा सकता है। यह शैली हमारे भारत देश के विदर्भ देश के लोगो की शैली की भाँति ही एटिक शैली भौगोलिक सीमागत वैशिष्ट्य को अभिव्यक्त करती है उसी प्रकार गौणी गौण देशी लोगो के शैली की भाँति एशियाटिक शैली है। इस शैली का अलकरण रूप तत्व कुन्तक के विचित्र मार्ग में अनुस्यूत हो जाता है। तीसरा तत्व पद योजना कुन्तक के मध्य मार्ग के मिश्रित गुणों का प्रतिबिम्ब रूप है। क्विण्टीनियल की तीसरी शैली भारत की पाचाली रीतिही है। विनचेस्टर का रीति-विवेचन कुन्तक के मार्ग विवेचन से मिलता जुलता है जैसे कुन्तक ने दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ सुकुमार और विचित्र होती हैं उसी प्रकार विनचेस्टर ने कवियों की मूलतः दो प्रवृत्तियों सहज और अलकारप्रिय का उल्लेख किया है। विनचेस्टर का यह विवेचन कुन्तक के मार्ग का स्मरण दिलाता है।

दाते ने काव्यशैली की विवेचना करते हुए उन्होंने शैली अथवा रचना के चार भेद किए हैं—

- १ रुचि विहीन
- २ केवल सुरुचिपूर्ण
- ३ सुरचिपूर्ण तथा सुन्दर
- ४ सुरुचिपूर्ण, सुन्दर तथा उदात्त।

दाते के इस वर्गीकरण में सिसरो डायनोसियस आदि का अनुकरण मात्र प्रतीत होता है। दाते का केवल सुरुचिपूर्ण शैली परम्परागत प्रसन्न शैली की उच्छिष्टता की अभिव्यक्ति मात्र है। दाते का शैली—विवेचन भारतीय रीतिशास्त्र की वैदर्भी की समस्त गुणों में देखा जा सकता है।

बेन जानसन यूरोप की स्वर्णयुगी विचार धारा की उपज है। इन्होंने शैली के जिन गुणों की विवेचना की है उन्होंने मानव—शरीर का रूपक प्रतिबिम्बित किया है। वेन जानसन ने जिन चार शैलियों सक्षिप्त शैली समस्त शैली व्यस्त शैली और समन्वित शैली की विवेचना की है उनमें प्राचीनता का अभाव होने के कारण नवीनता की अभिव्यक्ति है। बेन जानसन ने उदात्त क्षुद्र और मध्यम भेद से जो शैली की विवेचना प्रस्तुत की है उसमें प्राचीनता का सामंजस्य है। वस्तुतः बेन जानसन की शैली विवेचना में केवल नवीनताभास ही है उनकी सक्षिप्त और समस्त शैली केवल विभेद मात्र को प्रतीत करती है। क्षुद्र शैली तो काव्यदोषों की निर्णायिका है। मध्यम और उदात्त शैली में प्राचीनता का नवीन चित्रमात्र है। इन सम्पूर्ण शैलियों की रूपरेखा भारतीय आचार्यों के गुण—विवेचन और सामासिक सघटनाओं में देखी जा सकती है।

नव्यशास्त्रवादी में पोप ने दो प्रकार की शैली—अशुद्ध और शुद्ध की विवेचना की है। अशुद्ध शैली में वाञ्छाल रहता है शुद्ध शैली में सूर्य प्रकाश की सी पदार्थों को स्पष्ट करने की क्षमता रहती है। पोप की दृष्टि में केवल कर्णप्रिय वर्ण—मुष्फन काव्यजन्य आनन्द को प्राप्त कराने में सक्षम नहीं हो सकते। शब्दों में आर्धाभिव्यक्ति की रहने वाली क्षमता ही काव्य के वास्तविक आनन्द को प्राप्त करा सकती है। पोप के केवल मनोहर वर्ण—गुफन की निन्दा भामह की उक्ति में देखी जा सकती है।^१ अट्ठारह शती के अन्त तक काण्ट शैली आदि दार्शनिकों ने पदार्थों को नए ढंग से देखने की दिशा प्रदान की है।

१—अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजुकोमलम्।

भिन्नगेयमिवेद तु केवल श्रुतिपेशलम् ॥ —भामह — १/३५ काव्यालङ्कार

इनकी दृष्टि में ज्ञान सापेक्ष वस्तु की सत्ता है। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कविता का वाह्य पक्ष उसके अन्तर्पक्ष के सौन्दर्य की साधना में जलकर भस्म हो गए। वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में कविता की भाषा व्यक्ति की मातृभाषा होनी चाहिए। वर्ड्सवर्थ का वह सिद्धान्त सार्थक नहीं है। क्योंकि व्यक्ति की अभिरुचि और अध्ययन की क्षमता तथा उसका परिवेश ही भाषा का निर्माण करता है इसलिए वर्ड्सवर्थ के सिद्धान्त में केवल व्यर्थ की कल्पना है।

वर्ड्सवर्थ की गद्य और पद्य विवेचना भारतीय साहित्यिक विवेचना से भिन्न नहीं है। संस्कृत साहित्य में गद्य और पद्य दोनों की साहित्यिकता स्वीकार की गई है।

बीसवीं शताब्दी में यूरोपीय आलोचनाशास्त्र कुछ नवीन कल्पनाओं के साथ प्रादुर्भूत हुआ। पेटर ने शैली के जिन मूल दो तत्वों—मस्तिष्क और आत्मा की चर्चा की है उसे भारतीय सिद्धान्त के बुद्धि—पक्ष और हृदय—पक्ष के साथ जोड़ा जा सकता है। बाल्टर रेत ने शैली की विवेचना के प्रसंग में बताया कि अर्थ के लिए शब्द—चयन और शब्द के लिए अर्थ चयन करना ही साहित्य का कार्य है। इनका यह सिद्धान्त कुन्तक के साहित्य के समीप है। इन्होंने शैली के अन्तरिक तत्व निश्छिन्ता, सयमन आत्म—निषेध आदि तत्व की मीमांसा के प्रसंग में इसके वाह्य तत्व—नाद—गुण चित्रगुण तथा अर्थ गुण की विवेचना की है और इन तत्वों में निश्छलता तथा सयमन वैयक्तिक तथा किंचित सामान्य को अभिव्यक्त करता है। शब्द—गुण आदि तो शब्दों की सम्पदा है जिसका वर्णन वामन से लेकर मम्मट के गुण—विवेचन में देखा जा सकता है।

क्रोचे के अभिव्यजनावेद ने कला की व्याख्या करते हुए बताया कि कला और काव्य अभिव्यजना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अभिव्यजनावेद का प्राण तत्व उक्ति सौन्दर्य है। यह अभिव्यजनावेद अखण्डात्मक होने के कारण गुण और अलंकार के कारण खण्डित नहीं किया जा सकता। रीतिवाद तथा अभिव्यजनावेद की विषमता सखण्ड और अखण्ड व्याख्यात्मक

पहलू को लेकर है। कौचे का अभिव्यजनावाद हमारे भारतीय सिद्धान्त के अखण्ड स्फोटात्मक विवेचन का प्रतीय है। काव्य एक ध्वनिरूप है। उसी ध्वनि की अभिव्यक्ति के लिए वर्ण पद और समास को सदा काव्यात्मक वेष में अखण्डता का प्रतिपादन करती है। कौचे का अभिव्यजनावाद कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है तथा इसमें काव्यात्मक अखण्डता है।

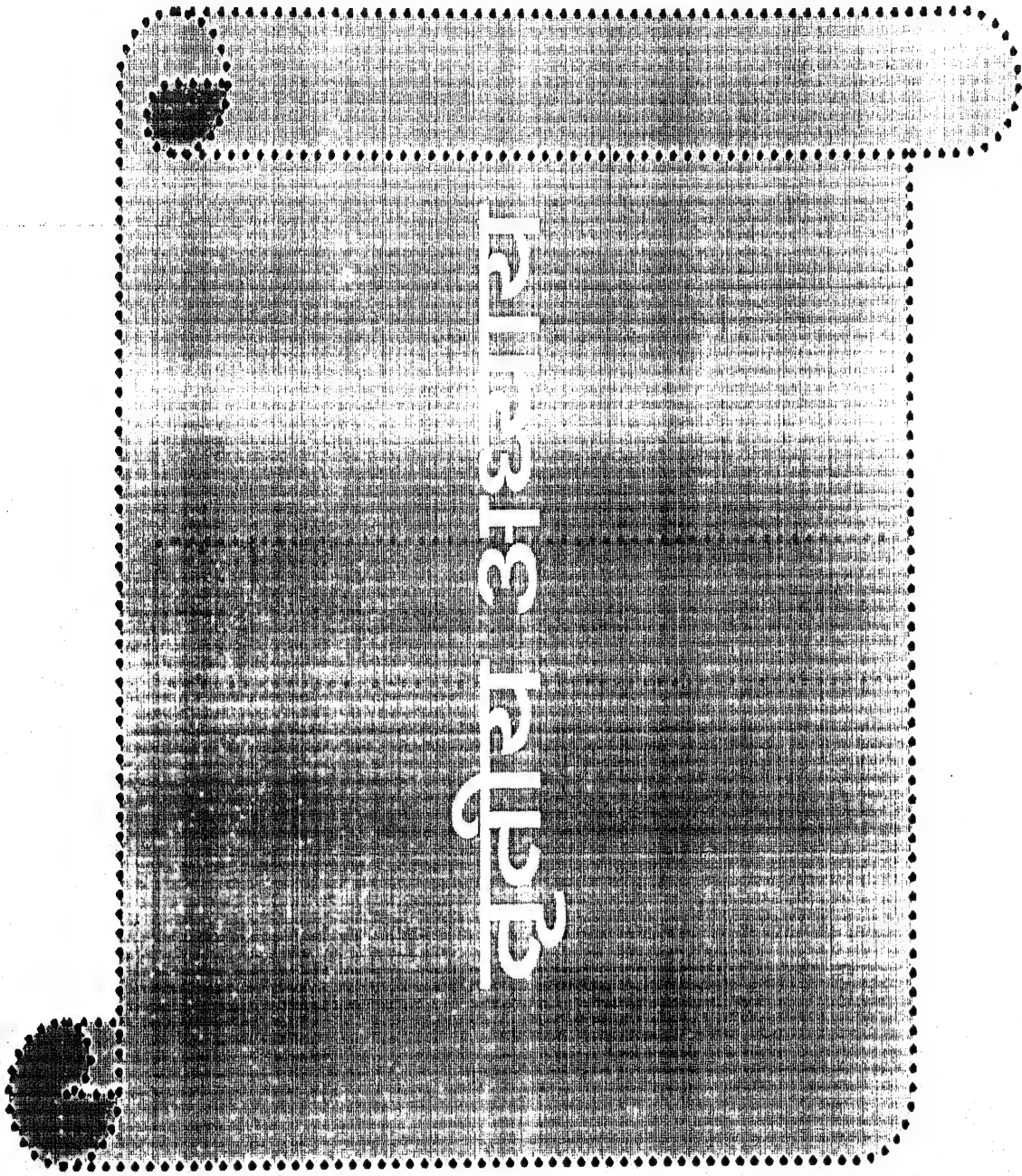
यूरोपीय शैली—विवेचना के क्षेत्र में प्रो मररी स्टीवेन्सन वाल्टर रेले आदि विद्वानों ने भी शैली के ऊपर अपनी लेखनी चलाई है। पश्चिम के शैली—विवेचन की यदि मीमांसा की जाए तो यही ज्ञात होता है कि उनकी शैली—विवेचना में वैयक्तिक अभिव्यजना अखण्डात्मक अभिव्यजना और कला की उत्कृष्टता के लिए निर्पेक्ष विवेचना की रूपरेखा प्रस्तुत की है। वैयक्तिक अभिव्यजना कवि वैयक्तिक छाप को कविता में इस प्रकार उपस्थित करती है कि सम्पूर्ण कविता में कवि का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। दण्डी ने तो व्यक्ति—भेद से शैली भेद की बात तो की है किन्तु इसकी विवेचना प्रस्तुत नहीं की है। कुन्तक ने स्वभाव के आधार पर मार्ग की जो विवेचना की है वह पूर्णतः वैयक्तिक अभिव्यजना का मापक तो नहीं है। किन्तु उसमें कवि की वैयक्तिकता की छाप स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। पश्चिम की अभिव्यजना भारतीय रीति का पर्याय है। ११— यद्यपि अभिव्यजनात्मक रीति वामनादि की रीति—विवेचना की पूर्णता अनुकृति तो नहीं है फिर भी कुछ सीमा तक दोनों की एकरूपता देखी जा सकती है। शैली का तीसरा रूप—निर्देक्ष रूप है जिसमें वैयक्तिक और सामान्यात्मक तत्वों का पूर्ण समजित रूप है। इस प्रकार का विवेचन आनन्दवर्धन की सघटना आदि वर्णन में देखा जा सकता है।

पाश्चात्य रीति—कवि की वैयक्तिक भावों को प्रमुखता देती है। इसलिए पाश्चात्य रीति—विवेचना वस्तुपरक न होकर आत्म—परक है। भारतीय विचारकों ने वस्तु की प्रधानता इसलिए दी है कि क्योंकि सहृदय की अनुभूति साधारणीकरण को प्राप्त होती है। यदि वैयक्तिक दृष्टिकोणों का प्रतिबिम्बित

काव्य मे किया जाय तो भी वस्तु के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती । वस्तु की स्थूलात्मा सूक्ष्म की अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि है । इसलिए भारतीय चिन्तको ने काव्य के वैयक्तिक सत्ता की स्थापना मे गौणता ही दिखलाई है । पाश्चात्य रीति कवि—स्वभाव या काव्य की वैयक्तिकता की उद्घाटयित्री विशेषता को अभिव्यक्त करने के कारण शैली के नाम से जानी जाती है । भारतीय शैली शब्द की प्राचीनता का अपलाप नही किया जा सकता ।

प्राचीन शैली जिस अर्थ मे प्रयुक्त होती है । उसी अर्थ को आज भी अभिव्यक्त करती है । किन्तु कालान्तरता के कारण अर्थान्तरता की अभिव्यक्ति को ठुकराया नही जा सकता । शैली की वैयक्तिकता सामूहिक शैली की अभिव्यक्ति होती है । यद्यपि व्यक्ति—वैशिष्ट्य उसके कार्यों मे भिन्नता सम्पादित करता है तथापि सामान्य रूप से समूह को अभिव्यक्त करता है । इसलिए वैयक्तिक अनन्ता भी किंचित सीमाबद्ध होकर कुछ सख्या मे विभक्त होकर ही अभिव्यक्त करती है ऐसा नही है कि वह केवल व्यक्ति से हटकर किसी वस्तु के लिए ही समर्पित हो । आधुनिक शैली आज जिस अर्थ मे प्रतीत होती है उसका सम्बन्ध विवेचना से कम वैज्ञानिकता से अधिक है ।





‘लघुत्रयी का परिचय

वैदिक साहित्य की सर्जना के पश्चात् लौकिक साहित्य की वासन्ती सुषमा ने सस्कृत साहित्य के कण—कण में मादकता आह्लादकता और तन्मयता का रस भर दिया है। इसके रसात्मक सौन्दर्य को देखकर सम्पूर्ण विश्व के सहृदय विद्वान् आत्मविभोर हो जाते हैं। सस्कृत साहित्य की सम्पूर्ण विधाओं में इसका काव्यात्मक स्वरूप जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों को प्रकृति के कण—कण में ढालकर इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि ससार के दावानल से परितप्त मानव मन कल्पनातीत आनन्द को प्राप्त करता है। कालिदाससे पूर्व प्रमुखतः रामायण महाभारत एवं भास के नाटकों का प्रभुत्व था, इन्होंने अपनी लेखनी से साहित्य में रसमयी धारा का सृजन किया जिसने सम्पूर्ण विश्व को आनन्द सरिता में मज्जित कर हिमालय की तरह ऐसे अद्वितीय मापदण्ड की स्थापना की जो पृथ्वी के सम्पूर्ण साहित्यिक कृतियों को अनायास ही नाप रहे हैं।

सस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे महाकाव्य हैं जिनमें इतिवृत्तान्तता का प्राधान्य रहा है, जैसे रामायण एवं महाभारत। कुछ ऐसे महाकाव्यों की सर्जना हुई जिसकी इतिवृत्तात्मक लताओं में काव्यात्मक सौन्दर्य के सुरभित सुमन भरे हुए हैं—जैसे रघुवंश सौन्दरनन्द आदि। तीसरे ऐसे काव्य जिनके शब्दों के प्रत्येक कण में रागात्मक भावों की मदमाती सुरभि भरी हुई है। इस प्रकार के काव्य पाठक को अपने रसात्मक भावों में अन्तर्भूत कर लेते हैं। इस प्रकार के काव्य मेघदूत और गीतगोविन्द हैं ऐसे काव्य में इतिवृत्तात्मकता की गौणता तथा भावों की प्रधानता रहती है। चौथे प्रकार के महाकाव्य अलङ्कार प्रधान महाकाव्य होते हैं इनमें कथात्मकता, अर्थात् इतिवृत्तात्मक भाव अलङ्कारों

के बोझ से इतने तिरोहित हो जाते हैं कि सम्पूर्ण महाकाव्याकाश में केवल अलङ्कारों की तारावली दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् शिशुपालबधम् नैषधीयचरितम् और रत्नाकर कृत हरविजय है।

रघुवश

रघुवश कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें उनकी परिपक्व प्रज्ञा एवं प्रौढ़ प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित ४० टीकाओं के अस्तित्व में मिलता है। इसलिये संस्कृत के ग्रन्थकारों एवं शुभाषितकारों ने कालिदास को 'रघुकार' के नाम से उल्लिखित किया है। रघुवश में १६ सर्ग तथा २६ सूर्यवशी राजाओं का यशोगान है। राजाओं में रघु नामक राजा बड़ा प्रतापी तथा दानशील हुआ। उसी के वशधर राजाओं का काव्यमय वर्णन इस काव्य में किया गया है जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी हुए। इसी से इस काव्य का नामकरण 'रघुवश' पड़ा।

कालिदास के रघुवश काव्य की विशालता तथा काव्यात्मक चारुता रघुवश की विशेषता है। रघुवश नाम ही काव्य की सम्पूर्ण विजय सामग्री को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है जैसे सहस्रत्र-रश्मि शब्द सूर्य के सम्पूर्ण विशेषताओं को अभिव्यक्त करता है। रघुवश नाम रघुकुल के सम्पूर्ण राजवश के सच्यरित को अभिव्यक्त करने वाला है। कवि की दृष्टि में रघुवश का चरित्र पूनम की चन्द्रमा की वह ज्योत्सना है जिसके आलोक से दिग्दिगन्त आलोकित हुआ है।

रघुवश की रचना ने कालिदास की उन मानवीय चारित्रिक उत्कर्ष तथा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के विलास को इस प्रकार से चित्रित किया है जिसके एक-एक शब्द में जीवन की गहराई प्रतिबिम्बित हुई है।

दिलीप से प्रारम्भ होने वाली तथा कथा का बीज अङ्कुरित पल्लवित पुष्पित होकर जब अपने सौरभ को बिखेरता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि रघुवश की कथा में पारिजात नामक पुष्प की अलौकिक सौरभ की मादकता है। और इस कथा की परिणति के लिये अग्निवर्ण नामक राजा उपस्थित होता है तो सुरभित पुष्पो के भार से नमित रघु की कथा रूपी लता पर प्रलय कालीन अग्नि की वर्षा हो जाती है। अग्निवर्ण का निम्न चरित्र चित्रण सम्पूर्ण रघुवश के यशस्वी चन्द्रमा के लिये राहु बन जाता है।

अग्निवर्ष का चरित्र उस विलासी कामी लम्पट और धूर्त का चरित्र है जिसमें मानवता कराहती हुई दिखाई पड़ती है। अग्निवर्ण के चरित्र वर्णन से कवि ने अत्यन्त बुद्धिमानी पूर्वक प्राकृतिक यथार्थ का वर्णन करते हुए मानव को कान्तासम्मित शिक्षा देने का सफल प्रयास किया है। पूर्वदिशा की दिग्वधू की माग को अरुणिम करने वाला सहस्त्ररश्मि जिस प्रकार निशा के श्यामल परिधान में अन्तर्निहित हो जाती है उसी प्रकार तपस्या और धर्म के मूर्तिस्वरूप दिलीप की तपस्या से उत्पन्न होने वाला रघुकुल का नाश हो जाता है। यह एक प्राकृतिक सत्य है कि सर्जना की लता प्रलय की गोद में झुलस कर राख हो जाती है। दूसरा शाश्वत सत्य यह है कि मानव जीवन पाशविक आचरण से मानवता को नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य की मनुष्यता तभी जीवित रह सकती है जब मानव में त्याग, तपस्या, परोपकार की भावना के लिये सर्वस्व का त्याग, प्रजा की सुरक्षा के लिये जीवन के सर्वस्व का परित्याग करना शौर्य शालीनता आदि गुणों की उतनी ही आवश्यकता है जितना जीवन के लिये प्राण की। अग्निवर्ण राजा ने सम्पूर्ण मानवीय गुणों को तिलाञ्जलि देकर जिस काम सरोवर में स्नान करना प्रारम्भ कर दिया उसमें सदा-सदा के लिये स्वकीय वश की प्रतिष्ठा सहित विमज्जित हो गया।

रघुवश एक अद्वितीय महाकाव्य है। महाकाव्य के लिये जिन तत्वों की आवश्यकता होती है उन सभी तत्वों को कालिदास ने अपने कलात्मक

सूत्र मे पुष्प की भोंति पिरो करके मनोहारिणी माला बना दी है। जिसे देखकर यही प्रतीत होता है कि इस माला की निर्मित किसी देवी प्रतिमा से हुई है। रघुवश के उन्नीस सर्गों मे जिस प्रकार कथाओं का गुम्फन किया गया है उसमे उनकी चतुष्कोणात्मक प्रतिभा देखी जा सकती है।

प्रथम सर्ग मे वर्णित सच्चरित्र दिलीप की द्वितीय सर्ग मे गुम्फित की गयी गौ सेवा तृतीय सर्ग मे दिलीप के राज्य को अलङ्कृत करने के लिये तथा सुदक्षिणा रूपी ऊषा की सूनी गोद भरने के लिये रघु रूपी सूर्य को उत्पन्न करती है। यहाँ तक कवि द्वारा ऐसी भूमिका प्रस्तुत की गयी है जिसमे गो सेवा की महत्ता के साथ-साथ श्रुति एव स्मृतियों की मर्यादाओं की सुरक्षा की गयी है इसी अर्थात् तीसरे सर्ग के अन्त मे सुदक्षिणा सहित दिलीप तपोवन मे जाकर जीवन की अधूरी तपस्या को पूर्ण करने का प्रयास करते है। कालिदास की दूसरी भूमिका चौथे सर्ग से आठवे सर्ग तक देखी जा सकती है। चतुर्थ सर्ग का उत्कर्ष रघु के दिग्विजय से अलङ्कृत है। पंचम सर्ग मे भारतीय सस्कृति की चिरन्तन आत्मा रघु के दानशीलता के चित्रो मे चित्रित की गयी है। एक राजा का राजसिंहासन सरस्वती के सेवक कौत्स के सामने झुक जाता है। राजा विद्या की अखण्ड ज्योति के समक्ष अपनी राज्य की दीप प्रभा को इतना तुच्छ समझता है कि कौत्स की स्वयं पूजा करने वाला रघु कौत्स की तुच्छ इच्छा को पूर्ण करने के लिये कुवेर पर आक्रमण करने के लिये तैयारी कर देता है। कालिदास के पंचम सर्ग मे एक ओर दानशीलता की गंगा बहती है तो दूसरी ओर रघु की शूरवीरता का यमुना, जो सरस्वती की उपासना के लिये जीवन के उच्च आदर्श के प्रयास मे आकर मिलती है।

कवि का षष्ठम् एव सप्तम् सर्ग कवि की कलात्मक एव रागात्मक भूमिका का सुन्दर समन्वय है। रघु का पुत्र अज, राजा ही नहीं वह सम्मोहन

विद्या का निष्णत धनुर्धर है। मन्मथ के हृदय इस धनुर्धारी के समक्ष इन्दुमती रति की भौंति उसी प्रकार अज के हृदय में अन्तर्निहित हो जाती है जैसे माधवी लता रसाल की शाखाओं में इन्हीं सर्गों में कवि ने मानवीय प्रकृति के साथ-साथ वाह्य प्रकृति के जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है। उसमें भौगोलिकता वासन्ती परिधान में लिपटी हुई नवयौवना के विलास को प्रस्तुत करती है।

आठवाँ सर्ग कवि का वह सर्ग है जिसमें करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित होती है। इस धारा में पाषाण हृदय भी पिघल जाता है। इन्दुमती की मृत्यु और अज के विलाप की सवेदना की ऐकान्तकिता विखण्डित होकर के जिस साधारणीकरणता को प्राप्त होकर रस की सवेदनात्मक भूमिका उपस्थित करती है उसकी कल्पना केवल कालिदास की लेखनी ही कर सकती है।

नवे से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक कालिदास की तीसरी भूमिका उपस्थित होती है। जिसमें मर्यादापुरुषोत्तम राम का चरित्र चित्रण किया गया है। रघुवंश में राम का चरित्र वाल्मीकि रामायण की अनुकृति मात्र नहीं है। राम का चरित्र कालिदास की कल्पनाओं का नवीनतम चित्र प्रतीत होता है। राम की कथा की कलात्मक भूमिका जीवन की यथार्थता और आदर्शता को प्रस्तुत करने में तत्पर हुई है। गर्भिणी सीता का परित्याग राम की हृदयहीनता का भले ही परिचायक हो लेकिन इस परित्याग में वर्णाश्रम तथा धर्म की रक्षा का भाव है। सीता ने जिस भावात्मक सदेश देकर लक्ष्मण को दूत बनाया है उसमें नारी हृदय की विवशता किंचित आदर्श का आवरण ओढ़े हुई खड़ी है। सांस्कृतिक मान्यता श्रुति स्मृति के परिपालन की आवश्यकता है। कालिदास की चतुर्थ भूमिका सोलहवें सर्ग से प्रारम्भ होकर के उन्नीसवें सर्ग में समाप्त होती है। सोलहवें सर्ग में राम के पुत्र के विवाह के प्रसङ्ग में एक और अयोध्या की दुर्दशा का मर्मन्तक वर्णन किया है, और

दूसरी ओर कुश के जल विहार के वर्णन में कवि ने अपनी कलात्मक भूमिका के साथ राजा की काम विलासिता का चित्र उपस्थित किया है।

सत्रहवें सर्ग में कुश के पुत्र अतिथि का चरित्र चित्रण १८ वें सर्ग की भूमिका मात्र है। १८वें सर्ग में इक्कीस राजाओं का वर्णन मात्र है।

रघुवश का उन्नीसवाँ सर्ग जहाँ एक ओर अग्निवर्ण के उद्दाम कामक्रीड़ा को प्रतिबिम्बित करता है वही दूसरी ओर इस बात का संकेतक है कि कोई नृपति यदि स्वकीय कर्तव्य मार्ग का परित्याग कर केवल विलासात्मक सरोवर में डूबा रहता है तो उसका नाश उसी प्रकार होता है। जैसे रजनी के कुन्तकलाप छूने की लालसा में सूर्य का नाश हो जाता है। रघुवश की कथात्मकता की काव्यता पर विचार किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कालिदास की कृतियों में जैसी काव्यात्मकता कुमारसम्भव मेघदूत अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मिलती है उसका रघुवश में अभाव है। यद्यपि कालिदास ने स्वतः कहा है “रघुणामन्वय वक्ष्ये” अर्थात् रघु के वश का वर्णन मैं कर रहा हूँ फिर भी इस वर्णन में इतनी कथाओं की भरमार है कि सबमें एकरूपता की अभावात्मकता है। काव्यात्मक कथा जब विस्तारता तथा विविधिता को प्राप्त हो जाती है तब कथा प्रवाह पुष्प की नोची गयी पखुड़ियों का समन्वय प्रतीत होता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान् ‘राइडर’ का कहना है कि प्रस्तुत काव्य में एकसूत्रता का अभाव है तथा उसका कथानक रूपविहीन एवं असम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त दसवें से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक की कथावस्तु में राम का आस्थान वर्णित है। एक महाकाव्य के अन्तर्गत एक अन्य महाकाव्य के समान प्रतीत होता है।^१ यद्यपि रामास्वामी ने राइडर के इस मत का खण्डन किया है फिर भी उस सत्य को मिथ्यायित नहीं किया जा सकता है कि रघुवश के

आकाश में कथाओं की तारावली झिलमिलाती रहती है। कथा का नायक फल का भोक्ता होता है। रघुवश में नायकत्व की समस्या का समाधान करना केवल हठवादिता का प्रदर्शन मात्र है।

राम अथवा रघु को नायक मानना फलभोक्तता के रूप नायक के साथ अन्याय करना है। वस्तुतः रघुवश पर अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्द का प्रभाव प्रतीत होता है। सौन्दरनन्द की प्रतिस्पर्धास्वरूप में रघुवश की रचना हुई है। अश्वघोष ने जिस निवृत्तिमार्ग को श्मशान की राख से कविता कामिनी की माँग को अरुणिम करने का प्रयास किया कालिदास ने इसके विपरीत प्रवृत्तिमार्ग के सिन्दूर की अरुणिमा से कविता कामिनी की माँग को सौभाग्य से भर दिया वस्तुतः कालिदास ने रघुवश में बहुनायकत्व की स्थापना की है सम्भवतः रघुवश को ही ध्यान में रखकर विश्वनाथ ने महाकाव्य के लिये विकल्प से बहुनायकत्व की व्यवस्था को स्वीकार किया है।^१ रघुवश की कथा खण्ड रूप में उपस्थित तो होती है किन्तु इसके प्रवाह को विच्छिन्न नहीं होने देती कवि ने —

सदृश क्षत्रियो वापि धोरादात्तगुणान्वित ।

एकवशभवा भूपा कुलजा वहवोऽपि वा ।।

सा०द० विश्वनाथ पृष्ठ ३१६

रघुवश कालिदास की प्रतिभा का काव्य रूप में सर्वोत्तम निदर्शन है। कवि की प्रतिभा का प्रस्फुरण पद—पद पर परिलक्षित होता है। एक ओर भावों का सौन्दर्य तो दूसरी ओर कलात्मकता का चमत्कार एक ओर भाषा में प्रसाद और माधुर्य है तो दूसरी ओर अलङ्कारों की अनुपम छटा। एक ओर वाच्यार्थ की मुख्यता है तो दूसरी ओर व्यङ्ग्यार्थ का अपूर्व संयोजन।

१ “क रह रघुकारे न रमते”

एक ओर सभोग शृङ्गार का सुखद रसास्वाद है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ शृङ्गार की मार्मिक अनुभूति। एक ओर वाह्य प्रकृति का विशद वर्णन है तो दूसरी ओर अन्तः प्रकृति का तात्त्विक विश्लेषण। एक ओर अज इन्दुमती के प्रगाढ प्रेम का चित्रण है तो दूसरी ओर सीता परित्याग का मार्मिक दृश्य। एक ओर दिलीप आदि का तपोमय जीवन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयाशक्ति। एक ओर राजा का आदर्श और उसकी प्रजावत्सलता है तो दूसरी ओर प्रजा की राज भक्ति। एक ओर राजतन्त्र का महत्व है तो दूसरी ओर प्रजा की राजभक्ति। एक ओर राजतन्त्र का महत्व है तो दूसरी ओर प्रजा में विचार स्वातन्त्र्य। इस प्रकार रघुवश विविध विरोधी गुणों का समन्वय है। कहीं दार्शनिक पाण्डित्य का प्रदर्शन है तो कहीं काव्यशास्त्रीय वैदुष्य कहीं उपमा का मनोहर प्रयोग है तो कहीं अर्थान्तरन्यास की छटा, कहीं श्रमसाध्य यमक है तो कहीं सहज उत्प्रेक्षाये कहीं वर्णन वैविध्य है तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान। इसीलिये कालिदास सभी दृष्टि से कवियों के लिये आदर्श हो गये। रघुवश कालिदास के इस वैशिष्ट्य के कारण ही कवियों एवं आलोचकों को कहना पड़ा है कि—

“क इह रघुकारे न रमते

कुमारसम्भव

कालिदास का कुमारसम्भव जिस प्रणयभूमि का मूर्तिमान चित्र है, उसे देखकर यही स्वीकार करना पड़ता है कि ‘अभिज्ञानशाकुन्तल’ का व्यष्टिमूलक प्रेम कुमारसम्भव में जिस समिष्टता की सर्जना को प्राप्त हो जाता है उसमें काम का वरदान रूप अभिव्यक्त होता है। कालिदास की जो शिव भक्ति रघुवश के वाणी और अर्थ के साथ—साथ प्रस्फुटित हुई थी। वही अभिज्ञान शाकुन्तलम् में अष्टरूप वाले शिव में रामाहित हुई। लेकिन कुमारसम्भव

का तो प्रत्येक श्लोक ऐसी ऋचा है जिसमें शिव शिवा की इस प्रकार से स्तुति की गयी है कि कामी व्यक्ति भी शिव भक्ति को प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः शिव विश्वमूर्ति है और शिवा सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त होने वाली आह्लादिनी परम शक्ति है। सम्भवतः इसी तत्त्व को स्वीकार करने के लिये कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रथम श्लोक में 'अस्ति' शब्द का प्रयोग किया है। कहने का आशय यह है कि यह प्रणयमूलक मङ्गलात्मक काम का अस्तित्व चाहे जड हो चाहे चेतन हो देव हो मनुष्य में समान रूप से व्याप्त है। सम्भवतः इसी सत्य का प्रतिपादन करने के लिये कवि ने 'अस्ति' शब्द का प्रयोग किया है।

कुमारसम्भव की रचना जिन सत्रह सर्गों में हुई है ये सर्ग वस्तुतः जीवन की सम्पूर्ण वासनाओं को समेटे हुए हैं। ये सत्रह सर्ग सूक्ष्म शरीर के सत्रह तत्त्व हैं। इसी सूक्ष्म शरीर में कर्मों की सम्पूर्ण वासनाये अन्तर्भूत हैं। कर्मों का मूल प्रेरक काम की वासना है। यह काम वासना जब मङ्गल की सर्जना करती है तो वह इतना ही पवित्र हो जाती है जितना शिव और शक्ति का चिन्तन मिलन। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय के वर्णन का गौरव भारत की गरिमा को ही नहीं व्यक्त करता वरन् इसकी सांस्कृतिक मूल्यों को अपने वनस्पतियों, लताओं और स्वच्छ हिमश्रृंगों के माध्यम से व्यक्त करता है। कवि ने हिमालय के वर्णन का माध्यम एक और भारत के प्राकृतिक वैभव को व्यक्त किया है—वहीं दूसरी ओर सम्पूर्ण काव्य की कथा की भूमिका को शिव की तपस्या में अन्तर्निहित किया है। कवि शाश्वत सत्य का वास्तविक द्रष्टा है। आसुरी शक्ति को पद धूल के नीचे दैवीय शक्ति जिस प्रकार से लुपिष्ठ हो गयी है वह सृष्टि की शाश्वत किन्तु प्रातिभासिक शाश्वत है। कवि आसुरी शक्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये ऐसे कुमार की सृष्टि करना चाहता है कि जिसका जन्म तपस्या के बीच हो।

शिव समाधि को भङ्ग करने के लिये कामदेव की कल्पना करनी पड़ती है तथा शिव की समाधि जगत के कल्याण के लिये भङ्ग होती है।

दूसरे सर्ग में देवताओं ने ब्रह्मा की स्तुति की वहाँ पर उन्हें यह ज्ञात होता है कि शिव का पुत्र कार्तिकेय तारकासुर का विनाश कर सकता है और इस पुत्र की उत्पत्ति के लिये शिव की चित्त उमा की ओर आकर्षित करना आवश्यक है। ब्रह्मा ने इस प्रसंग में शिव की जो महिमा वर्णित की है उसमें कालिदास का शिव के प्रति समर्पित जीवन अभिव्यक्त होता है। कालिदास की अपनी मान्यता है कि तमोगुण को नष्ट करने के लिये उत्कट सत्त्वगुणमय तेज की आवश्यकता होती है। कहने का आशय यह है कि तारकासुर का तभी नाश हो सकता है जब शिव के वीर्य को धारण करने वाला पात्र हो उसे मूर्तिमान रूप देने में समर्थ हो। इस अभिव्यक्ति में केवल एक ही तत्त्व को परमोत्कृष्टता ही नहीं अभिव्यक्त होती है। वरन् तीन तत्त्वों को परमोत्कर्ष अभिव्यक्त होता है। शिव के वीर्य को धारण करने के लिये कालिदास की दृष्टि में केवल उमा ही सक्षम है। अतएव उमा को तपस्यानल में जलाकर स्वर्ण बना दिया है। इन दो तत्त्वों के मिलन से जिस तीसरे तत्त्व 'कुमार' की उत्पत्ति की उद्भावना दी गयी है, उसके समक्ष समस्त आसुरी शक्ति का विनाश हो जाता है।

तीसरे सर्ग में कामदेव जब शिव की तपस्या को भङ्ग करने के लिये सन्नद्ध होकर आता है उस समय की दशा इतनी रमणीय हो जाती है कि सम्पूर्ण विश्व में काम का ही विलास दिखाई पड़ता है। काम के प्रभाव से वासन्तिक सुषमा सम्पूर्ण वराचर को अपने मनमोहक भुजा पाश में बँध देती है। लेकिन शिव की तपस्या के समक्ष काम का वर्चस्व जल कर क्षार हो जाता है। शिव की लोकोत्तर समाधि भङ्ग इसलिये नहीं हो पाती क्योंकि शाश्वत सत्य जागतिक सौन्दर्य से अनभिभूत रहता है। यद्यपि काम ने अपने

दुर्वल साधनो से शिव पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई और कुछ अश तक उसे सफलता मिल गयी। क्योंकि शिव के चित्त सागर मे किचित प्रेम की लहरिया उदभूत हो गयी। और उनकी दृष्टि क्षण भर के लिये पार्वती के बिम्बाधर के पान मे रम भी गयी। लेकिन एक ही क्षण मे शिव के तीसरे नेत्र ने काम को सदा के लिए अनङ्ग बना दिया। इस प्रसङ्ग मे कवि ने शिव के तीसरे नेत्र रूपी ज्ञान की जिस अपरिमित शक्ति का चित्रण किया है और उसके समक्ष काम की सम्पूर्ण कलाए जलकर नष्ट हो जाती है।

कालिदास का चतुर्थ सर्ग चिन्तन करुणा की धारा से ओत—प्रोत है। रति का विलाप जीवन के उस तत्व को अभिव्यक्त करता है जहाँ प्रेम रूपी काम के अभाव मे जीवन का उपवन मरुस्थल बन जाता है। रति केवल काम की प्रिया ही नहीं है, वरन सम्पूर्ण चेतन की प्रमोदात्मक शाश्वत वासना है। कवि ने रति विलाप के माध्यम से वाल्मीकि रामायण के करुण तत्व को ऐसा सजीव स्वरूप दिया है, जिसे देखकर सहृदय अपने को सभाल नहीं पाता है। रति भी चिता पर भस्मीभूत होने के लिये तत्पर हो जाती है, किन्तु आकाशवाणी ने उसे आशान्वित कर जागतिक मर्यादा की रक्षा की। कालिदास यह कहना चाहते है कि रति का नाश असम्भव है। यही रति ही आलम्बन भेद से विभिन्न रूपो को प्राप्त होकर मानव को प्रवृत्ति से निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाती है। इसी लिये कवि ने काम एव रति दोनो के शाश्वत मिलन की सम्भावनाओ का चित्रण प्रस्तुत कर मानव के मनोराज्य के वैभव को प्रस्तुत किया है।

कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग का उतना ही महत्व है, जितना भरतमुनि का पचम वेद नाट्यशास्त्र। कालीदास का प्रेम तात्कालिक सवेगजन्य नहीं है। इस प्रेम के परिपाक हेतु जिस कठिन तपस्या की आवश्यकता है, उसे केवल उमा ही पूर्ण कर सकती है। कालिदास की यह पक्ति—‘प्रियेषु

सौभाग्यफलाहि चारुता^१ कुमारसम्भवम्— ५/२१ जिस परम सत्य को चित्रित करती है उसमे भारतीय नारी की आत्मा प्रतिविम्बित होती है।

अवास्यते वा कथमन्यता वयतादृश ।।^२ कुमारसम्भवम्— ५/२

यह पक्ति पार्वती के पवित्र मन का ही सार नहीं है वरन् भारतीय सास्कृतिक चेतना का अमूल्य चिन्तन सार है। पति प्राप्त हो सकता है किन्तु प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेम मिल सकता है किन्तु पति नहीं मिल सकता। यदि दोनों ही मिल जाये तो वे तथाविधि अर्थात् शाश्वत अथवा जन्म जन्मान्तर मे कभी भी न भग होने वाला अमरप्रेम नहीं मिल सकता। इस प्रेम और पति परमेश्वर की प्राप्ति हेतु तपस्याग्नि मे जलना ही पडता है। पार्वती जो कुसुम शैय्या पर शयन करने वाली थी शिव की प्राप्ति के लिये अपने तन को जलाती है। शिव जिस समय ब्रह्मचारी का रूप बनाकर उपस्थित होते है, उस समय का वर्णन सम्पूर्ण विश्व साहित्य को चुनौती देने मे सक्षम है। शिवा अपने परम प्रिय शिव की निन्दा नहीं सुन सकती। ज्योहि वह निन्दा श्रवण रूपी पाप से बचने के लिये उद्यत हुई कालिदास की मर्मस्थली को स्पर्श करने वाली भाषा मे उपस्थित किया।^३

त वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्ग यण्टिनिक्षेपाय पदमुदधृतमृद्धहन्ती।

मार्गाचलव्यतिरिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ ।।

कु०स० ५/८५

छठे सर्ग मे शिव के विवाह की तैयारी जिस वातावरण को उपस्थित करती है, वहाँ लौकिक और अलौकिक का भेद मिट जाता है। पार्वती ने शिव का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है किन्तु उनके प्रणय मे सरिता की चंचलता

१ कुमार सम्भव ५/१

२ " कु स ' ५/२

३ त वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्ग मष्टिनिक्षेवाम पदमुदधृतमुद्धहन्ती।

मार्गाचलव्यतिरिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ ।। कु स ५/८५

नहीं है वरन सागर की गम्भीरता है। इसीलिये वे सखियों के माध्यम से कहलाती है कि मेरे प्रणय का लौकिक रूप मेरे पिता के स्वीकृति पर आधारित है। कालिदास की लोक मर्यादा इतनी सुसंगठित एवं सवेदनशील है जिसे स्वीकार करने में अनिच्छा को स्थान नहीं मिल पाता। विवाह की तैयारी का प्रसंग लौकिक जीवन के उत्कर्ष के प्रथम सोपान के रूप में वर्णित किया गया है। सातवें सर्ग में विवाह के प्रसंग को कवि ने इतना आकर्षक रूप प्रदान किया है कि अनुरागी पाठक को जहाँ अमृत फल की प्राप्ति होती जाती है वहीं विवेकशील पाठक शिव एवं शक्ति के अनादि मिलन को नूतन मिलन के रूप में मूल्यांकन करते हैं। इस प्रसंग में कवि विवाह के प्रसंग में होने वाले स्वाभाविक वर्णन की जिस दिव्य झोंकी को प्रस्तुत करता है उसको देखकर आश्चर्य होता है।

अष्टम सर्ग शिव एवं पार्वती की विलास लीला का जीवन्त चित्रण है। यह प्रसंग यद्यपि लौकिकता के परिवेश में चित्रित किया गया है किन्तु इसके मूल में अलौकिकता की सुधामयी धारा प्रवाहित होती रहती है। शिव और शिवा मूलतः मानवीय चेतना की सत्कल्पना के मूर्तिमान् मंगलकारी तत्त्व हैं। मानवोचित कामक्रीड़ा साधारण पाठक को भले ही अश्लीलता का परिचायक लगे किन्तु इसके मूल में जिस अलौकिक दो चेतनाओं का मिलन है वही पर शब्द और अर्थ की संपृक्तता की धारा प्रस्फुटित होती है।

संभोग जीवन जहाँ एक ओर वाह्य एवं स्थूल स्वरूप को प्रस्तुत करता है वहीं इसके मूल में शाश्वत सत्य का बीज अन्तर्निहित रहता है। इस सुरत क्रीड़ा का आक्षेप करना अपने को मिथ्याभिमानी सिद्ध करना है। काव्य की भाषा अलौकिक तत्त्व को भी यदि लौकिक धरातल पर अथवा साधारणीकरण की स्थिति का सृजन करने में समर्थ नहीं हो पाती तो वह भाषा दृष्टिहीन पथ प्रदर्शिका मात्र बनकर रह जाती है। रति क्रीड़ा ऐकान्तिक

नहीं है वरन् सृष्टि के उद्भव का मूल तत्त्व है। सम्पूर्ण सृष्टि ही इसी का विलास है। विलास की अनुभूति यदि वाणी का रूप ग्रहण करती है तो वह किस प्रकार अश्लीलता की उपाधि से अलङ्कृत हो सकती है। व्यक्ति की वासना वस्तु के स्वरूप का निर्धारण करती है। शिव और पार्वती का जो सात्विक रूप चित्रित किया गया है उसके विलास में भी सात्विकता है। यदि यह बात न होती है तो सभोग काल की चिरन्तनता लौकिकता से प्रभावित होकर विच्छिन्नता को प्राप्त हो जाती है।

अन्तिम नौ सर्गों की कथा में कुमार की उत्पत्ति और तारकासुर के वध की सौन्दर्य पूर्ण चित्रण रेखा का वर्णन किया है। शिव की सभोग क्रीडा में देवताओं ने अग्नि को कबूतर के रूप में विध्न डालने को भेजा। सात्विक शिव के वीर्य के ताप को अग्नि का तेज नहीं सह सका। इसलिये उसने उस वीर्य को जब स्वर्ग गंगा में डाल दिया तब उस तेज को न सह सकने गंगा ने स्नान करती हुई छ कृतिकाओं के शरीर में डाल दिया उस तेजस्वी वीर्य को गर्भवती कृतिकाएँ भी धारण करने में असमर्थ रही। इसीलिये उन्होंने वेतस वन में शिशू का परित्याग कर दिया। शिव और पार्वती ने जब शिशु को देखा तब उसे अपना पुत्र समझकर उसे उठा ले आये। यही बालक छह दिनों में वृद्धि को प्राप्त होकर सम्पूर्ण शस्त्र एवं शास्त्रों में पारगट हो गया। देवताओं का सेनापति बना कुमार ने तारकासुर का वध करके इन को सकट से मुक्त कर दिया।

नवे सर्ग में कवि ने कैलाश पर्वत की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया है। दशवे एवं ग्यारहवे से लेकर शेष सर्गों में शिव और पार्वती के कुछ वर्णनों से कालिदास ने कुमारसम्भवम् की रचना समाप्त की है। कुमारसम्भव के सर्गों के विषय में जो मतभेद पाया जाता है उसके अनुसार कुछ लोगों की दृष्टि में कालिदास की लेखनी ने कुमारसम्भव में केवल ८ सर्गों की ही

रचना की है क्योंकि प्रथम आठ सर्ग पर्यन्त ही मल्लिनाथ एव मल्लिनाथ प्रभृति विद्वान की टीकाये उपलब्ध होती है। इसका कारण यह है कि परवर्ती सर्गों के श्लोको का उल्लेख आचार्यों के द्वारा लक्षण ग्रन्थो मे नहीं किये गये है। तीसरा कारण शैली की विभेदता है। प्रथम आठ सर्गों की शैली परवर्ती सर्गों की शैली से नितान्त भिन्न है। प्रसद्धि इतिहासकार कीथ ने भी आठ सर्ग पर्यन्त कालिदास की रचना मानी है।^१ पण्डित बलदेव उपाध्याय ने भी कीथ के मत का समर्थन किया है।^२ लेकिन मेरी दृष्टि मे इन लोगो के विचार मे केवल मल्लिनाथ आदि टीकाओ की अनुपलब्धि को प्रमाण मानना सत्य के साथ अन्याय करना है। कुमारसम्भव की कथावस्तु का प्रारम्भ एक परम निश्चित लक्ष्य की ओर पर्यवस्ति होने वाला है। आठवे सर्ग तक कुमार कार्तिकेय के उत्पत्ति के हेतु बीज का वपन भी नहीं किया गया है। काव्य का शीर्षक कुमारसम्भव इस बात का प्रतीक है कि काव्य मे ऐसे शिशु की उत्पत्ति बतायी जायेगी जो कु (दुष्टो) को मारने मे सक्षम होगा।

कालिदास की जितनी भी रचनाये है उनके शीर्षको की रमणीयता सर्वत्र देखी जाती है। इसलिये कुमारसम्भव की रचना की यथार्थता आठ सर्ग पर्यन्त चरितार्थ नहीं हो सकती। कालिदास ने रघुवश जैसे काव्य की रचना जब पूरी की तो कुमारसम्भव की रचना की पूर्णता क्यों नहीं सम्पन्न हुई। रही बात अलकार—शास्त्रियो के श्लोको के उल्लेख करने की बात तो उनके द्वारा जिन काव्यो के श्लोक यदि उल्लिखित न किये जाये तो क्या उनकी काव्यता सन्दिग्ध समझी जा सकती है। शैलीगत विभिन्नता कवि की रचनाओ मे देखी जाती है। रघुवश मे भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की शैली मे किंचित भेद देखा जा सकता है। इन आधारो पर यह सिद्ध करना कि कालिदास ने केवल आठ सर्ग पर्यन्त ही कुमारसम्भव की रचना की थी कहना नहीं उचित प्रतीत होता।

१ महाकवि कालिदास, रमाशंकर त्रिपाठी पृ० १००।

२ संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ ११२ बलदेव उपाध्याय।

यह भी सम्भावना की जाती है कि कालिदास केवल आठ सर्गों तक ही कुमारसम्भव की रचना कर पाये हो लेकिन यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है क्योंकि विद्वानों ने कालिदास की कुमारसम्भव की रचना को अन्तिम रचना ही मानी है। इसलिये यह कहना तर्क सगत नहीं प्रतीत होता कि वे काव्य को पूरा नहीं कर पाये।

कालिदास का कुमारसम्भव जहाँ एक ओर दार्शनिक तत्त्वों की सूक्ष्म मीमांसा प्रस्तुत करता है वही समष्टि प्रणय के सौन्दर्य को निश्छल मन से अभिव्यक्त करता है। कुमार सम्भव की दार्शनिकता कालिदास की काव्यात्मक भूमिका में इस प्रकार अन्तर्निहित हो गयी है कि साधारण पाठक की दृष्टि उधर जा ही नहीं सकती। कालिदास का शिव एव शिवा का युग्मत्व केवल वैयक्तिक भूमिका पर ही नहीं वरन् समस्त वातावरण के लिये चित्रित किया जा सकता है जबकि शिवा के तुल्य तमोमयी बुद्धि की प्राप्ति हो और इन दोनों का संयोग ही कुमार जैसे अक्षय भण्डार को उत्पन्न कर सकता है जिससे विनासकारी आसुरी प्रवृत्ति का क्षण भर में नाश हो जाता है। जिन लोगों ने कालिदास को विलासी कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने सम्भवतः कालिदास पर अपनी विलासिता को आरोपित किया है।

कालिदास की उमा जिस तपस्या की अग्नि में जलती है क्या उसमें विलासिता का गन्ध आती है। कालिदास का प्रेम केवल शाब्दिक अथवा फूलों की सेज पर अठखेलिया खेलने वाला प्रेम नहीं है। अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला तपस्या की ज्वाला में जलने के उपरान्त ही राजा दुष्यन्त को प्राप्त कर सकती है। कुमारसम्भव की शिवा, शिव अनायास ही नहीं मिल सकते क्योंकि कुमारसम्भव की शिवा शकुन्तला नहीं है। वह तो सम्पूर्ण मानवीय सृष्टि की बुद्धि की प्रतिरूप है। उसे शिव को प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या के खड्गधार पर चलना नितान्त आवश्यक है।

कालिदास ने कुमारसम्भव में जिस रूप सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है उसमें राजभवनों का विलास नहीं है वरन् प्रकृति के कोमल एवं मनमोहक अवयवों की अभिरामता या आकर्षणशीलता पार्वती के प्रत्येक अवयवों से अभिव्यक्त होती है। इनके कुमारसम्भव के शिव कामी नहीं है वरन् उसमें शाश्वत सयम और विश्वमंगल की सर्वतो भद्र भावना है उसे शिवा चाहिये। वह भी शिवा जो उसके रूप सौन्दर्य पर ही नहीं वरन् आन्तरिक सौन्दर्य शिवत्व चाहती है। कालिदास ने उमा और शिव के माध्यम से सयमित काम विलास के वैभव को प्रतिपादित किया है। सयमित काम ही उस कुमार को उत्पन्न कर सकता है। जिसे आसुरी शक्ति का विनाश तथा दैवीय शक्ति की सुरक्षा की जा सकती है यही है कुमारसम्भव का रहस्य यही है कवि का सन्देश जिसके श्रवण से सम्पूर्ण मानवता का उद्धार हो जाता है।

कालिदास का कुमारसम्भव ध्वनितत्व की विस्तृत भूमि का निर्वाह किया है। इनका यह काव्य शृंगार रस की तीर्थ स्थली है। कवि वासनाजन्य प्रेम का पक्षपाती नहीं है। वासनाजन्य प्रेम दुःख क्लेश का परिणाम होता है। काम वासनाओं को विना भस्मीभूत किये सच्चे स्नेह की प्राप्ति नहीं हो सकती है। तपस्या से स्नेह परिनिष्ठित नहीं होते हैं, यह कुमारसम्भव का अमर सन्देश है। सम्पूर्ण महाकाव्य में शृंगार-रस की गंगा प्रवाहित होती रहती है वहीं पर भयानक रस^१ की विभीषिका में मदन का प्रवेश भयभीत हो जाता है। रस रस के निर्वहण के लिये कवि ने जिस वीरासन के साथ-साथ रुद्राक्ष माला से युक्त अनुभावों का चित्रण किया है। उसे देखकर कवि की प्रतिभा की अद्वितीयता की उपाधि देनी पड़ती है। शृंगार रस के उपवन में

१ पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायत सनमितोभयासम्।

उत्तानपाणिद्वयसनिश्वे शात्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये॥ कुस ३/४५

जब रौद्र^१ रस अपने स्वरूप को प्रकट करता तो काम की सम्पूर्ण कला जल कर क्षार हो जाती है। कालिदास का रति विलास करुण रस का अद्वितीय उदाहरण है। यद्यपि मम्मट ने रसे रस दोष के रूप में चित्रित किया है किन्तु जिस रूप में रति विलाप करती है वहाँ करुणा का मूर्त रूप प्रस्तुत हो जाता है। करुणा से ग्रस्त नारी की चेतना विलुप्त हो जाती है इसलिये उसमें स्वस्थ बुद्धि का अभाव रहता है। अतः कालिदास ने करुणा की भूमिका में स्वतः अन्तर्निहित होकर रति-विलाप का चित्रण प्रस्तुत किया है। शान्त रस वीर रस का चित्रण भी प्रसङ्गानुकूल होने से कवि की कला कुमारसम्भव के सौन्दर्य को निखार देती है। शिव की वारात के प्रसंग में उपस्थित होने वाला भावाभास^२ एक अद्भुत चित्र प्रस्तुत करता है इसी प्रकार कामदेव को भस्म करने के प्रसंग में शिव को भावोदय^३ और रति विलाप के प्रसंग में होने वाला भाव शान्ति^३ तथा पौंचवे सर्ग के अन्त में शिव के उपस्थित होने पर पार्वती की भाव सन्धि^४ का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

कालिदास की अलंकार योजना कुमार सम्भव में इस प्रकार प्रतीत हुई है जैसे सम्पूर्ण अलंकारत्व काव्य की रमणीयता के प्रतिपादन करने के लिये उपस्थित हुए हो। उपमाओं की कोकिला मधुर ध्वनि सुनाती है तो कही उत्प्रेक्षा की भ्रमरावली कमल-रस का पान करते हुए गुजार-करती रहती है। पर्योक्ति की भगिमा अर्थ के चारुत्व का निष्पादन करते हुए समासोक्ति के सौन्दर्य से प्रतिस्पर्द्धा करती हुई प्रतीत होती है। यत्र तत्र अर्थान्तरन्यास का मधुर विन्यास अर्थ के गाम्भीर्य तथा चारुत्व का प्रतिपादन करता है। इन्होंने जिस प्रकार से अलङ्कारों को अपने काव्य में विनियोजित किया है। उसे

१ निवेदित निश्वासितेन सोष्मणा मनस्तु मे सशयमेव गाहते।

२ तमेकदृश्य नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।

तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासा सर्वात्मना चक्षुरिव प्रदिष्टा॥ कु०स० ७/६४

३ कु०स० ३/७०

४ कु०स० ४/४०, ४१

देखकर यही लगता है कि इनकी कविता कामिनी के नयनो मे स्वाभाविक अजन है अधरो मे स्वाभाविक अरुणिमा है। चाल मे स्वाभाविक हस की गति है। कालिदास ने नारी के अङ्गज अलङ्कारो का जितना स्वाभित्व वर्णन प्रस्तुत किया है उसे देखकर सरस्वती भी लज्जित हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास का कुमारसम्भव अनुपमन्यास है। इसमे पौराणिक कथा का न्यास कवि की प्रतिभा से जिस साहित्य सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है उसमे विश्व का सम्पूर्ण शिवत्व समाहित है। कालिदास ने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे जिस हिमालय की सत्ता और सौन्दर्य को चित्रित किया है वह सम्पूर्ण सौन्दर्य कुमारसम्भव मे अन्तर्निहित है। वस्तुतः कुमारसम्भव पृथ्वी के सम्पूर्ण काव्यो को मापने के लिये मानदण्ड के सदृश प्रस्तुत है। इसी कुमारसम्भव के हिमालय मे शिव और शिवा का मिलन है। यह कुमारसम्भव मे वर्णित हिमालय तपस्या का रमणीय स्थल है। यही पर दुर्घष काम की कला जल कर क्षार हो जाती है। इस प्रकार कुमार सम्भव एक ओर काम की परिणति का चित्रण करता है दूसरी ओर काम विजय की शिक्षा से मानव को कल्याण की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। सच पूछा जाये तो रघुवश मे जिस वाणी और अर्थ की वन्दना उमा और पार्वती के रूप मे की गयी थी उसका सम्पूर्ण विलास कुमारसम्भव मे वर्णित है।

मेघदूत

मेघदूत समस्त सस्कृत गीतिकाव्य साहित्य का परम् उज्ज्वल रत्न है। एक विरही यक्ष की मार्मिक मनोव्यथाओ के अभूतपूर्व चित्रण ने इस काव्य को अद्वितीय स्थान प्रदान किया है। मेघदूत मे १२१ छन्द है। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो भागो मे विभाजित है।

पूर्वमेघ तथा उत्तरमेघ।

कथा विन्यास के दृष्टिकोण से गीतिकाव्य का महत्व नहीं होता वरन् उसकी गेयात्मक प्रवृत्ति भाव-बोधन की चारुता तथा हृदय की आवर्जकता का महत्व होता है। मेघदूत की कथा एक यक्ष विरही की कथा है। अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर से शापित होकर रामगिरि पर्वत पर एक वर्ष के लिये प्रवास करता है। वेचारा यक्ष प्राणाधिक अपनी प्रिय पत्नी से दूर भारत की निम्नभूमि में येन-केन प्रकारेण विरह के आठ माह व्यतीत करने के पश्चात् वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में ही उसके हृदय की कोमल भावनायें उसकी नेत्रों के समक्ष प्रिया को उपस्थित करती हैं। मेघदूत की रचना कोमलता, सरसता और सम्पूर्ण चित्त की उद्रेकता का प्रतिरूप है। कवि ने मेघ को दूत बनाकर इस बात को चरितार्थ करने का प्रयास किया कि दुःखी व्यक्ति के लिये कोई भी अब चेतन तत्त्व उसकी बेदना को शामित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। कालिदास ने स्वतः इसका समाधान करते हुए बताया कि कामार्त व्यक्ति चेतनाहीन हो जाता है। वर्षा की प्रथम रूपरेखा को देखकर उसका चित्त प्रिया मिलन के लिये व्याकुल हो उठता है। मेघ को अपना परम मित्र समझकर उससे अनुनय-विनय करता है कि वह उसके सन्देश को प्रिया से कह दे। कालिदास की कितनी अनूठी कल्पना है कि यक्ष यह कल्पना कर लेता है कि मेघ ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है। कवि ने भविष्यकालीन घटना को अतीत की तूलिका से रग कर पाठकों के समक्ष जब वर्तमान वातावरण में प्रस्तुत करता है तो अनुभूति होती है कि कालिदास प्रत्येक विरही की अन्तरचेतना को प्रस्फुटित कर देते हैं। कालिदास ने मेघ को दूत इसलिये बनाया कि वह अम्बुवाह है इसलिये वह यक्ष के सन्देश को भी वहन कर सकता है और अपने अम्बु से उसके प्रिया के जलते हुए हृदय को सींच सकती है। मेघ कालिदास के पक्ष में मार्ग का ज्ञान करता है। कालिदास ने अपनी प्रिया के समीप मेघ को पहुँचने के लिये मार्ग बताने

के माध्यम से जिस प्राकृतिक दृश्यो को उपस्थित किया है उसमे कालिदास का सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण प्रतिबिम्बित होता है। मेघ के गर्जन को कवि जब भ्रूविलास मे अनभिज्ञ ग्राम्य-युवतियो के नेत्रो से देखते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के नेत्रो मे नव-यौवना की सम्पूर्ण लालसाए झलक रही हो। मेघ के मार्गदर्शक कालिदास विदिशा की वेत्रयत्री के भू-भ्रगो से मनोहर मुख स्वयं मेघ के रूप मे चूम लेते है। नीचै नामक पहाडियो पर विलासिनियो की मुख मदिरा उनकी चेतना को अङ्कपास मे बाध लेती है। उज्जयिनी की सुन्दरियो की चंचल चिन्तवन जहाँ एक ओर मधु की वर्षा करती है वही दूसरी ओर निर्पन्ध्या की तरल तरङ्गो मे कवि का अनुरागी मन अठखेलिया करने लगता है तो वहाँ की कृतिमता प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मिलकर अद्वितीय सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत करती है। उज्जयिनी के उपवन तथा चमणवती सरिता का रूप पौराणिक कथा की प्रकृति के उच्छ्वासो मे सौंदर्य की सृष्टि करता है। कवि के मेघ से मिलने के लिये नदिया उसी प्रकार व्याकुल रहती है जैसे विरहणी अपने प्रिय से मिलने के लिये आतुर रहती है। मेघ अनुराग का प्रतीक है जिसके हृदयाकाश से झँकने से प्रकृति के कण-कण मे रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इस मेघ के अनुराग के अभाव मे कोमल प्रकृति के नेत्रो मे ज्वालामुखी छलकने लगता है।

कालिदास ने अलकापुरी का जैसा चित्र प्रस्तुत किया है उसमे उनकी कलात्मक प्रतिभा तथा विलासी मानसिकता प्रतिध्वनित होती है। मेघ को यक्ष प्रिया का गृह खोजने मे प्रयास नहीं करना पडेगा। उसकी प्रिया ऐसे भवन मे होगी जहाँ पर सम्पूर्ण रत्नो का आगार होगा। कुरवक, अशोक एव वकुल पादपो की रमणीयता होगी और जहाँ सारिका का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता होगा। उसकी प्रिया विरह की ज्वाला मे जल कर आकृतिमात्र के रूप

मे यक्ष की प्रतीक्षा कर रही होगी। कालिदास मेघ को सचेत करते हैं कि प्रिया सन्देश कथन में शीघ्रता मत करना। कालिदास सन्देश के महत्व को समझते हैं कि प्रिय का सन्देश कितना मादक कितना आह्लादक ओर जलते हुए हृदय पर अति शीतल चन्दन का लेप करने वाला होता है।

इस काव्य की कथावस्तु का निरीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि को इस काव्य के प्रणयन की प्रेरणा रामायण से प्राप्त हुई होगी। रामायण में सुग्रीव का वानरों का मार्ग बताना लङ्का का वर्णन, सायकाल की बेला में हनुमान का लङ्का का प्रवेश, अशोक वन में सीता वर्णन और दूसरे दिन प्रातः काल हनुमान का सीता से मिलना इत्यादि वर्णनों का प्रभाव कालिदास पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा होगा।

कवि ने पूर्व मेघ के सर्वातिशय गौरव को जिस रूप में प्रस्तुत किया है उसमें अचेतन मेघ साक्षत चेतन की तरह से सम्पूर्ण प्रकृति को तृप्त करता हुआ प्रतीत होता है। उत्तर मेघ के अलका के सुख विलास में जहाँ कालिदास ने लक्ष्मी के मधुमय विलास को चित्रित किया है वहाँ दूसरी ओर यक्षिणी के अलौकिक रूप को उसकी अन्तर्पीडा में स्थापित कर प्रणय की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त किया है। मेघदूत उनके वैयक्तिक जीवन का प्रतिविम्ब हो चाहे न हो किन्तु सहृदय अनुराग के कोमल तन्तुओं को अभिव्यक्त करके बहुत ही सरस ढंग से प्रस्तुत करता है। वैयक्तिक धरातल पर होने वाली विरहिणी व्यथा, विरहणी की वेदना, मेघदूत में अपनी सार्वभौमिकता को प्रस्तुत करती है। मेघदूत का एक २ शब्द जहाँ एक ओर सगीत की स्वर माधुरी को प्रस्तुत करता है वही दूसरी ओर अर्थ के जिस सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। उसमें अन्तः एव वाह्य प्रकृति की रागात्मक वासना का चित्र अपूर्व आनन्द प्रदान करता है। मेघदूत का यक्ष ही प्रिया के विरह में व्याकुल नहीं

है वरन् प्रकृति के एक-एक कण से लेकर पर्वत तक जल विन्दु से लेकर नदियों की तरङ्गों और समुद्र की लहरों जिस विरह वेदना को व्यक्त करती है वहाँ पाषाण भी द्रवित हो जाता है।

उत्तरमेघ के कालिदास ने प्रिया मिलन की जिस व्याकुलता का वर्णन किया है उसकी मात्र अनुभूति ही की जा सकती है। जब दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्ति होता है तो चित्र में भी प्रिया मिलन सम्भव नहीं हो पाता है। यक्षिणी भारतीय नारी की सांस्कृतिक मूल्यों को प्रस्तुत करती है उसका एक वेणीत्व, मलिन वसनत्व, सारिकाओं से पति के आगमन को पूँछना वीणा के तार का आँसुओं से भीग जाना भारतीय नारी की आत्मा की अभिव्यक्ति है। कवि का विरही मन प्रिया को आश्वासन देता है कि मैं शीघ्र ही तुमसे मिलूँगा। मेघदूत में प्रकृति का मानवीयकरण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया गया है। वस्तुतः मेघदूत कवि की रागात्मक प्रवृत्ति का सुन्दर रूप प्रस्तुत करता है। मेघदूत के माध्यम से अपने भौगोलिक ज्ञान की सूक्ष्मता को साहित्यिक शब्दों में मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है।

काव्य की शब्द रचना चमकते हुए हीरो की भोंति निर्दोष तथा उज्ज्वल है। अर्थरूपी रत्नों की उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यासादि सुन्दर-सुन्दर अलङ्कारों में जड़ देने में उनकी आभा और भी त्रिगुणित हो जाती है।

मेघदूत में सर्वत्र विप्रलम्भ शृङ्गार का ही चित्रण हुआ है। विशेषकर उत्तरमेघ में यक्ष, अपनी पत्नी की विरहवस्था का वर्णन जिन श्लोकों में करता है अत्यन्त ही करुणोत्पादक एवं मार्मिक है।

सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में प्रणीत है जो विरह की तीव्रता अनुभूतियों के चित्रण में पूर्णतया सक्षम है। हम कह सकते हैं कि यदि

कालिदास ने केवल मेघदूत की ही रचना की होती तो भी वे सर्वोत्कृष्ट महाकवि गिने जा सकते थे। उनकी मन्दाक्रान्ता के छन्द से प्रभावित होकर किसी कवि ने भावुक उद्गार व्यक्त किये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास के रघुवश कुमारसम्भव और मेघदूत—तीनों काव्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को काव्यात्मक भाषा में प्रस्तुत कर मानव को शिवत्व का सन्देश देते हैं। इन कवियों के काव्यों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन मानव को ऐहिक और पारलौकिक सभी सुखों को प्रदान कर सकता है।



১৯৩৩

रूढिशब्द का अर्थ

संस्कृत साहित्य में रूढि शब्द का प्रयोग भूयस प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के उपलब्ध संस्कृत हिन्दी कोश से रूढि शब्द के अर्थ की जानकारी प्राप्त होती है।

ना स्त्री १ परम्परा २ शब्द का सामान्य अर्थ ३ उगना ४ जन्म ५ वृद्धि या प्रवृद्धि ६ ऊपर चढ़ने की क्रिया, ७ बदनामी।^१

रूढि = स्त्री () रूह + क्तिन्

शब्द की शक्ति जो यौगिक न होने पर भी अर्थ स्पष्ट करता है।

१ जन्म २ उत्पत्ति, ३ वृद्धि ४ उभार ५ ख्याति ६ प्रसिद्ध ७ प्रथा चाल^२ डाँ हरदेवबाहरी ने रूढि शब्द का अर्थ रीति रस्म, रिवाज प्रथा दस्तूर दिया है।^३

इस प्रकार रूढि शब्द का अर्थ परम्परा से चली आई हुई कोई ऐसी चाल या प्रथा जिसे साधारणतः सब लोग मानते हो अथवा जिसका पालन लोक में होता है।^४ आचार्य विश्वनाथ, मम्मट ने रूढि शब्द का प्रयोग अभिधा शक्ति के प्रसङ्ग में किया जाता गया है। जो शक्ति वाचक शब्द के द्वारा वाच्यार्थ का बोध कराए उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। इसे आचार्यों ने शब्द की प्रथमा शक्ति कहा है। जिस शक्ति (अर्थबोधक व्यापार) के द्वारा साक्षात् सङ्केति अर्थ का बोध या ज्ञान हो, उसे अभिधा कहते हैं। इसके द्वारा शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है।

१ दिनमान संस्कृत हिन्दी कोश, आदित्येश्वर कौशिक दिनमान प्रकाशन दिल्ली

२ तारिणीश झा

३ डाँ हरदेव बाहरी— मानक हिन्दी पर्याय कोश विद्या प्रकाशन मन्दिर नई दिल्ली—२

४ रामचन्द्र वर्मा— मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

तत्र सकेतितार्थस्य बोधनादग्निमाभिधा ।। सा द २/४

स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते ।। काव्यप्रकाश २/८

अभिधशक्ति के द्वारा जिन वाचक शब्दों का बोध होता है वे तीन प्रकार के होते हैं। रूढि, यौगिक योगरूढि।

१ रूढि

जब शब्द समुदाय— रूप में अर्थ का बोध कराए तो रूढि होगी। रूढि शब्दों के टुकड़ों का पृथक—पृथक अर्थ नहीं होता जैसे पेड़ पौधा आदि। इसमें शब्द की अखण्ड शक्ति से ही एक अर्थ का ज्ञान होता है।

अखण्डशक्तिमात्रेणैकार्थप्रतिपादकत्वं रूढिः।

अप्पयदीक्षित वृत्तिवार्तिक पृ १

अजौ तर्यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अङ्ग।

नाक, बास वेसरि लह्यौ वसि मुकटन के सङ्ग।। विहारी

यहाँ तर्यौना, श्रुति, नाक तथा वेसर आदि शब्दों में रूढि है।

आचार्य विश्वनाथ ने लक्षणा शक्ति का प्रथम भेद रूढि लक्षणा को माना है, जब रूढि (प्रचलित परम्परा) के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर उससे सवद्ध (मुख्यार्थ) दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाय तो रूढि लक्षणा होगी। अभिप्राय यह है कि मुख्यार्थ में बाधा या व्यवधान होने पर जब रूढि के कारण उससे (मुख्यार्थ से) सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ गृहीत हो तो रूढिलक्षणा होती है जैसे कहा जाय कि कलिङ्ग साहसिक' या कलिङ्ग साहसी है। या पजाब लडाका है तो यहाँ कलिङ्ग तथा पजाब शब्द में लक्षणा (रूढि) होगी। कलिङ्ग और पजाब व्यक्ति न होकर स्थान या देश है। अतः, उनका साहसी या लडाका होना सम्भव नहीं है। यहाँ मुख्यार्थ में बाधा आ जाती है। यदि कलिङ्ग और पजाब से सम्बन्ध रखने वाला

कलिङ्ग—निवासी या पजाबी अर्थ किया जाय तो बाधा दूर हो जाती है। समाज में पजाबी को पजाब कलिङ्ग—निवासी को कलिङ्ग कहने का प्रचलन या रिवाज भी है। अतः दोनों उदाहरणों रूढिलक्षणा होगी।

क्वणद्विरेफावलिनीकङ्कण प्रसार्यशाखाभुजमाम् वल्लरी।

कृतोपगूढा कलकठकूजितैरनामय पृच्छति दक्षिणानिलम्॥

आम्रलता, क्षण—क्षण शब्द करते हुए द्विरेफो की पक्ति के नीचे कङ्कणवाली शाखारूपी बाहु को फैलाकर (वायु के द्वारा) आलिङ्गत किए जाने पर दक्षिण वायु की कोकिला की कुहू के द्वारा कुशल पूछ रही है।

यहाँ द्विरेफ शब्द में रूढि लक्षणा है जिसका अर्थ भ्रमर लिया जाता है।

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।

कप किसोरी दरस ते, खरे लजाने लाल॥ विहारी

यहाँ 'ब्रज' शब्द में रूढि लक्षणा है जिसका अर्थ 'वज्रवासी' किया गया है देखकर ब्रज बेहाल हो गया का अर्थ होगा कि 'ब्रज के निवासी बेहाल हो गए।

जैसे 'कुशल' शब्द को विवेचित करने पर पता चलता है कि प्राचीन काल में जो कुश को कुशलता पूर्वक ले आता था उसे 'कुशल' कहा जाता था लेकिन वर्तमान समय में किसी भी कार्य को सरलता से कर लेने पर 'कुशल' व्यक्ति की विशेषता से विभूषित होता है। यह 'रूढि' है। 'रूढि' के कारण ही कुशल शब्द का प्रयोग होने लगा।

जैसे गङ्गा स्नान करने की प्रक्रिया प्राचीनकाल से प्रचलित है, जिसका कारण 'गङ्गा जल' के पावनत्व के कारण है, आज भी गङ्गा स्नान की परम्परा प्रचलित है ऐसे रूढियों (परम्परा) के कारण ही प्रचलित है।

रघुवश

इस काव्य के प्रणयन में कालिदास वाल्मीकि के सबसे ऋणी है। काव्य के आरम्भ में ही पूर्वसूरिकृत ग्रन्थों का अनुशरण कर मैं रघुवश की रचना करता हूँ। ऐसा कवि ने सङ्केत किया है। नवे सर्ग से पन्द्रहवें सर्ग में कवि ने वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा ग्रहण की। पुराणों में भी रघुवशी राजाओं की नामावलि दी गयी है किन्तु उन नामावलि और रघुवश में चर्चित नामावलि में महानान्तर है। यथा दिलीप—रघु के बीच वाल्मीकि रामायण में दो 'वायु पुराण में उन्नीस एवं विष्णु पुराण में अठारह राजाओं के नाम दिये हैं।

विभिन्न आर्ष ग्रन्थों 'रामायण पुराणादि में वर्णित सूर्यवश से कथा सूत्र लेकर महाकवि ने अपनी अनन्य सामान्य रसमयी शैली में वस्तुतः इतिहास की ही अवतारणा की है। पूर्वसूरय में बहुवचन का प्रयोग वाल्मीकि व्यास च्यवन भास सौमित्र, कवि पुत्र तथा पुराण—प्रणेताओं का बोध कराता है।

महाकवि कालिदास ने सबसे अधिक श्रद्धा महर्षि वाल्मीकि के ही प्रति प्रकाश की है। उन्होंने वाल्मीकि को आदि कवि भी कहा है तथा उनके महाकाव्य की चर्चा की है। वे लिखते हैं कि—

जब वाल्मीकि—रचित रामायण को कुश तथा लव गाया करते थे तो सभा ध्यानावस्थित होकर उस कथा का श्रवण किया करती थी।

“तद्गीतश्रवणैकाग्रा ससद श्रुमुखी वभौ।

हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली॥ रघु १५/६६

वृत्त रामस्य वाल्मीके कृतिस्तो किनरस्वनौ।

कि तद्येन मनो हर्तुमल स्याता न शृष्यताम्। रघु १५/६४

महर्षि वाल्मीकि के प्रति प्रदर्शित इस आदरभाव के आधार पर यह कहा जाना असङ्गत न होगा कि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवश का कथानक वाल्मीकि-रामायण से ही लिया है इससे स्पष्ट है कि महाकवि रामायण कालीन रूढियों का पूर्णतः निर्वहन किया है।

“रघुवंश का महाकाव्यत्व”

रघुवंश की गणना महाकाव्य के अन्तर्गत की जाती है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ द्वारा महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है।

अर्थात् महाकाव्य सर्गों में बँधा होता है। उसमें एक नायक (प्रधानपात्र) होता है जिसका देवता अथवा सद्बशोत्पन्न क्षत्रिय होना आवश्यक है। अथवा एकवश में ही उत्पन्न अनेक कुलीन राजा भी नायक हो सकते हैं। शृङ्गार, वीर शान्त इन ही तीन रसों में से किसी एक को अङ्गी (प्रधान) रस के रूप में होना चाहिए। अन्य रसों का प्रयोग गौण अथवा सहायक रसों के रूप में किया जा सकता है। कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन उदारधर्मात्मा व्यक्ति का वीरतापूर्ण अथवा अनुकरणीय कार्य होना चाहिए। चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से किसी एक की प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिए। महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण से होना चाहिए। कहीं पर दुष्टों की निन्दा हो तो कहीं सज्जनों की कीर्ति अथवा उसका गुणगान। न्यूनातिन्यून आठ सर्गों का होना भी आवश्यक है जो न बहुत छोटे ही हो और न बहुत विस्तृत ही। प्रत्येक वस्तु सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द हो किन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी उचित है। कभी-कभी किसी सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग के विषय से सम्बन्धित स्वर्ण्य सकेत भी होना आवश्यक है। महाकाव्य में सायकालीन प्रकृतिवर्णन, सूर्योदय रात्रि सन्ध्या प्रातःकाल मध्याह्न आखेट पर्वत ऋतु वन सागर विरह तथा मिलन मुनि नगर यक्ष युद्ध आक्रमण विवाह तथा पुत्रोत्पत्ति आदि का यथोयोग्य साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना भी आवश्यक है। महाकाव्य का नामकरण भी कथानक के आधार पर अथवा प्रमुख नायक के नाम पर होना चाहिये तथा सर्ग का नाम सर्ग से सम्बन्धित कथा के आधार पर होना उचित है।

सर्गबन्धो महाकाव्य, तत्रैको नायक सुर ।
 सद्गुण क्षत्रियो वापि धीरोदान्तगुणान्वित ॥
 एकवशभवाभूपा कुलजा वहवोऽपि वा ।
 शृङ्गारवीरशान्ता नामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
 अङ्गानि सर्वेऽपि रस सर्वे नाटकसधय ।
 इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
 चत्वारस्तय वर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवेत् ।
 आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
 क्वचिन्नन्दा खलादीना सता च गुण कीर्तनम् ।
 एकवृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै ।
 नाति स्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
 नानावृत्तभय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते ॥
 सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत् ।
 सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासरा ॥
 प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवन सागरा ।
 सयोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ।
 रणप्रयाणौपथममन्त्र पुत्रोदयादय ।

वर्णनीया यथोयोग साङ्गोपाङ्गा अभी इह ।।

कवेवृतस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।

नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु ।। इत्यादि ।।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों में जिस बातों का होना आवश्यक बतलाया गया है वे सभी बातें रघुवश महाकाव्य में विद्यमान हैं। अतः रघुवश शास्त्रीय दृष्टि से रूढियों (परम्परा क) के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी में आता है।

कुमारसम्भव

इस काव्य का मूल कथानक है शिव और पार्वती का परिणय हिमालय की पार्वत्य सुषमा के वर्णन के साथ इस काव्य का समारम्भ होता है। वसन्त वैभव बनश्री रति, विलाप पार्वती तपस्या, शिव—पार्वती सम्वाद परिणय और रति क्रीडा आदि का वर्णन करते हुए कुमार की उत्पत्ति और सेनापतित्व के वर्णन के साथ तारकासुर के वध की कथा का वर्णन इस काव्य का कथानक सुगठित हुआ है।

कुमारसम्भव की कथा—वस्तु का मूलाधार शिव—पुराण की कथा है। शिवपुराण के आधार पर ही कालिदास ने इस काव्य की रचना की है। शिवपुराण में रुद्रसहिता के पार्वतीखण्ड और कुमारखण्ड के अध्याय कुमारसम्भव काव्य के उपजीवक हैं। कुमारसम्भव का प्रथम सर्ग (हिमालय वर्णन) कालिदास की कल्पना की सृष्टि है। शेष पार्वती खण्ड के अध्याय ६७, ८ तथा अध्याय १४ से लेकर अध्याय ५५ तक एवं कुमारखण्ड के अध्याय १२ तक के आधार पर लिखा गया है। शिवपुराण की कथा शिव और पार्वती के दार्शनिक सम्वाद को कालिदास ने नहीं लिया है। शिवपुराण और कुमारसम्भव में बहुत अधिक साम्य है। कहीं—कहीं तो श्लोक की पवित्रता तक समान है

कुमारसम्भव मे महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते हैं। यह काव्य ८ सर्गों से अधिक १७ वर्णों का है। इसका कथानक प्रसिद्ध शिवपुराण से गृहीत है। स्वामिकार्तिकेय के जन्म की कथा और उनके चरित्र का इसमें वर्णन है। अन्य उपर्युक्त विषयों का भी समावेश इस काव्य में यथास्थान हुआ है। शृङ्गार इस इस काव्य की अङ्गी रस है। शान्त, करुण वीर वीभत्स आदि रस अङ्गभूत हैं। ग्रन्थ के नायक कुमार कार्तिकेय के जन्म की घटना से सम्बद्ध 'कुमार सम्भव' इस काव्य का नाम है। इन सभी लक्षणों के युक्त होने के कारण इसे महाकाव्य कहना उपयुक्त ही है।

मेघदूत काव्य का मूल श्रोत

मेघदूत का मूल श्रोत वाल्मीकीय रामायण के अन्तर्गत सीता के प्रति हनुमान द्वारा भेजे गये राम के सन्देश में देखने का प्रयास किया है रामायण और मेघदूत के कुछ भेजे गये राम के सन्देश में देखने का प्रयास किया है रामायण और मेघदूत के कुछ अंशों में भाव एवं पदावली की समानता के आधार पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि कालिदास ने मेघदूत की रचना रामायण के अनुकरण पर की है। प्राचीन टीकाकारों में से दक्षिणावर्तनाथ^१ और मल्लिनाथ^२ ने भी रूढियों (परम्परा) के अनुसार मेघदूत का प्रेरणा-श्रोत रामायण को कहा है। मेघदूत में राम सीता सम्बन्धी उल्लेखों^३ से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत की रचना के समय कालिदास के मन में रामकथा का विचार अवश्य रहा होगा। कालिदास ने रघुवंश में अपने पूर्ववर्ती विद्वानों का ऋण स्वीकार किया है।^४ कवि की पूर्ववर्ती कवियों

१ इह खलु कवि सीता प्रति हनुमता हरित सन्देश हृदयेन
समुद्रहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन सन्देश करोति।

२ सीता प्रति हनुमत्सन्देश मनसि निधाय मेघ सन्देश कवि कृतवानित्याहुः।

३ जनक तनयास्नानपुष्पोदकेषु (पू. मे. १) रघुपति पदैरङ्कित मेखलासु
(पू. मे. / १२) इत्याखाते पवनतनय मैथिलीवोन्मुखी सा (उ. मे. / ४)

४ रघुवंश १,४)

के काव्य तथा अन्य पुराणशास्त्र आदि ग्रन्थों का अच्छा अभ्यास किया था यह उनके काव्यों के पर्यावलोकन से बिल्कुल स्पष्ट है इसीलिये कालिदास पर वाल्मीकि के प्रभाव से इकार नहीं किया जा सकता है।

बृहत्कथा में वर्णित यक्षों के शापो की कथाओं और महाभारत श्रीमद्भागवत तथा जातक कथाओं में आये हुए दूत प्रसङ्गों से भी कवि ने कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो यह सम्भावना की जा सकती है।

यक्ष को अलकाधीश्वर कुबेर ने जो शाप दिया है उसका आधार पद्मपुराण है। वहाँ के 'योगिनी' नामक आषाण-कृष्ण-एकादशी-महात्म्य प्रसङ्ग से जिस अश को लेकर महाकवि ने मेघदूत की उद्भावना की है वह निम्नलिखित है।

अलकाधिपतिर्नाम्ना कुबेर शिवपूजक ।

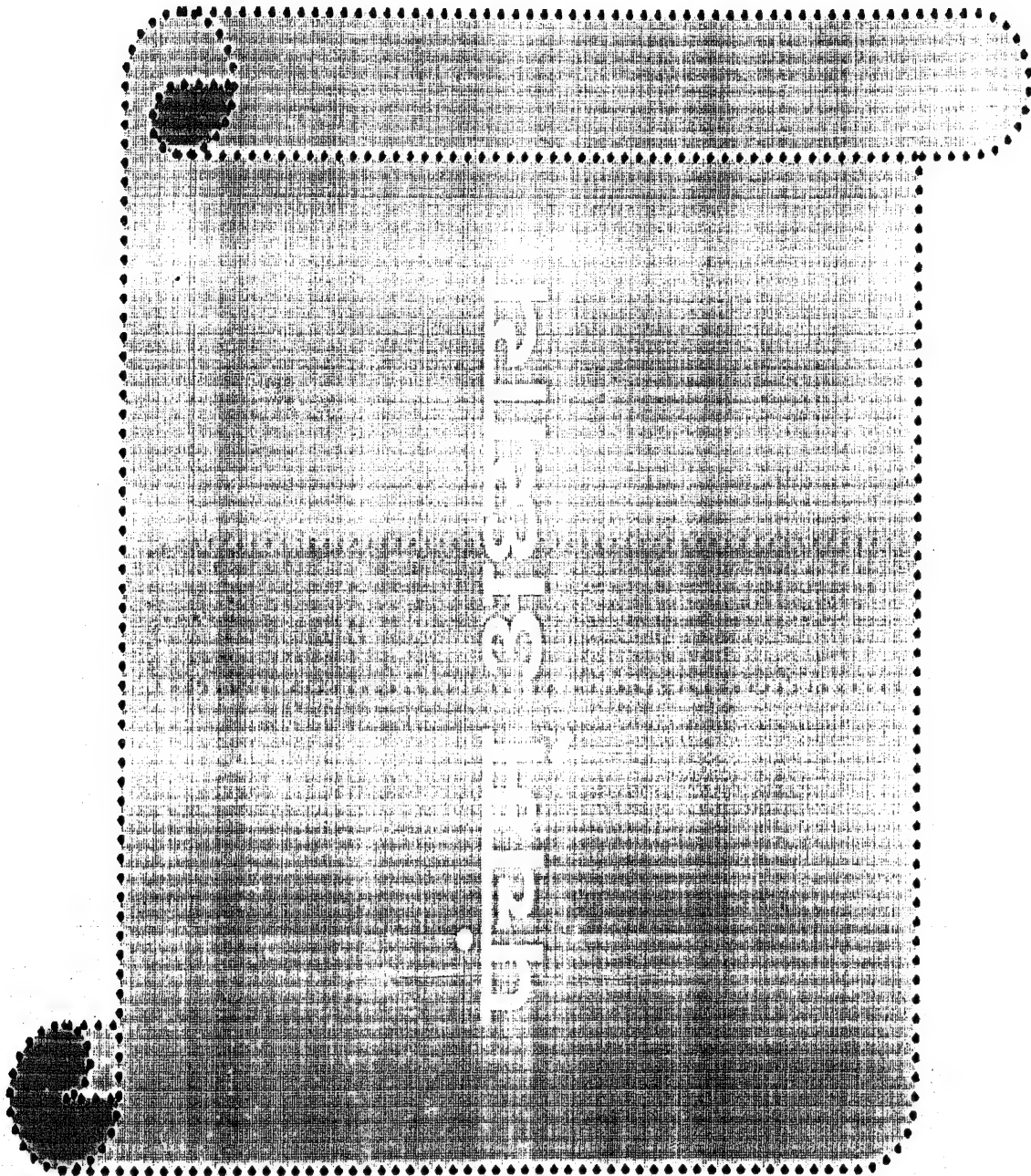
तस्यासीत्पुष्पवटुको हेममालीति नामत ।

श्रीमद्भागवत में शिशुपाल से अपने विवाह की बात निश्चित होने पर रुक्मिणी ने एक ब्राह्मण को दूत बनाकर भगवान श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजा है।

अस्तु मेघदूत का प्रेरणा-स्थल जो भी हो, किन्तु इतना निश्चित है कि काव्य का सर्वप्रथम प्रणयन महाकवि कालिदास ने ही किया है। बहुभाषावित वङ्गीय विद्वान हरिनाथ दे लिखा है कि कालिदास के पूर्व चीन के कवि स्यूकाङ् ने अपने काव्य में मेघ को दूत बनाया है। परन्तु स्यूकाङ् का समय ईसा पू द्वितीय शताब्दी है। इसलिए ई पू प्रथम शताब्दी में विद्यमान कालिदास दूतकाव्य के सर्वप्रथम स्रष्टा है, इसमें किसी प्रकार का मीन मेष नहीं है।

वाल्मीकि से प्रभावित कालिदास की भौति कालिदास ने प्रभावित अन्य कवियों ने दूत काव्य की रूढिया (परम्परा) स्थापित कर दी है। विक्रम कवि—कृत नेमिदूत धोयीकृत पवनदूत वेदान्तदेशिक कृत हससन्देश उददण्डकविकृत कोकिलसदेश पूर्णसरस्वतीकृत हस सन्देश विष्णुत्राताकृत कोकसदेश विनयप्रभकृत चन्द्रदूत माधवकवीन्दकृत उद्ववदूत वादिचन्द्र कृत पवनदूत आदि प्रमुख हैं।





लघुत्रयी की शैलीगत रुढ़ियों की व्याख्या

विश्व साहित्य में कालिदास ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की है नि सन्देह उसका श्रेय उनकी शैली को है। कैसा भी नीरस से नीरस कथानक क्यों न हो अपनी कल्पना शक्ति और सृष्टि निपुणता से उसको सजीव व आकर्षक बनाने की कला में वे निपुण हैं। उन्होंने अपनी कृतियों की कथावस्तु प्राचीन आख्यानों से रुढ़ियों (परम्परा) को लेकर उन्हें अपनी मनोरम कल्पना शक्ति द्वारा इस प्रकार सजाया है कि कथानक अत्यन्त रमणीय बन गये हैं।

महाकवि कालिदास के काव्य में प्रसादगुणोपेत वैदर्भी रीति के ही सर्वत्र दर्शन होते हैं। कालिदास इस शैली के श्रेष्ठ कलाकार माने गये हैं— 'वैदर्भी रीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ।।' वैदर्भी शैली की प्रमुख विशेषता है— प्रसाद गुण का होना। काव्य शास्त्रियों ने प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार किया है।

शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत् सहसैव य ।

व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थिति । का प्र ८

उनको इस प्रसाद गुण समन्वित शैली ने ही उनको विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में स्थान प्राप्त कराया है। इस गुण से युक्त वैदर्भी रीति का लक्षण आचार्यों द्वारा इस प्रकार किया गया है।

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचनललितात्मिका ।

अवृत्तिरल्पवृत्ति वैदर्भी— रीतिरिष्यते ।। सा द ६/२-३

मधुर शब्द, ललित पदविन्यास, समासों का पूर्णतया अभाव अथवा कम समासयुक्त पदों का होना ही वैदर्भी रीति की विशेषता है। आचार्य दण्डी

तो कालिदास की वैदर्भी युक्त रचना शैली से बहुत प्रभावित हुए। उनकी मान्यता है कि वैदर्भी रीति की उद्भावना कालिदास ने ही की है।

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिर ।

तेनेद वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम् ।।

माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णों के प्रयोग तथा दीर्घ समासों के अभाव उनका समस्त काव्य सुन्दर माधुर्य व्यञ्जक कोमल वर्णों के प्रयोग तथा दीर्घ समासों के अभाव उनका समस्त काव्य सुन्दर एवं सहज प्रेषणीय हो गया है। उनके काव्य में कठोर महाप्राण ध्वनियो कर्कश सयुक्ताक्षरो तथा लम्बे समासों का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है।

काव्य में शृङ्गार एवं करुण रस की प्रधानता होने के कारण कालिदास की रचनाओं में वसन्त ऋतु में हिमालय पर रति—क्रीडा करती हुई किन्नर—किन्नरियों के अनुभवों का कवि ने बड़े सरल शब्दों में कथन किया है।

यत्राशुकाक्षेपविलज्जिताना यदृच्छया किपुरुषाङ्गनानाम् ।

दरीगृहद्वार विलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ।। कु स १/१४

वसन्त का मादक प्रभाव सम्पूर्ण चराचर को अभिभूत कर देने वाला था और किन्नरों की तो यह दशा हो गई कि—

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशै किचित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् ।

पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुख किपुरुषश्चुचुम्बे ।। कु स ३/३८

तपस्या करती हुई पार्वती के इस वर्णन को भी ध्वनि काव्य की चमत्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

स्थिता क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता ।

वलीषु तस्या स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण प्रथमोदविन्दव ।।

कु स ५/२४

पार्वती के तपो परीक्षार्थ प्रस्तुत ब्रह्मचारी शङ्कर की परिहास की मधुरता बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है।

कियच्चिर श्राम्यसि गौरि । विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसंचित तप ।
तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षति वर तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ।

कुस ५/५०

तत्पश्चात् पार्वती की तपस्या से प्रसन्न शिव का मधुर सम्भाषण कितना यथार्थ है। नरोढा की श्रेष्ठता युक्त लज्जा एव उसके प्रियतम के नक्ष नखक्षत्रो को कितनी सुकुमारता के साथ कवि ने अङ्कित किया है।

व्याहृता प्रतिवचो न सदर्थं गन्तुमैच्छदवलम्बिताशुका ।
सेवते स्म शयन पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिन ॥

कुस ८/२

रघुवश मे कोमलकान्त पदावली का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है। कालिदास की वैदर्भी विभिन्न भावो एव रसो की व्यञ्जना करने में अत्यन्त निपुण है। वन में नन्दिनी की सेवा करते हुए राजा दिलीप का यशोगान देवताओं ने गद्गदकण्ठ से किया है।

स कीचकैर्मरुतपूर्णरन्ध्रै कूजदभिरापादितवशकृत्यम् ।

शुश्राव कुञ्जेषु यश स्वमुच्चैरुद्गीयमान वनदेवताभि ॥ रघु २/१२

विवाह के अवसर पर इन्दुमती के स्वाभाविक सौन्दर्य की बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

तदञ्जनक्लेदसमाकुलाक्ष प्रम्लानवीजाङ्कुरकर्णपूरम् ।

वधूमुख पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणादवभूव ॥ रघु ७/२७

नवम् सर्ग में वसन्त के शनै-शनै आगमन का चित्र रेखाङ्कित करता हुआ कवि कहता है—

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।

इति यथाक्रममाविरभून्मधुद्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥ रघु ६/२६

वसन्तोत्सव के समय कामिनियो मधुर कल्पनाए एव उनकी श्रृङ्गारिक अनुभावो का कथन बड़े ही सरल ढङ्ग से करता हुआ कवि कहता है ।

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सव पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ।

अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलता जलतामबलाजन ॥ रघु ६/४६

तेरहवे सर्ग में लङ्काविजय के पश्चात् विमान से लौटते हुए राम वियोग के क्षण उन स्थानों को जहाँ उन्होंने निवास किया था देखकर अत्यन्त भाव विभोर हो उठते हैं और सीता को दिखाते हुए कोमल शब्दों में कहते हैं ।

त्व रक्षसा भीरू । यतोऽपनीता त मार्गमेता कृपयालता मे ।

अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्य शाखाभिरावर्जितपल्लवाभि ॥ रघु १३/२४

असहाय राम के प्रति हारणियों की सहानुभूति कितने मार्मिक—सरल शब्दों में व्यक्त हुई है ।

मृग्यश्च दर्भाकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञ समबोधयन्माम् ।

व्यापारयन्त्यौ दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ॥

रघु १३/२५

चित्रकूट को देखकर राम पूर्वानुभूत मधुर बेला का स्मरण करते हुए मधुर शब्दों में कहते हैं ।

अय सुजातोऽनुगिर तमाल प्रवालमादाय सुर्गन्धि यस्य ।

यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतस परिकल्पितस्ते ॥ रघु १३/४६

मेघदूत तो वर्णों की स्निग्ध पद शैल्या ही है । मधुर कल्पनाओं, सुकोमल पदों का ऐसा मणि काचन संयोग केवल यक्ष के सन्देश कथन में

ही सम्भव हो सकता है। मेघ को अभिज्ञानार्थ अपने गृह का परिचय देता हुआ कहता है।

तस्यातीरे रचितशिखर पेशलैरिन्द्रनीलै क्रीडाशैल कनकदली—
वेष्टनप्रेक्षणीय । मन्द्रेहिन्या प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण प्रेक्ष्योपान्त
स्फुरिततडित त्वा तमेव स्मरासि ।। उ मे १७

पीडित यक्ष की विरहावस्था का चित्र रेखाङ्कित करते हुए कहता है—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी नीत्वा मासान्कनक
वलयभ्रशरिक्तप्रकोष्ठ ।। आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाशिलष्टसानु
वप्रक्रीडापरिणत— गजप्रेक्षणीय ददर्श ।। पू मे २

यक्ष अपनी समझदारी से मेघ को अपने घर में प्रवेश करने के लिये निर्देश देता है।

गत्वा सद्य कलभतनुता शीघ्रसपातहेतो
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्ण ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतिता कर्तुमल्लपाल्पभास
खद्योतालीविलसितनिभा विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ।। उ मे २१

विरह की करुण धारा के मध्य भी सयोग की मधुर स्मृति को चित्रित करता हुआ यक्ष कहता है।

वामाश्चास्या कररुहपदैर्मुच्चयमानो मदीयैर्मुक्ताजाल चिरपरिचित
त्याजितो दैवगत्या । सभोगान्ते मम समुचितो हस्तसवाहनानी यास्यत्यूरु
सरसकदली स्तम्भगौरश्चलत्वम् ।। उ मे ३६

करुण रस के वर्णन में भी कालिदास ने सुन्दर शब्द विन्यास के माध्यम से काव्य निपुणता का परिचय दिया। पत्नी की मृत्यु पर विलाप करते हुए अज ने मानव की समस्त वेदना एकत्रित कर ली है।

विललाप स वाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम् ।

अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु ।। रघु ८/४३

पत्नी की मृतदेह को देखकर आशान्वित स्वर से कहते हैं ।

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन भृङ्गरूचस्तवालकान् ।

करभेरु । करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशङ्कित मे मन ।। रघु ८/५३

सन्ध्या के समय उज्जयिनी में महाकाल की आरती का कितने
स्निग्ध शब्दों में व्यक्त करता है ।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर । महाकालमासाद्य काले

स्थातव्य ते नयनविषय यावदत्येति भानु ।

कुर्वन्सध्यावलिपटहता शूलिन श्लाघनीया

मामन्द्राणा फलमविकल लप्स्यसे गर्जितानाम् ।। पू मे ३७

इस प्रकार कालिदास के काव्य में भाषा का कोमल एवं सरस रूप
ही लक्षित होता है । कहीं भी दीर्घ समास एवं कर्कश ध्वनियों का प्रयोग नहीं
दिखाई पड़ता । यद्यपि वीर वीभत्स तथा रौद्र रसों में गौणी रीति तथा
वाञ्छनीय समझे जाते हैं । ऐसी रूढ़िया (परम्पराये) प्रचलित हैं कालिदास की
कृतियों में उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है ।

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में विघ्न होने से कुथित शिव जी का
चित्रण करते समय कवि प्रौढ़ शैली का प्रयोग करता है ।

स्फुरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष कुशानु किल निष्पपात । कुस ३/७१

रघुवश में रघुइन्द्र के अवसर पर गौणी शैली का अनुकरण किया गया है ।

हरे कुमारोऽपि कुमारविक्रम सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ ।

भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनाम चिन्ह निचखान सायकम् ।।

रघु ३/५५

रघुवश मे वीररस की ही प्रधानता है उसके लिए गौणी रीति ही उपयुक्त समझी जाती है। किन्तु वीर रस के इन स्थलो मे भी भाषा का सरस रूप ही समक्ष आता है।

क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य वछुश शम गत ।

सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ।। रघु ११/७१
मुद्रिका खो जाने पर कुश के क्रोध का कथन कितने सहज ढंग से हुआ है।

तत स कृत्वा धनुराततज्य धनुर्धर कोपविलोहिताक्ष ।

गारुत्मत तीरगतस्तरस्वी भुजङ्गनाशाय समाददेऽस्त्रम् ।। रघु १६/७७

आचार्यों तथा कवियों ने वैदर्भ मार्ग की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। राजशेखर ने वैदर्भी रीति को वाणी का मधु बताया है।^१ दण्डी ने कालिदास ने वैदर्भी मार्ग की प्रशंसा की है।

परिमलगुप्त की दृष्टि मे वैदर्भी मार्ग खड्ग की धार के समान तीक्ष्ण है जिस पर चलकर कालिदास आदि कवियों ने प्रशंसा प्राप्त की है। तिलकमजरी मे धर्मपाल ने सम्पूर्ण रीतियों मे वैदर्भी रीति की अत्यन्त प्रशंसा की है।^२

विक्रमाङ्कदेवचरित मे विल्हण ने कहा है वैदर्भी रीति अमृत की वर्षा करती हुई सरस्वती के विलासो की जन्मभूमि को अलङ्कृत करती है।^३ नैषधकाव्य के प्रणेता श्रीहर्ष ने वैदर्भी रीति का प्रशंसा की है। नायिका दमयन्ती भी वैदर्भी ही थी। वह वैदर्भी धन्य भी जिसने अपने उदार गुणो से नैषध (काव्य तथा काव्य का नायक नल) को आकृष्ट कर लिया था।^४

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनो से स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास रीति विवेचना मे रूढियों (परम्परा) का पूर्ण निर्वाह किया है।

१ कालरामायण, ३१४

२ वैदर्भीमिव रीतिनामधिकमुद्भासमानाम् नवसहसाङ्कचरित २१५ तिलकमजरी

३ विक्रमाङ्कदेवचरित। १/६

४ नैषधीयचरित ३/११६)

रस

‘रसौ वै स’ रस तो जीवन का प्राण है। काव्य के आत्मतत्त्व विषय पर मतभेद रखते हुए संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों ने रस (रसध्वनि) को ही काव्य का प्राण तत्त्व माना है। अलौकिक आनन्द को उत्पन्न करने वाले रसात्मक वाक्य को ही काव्य की सज्ञा दी गयी है। रस स्फुट पद्यो तथा समूचे प्रबन्ध में दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार महाकाव्य में एक प्रधान कथानक होता है तथा जितने उपनायक अथवा प्रासङ्गिक कथावस्तुएं होती हैं वे सब उसी प्रधान कथानक का पोषण करती हैं। ठीक उसी प्रकार प्रधान कथानक के मुख्य उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक महाकाव्य तथा गीतिकाव्य में एक प्रधान रस भी होता है। इस प्रधान रस को प्रबन्ध रस या ‘अङ्गी रस’ भी कहा जाता है। महाकाव्य में अङ्गी रस के अतिरिक्त अन्य सभी रसों की भी योजना हो सकती है किन्तु ये सभी रस ‘अङ्गी रस’ के अतिरिक्त अन्य सभी रसों की भी योजना हो सकती हैं किन्तु ये सभी रस अङ्गी रस के पोषक के रूप में प्रयुक्त होने चाहिए। काव्यशास्त्रीय रूढियों (परम्परा) के अनुसार शृङ्गार वीर शान्त इन तीन रसों में से किसी एक को महाकाव्य के अङ्गी रस के रूप में प्रयुक्त होने चाहिए अन्य सभी रस अङ्ग रूप में प्रयुक्त होने चाहिए।

शृङ्गार वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।

अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः ।। सा.द. ६/३१७

रघुवश महाकाव्य में प्रधान रस वीर तथा प्रधान रस के अतिरिक्त अङ्गी रसों का वर्णन शृङ्गार हास्य करुण रौद्र भयानक अद्भुत आदि रसों का प्रयोग देखने को मिलता है इस महाकाव्य में काव्यशास्त्रीय रूढियों (परम्परा) को अपनाया है। कुमारसम्भव में प्रधान रस शृङ्गार है तथा इसके अतिरिक्त हास्य, करुण भयानक, रौद्र आदि रसों का प्रयोग किया गया है। इस महाकाव्य में भी महाकवि ने रूढियों का निर्वहन किया है।

मेघदूत में विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन किया गया है। इस गीति काव्य में भी कवि ने रूढियों का प्रयोग किया है।

रस शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय वाङ्मय में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रमेण रस का अर्थ वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ। आदि में यह शब्द किसी वस्तु के सार के रूप में प्रयुक्त हुआ था और क्रमशः इस शब्द से भाव सुख और आनन्द का बोध होने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक जगत में जो ब्रह्मानन्द का वाचक था वही काव्यजगत में ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यतत्त्व का वाचक हो गया।

भिन्न—भिन्न काव्यशास्त्रियों ने रस की परिभाषा भिन्न—भिन्न प्रकार की है। भरत का प्रसिद्ध रससूत्र **विभावानुभावव्यभिचारिसयोगान्निरूपति** " इसकी परिभाषा के रूप में सर्वत्र उद्धृत किया जाता है। यद्यपि भरत के सूत्र रस की परिभाषा नहीं अपितु इसकी निष्पत्ति की प्रक्रिया की ओर सङ्केत मिलता है। किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्री रस की परिभाषा के रूप में इसी सूत्र को उद्धृत करते हैं अस्तु यह सूत्र रस सिद्धान्त का मूल बीज बन गया है अस्तु विभाव अनुभाव व्यभिचारी के संयोग से रस निष्पत्ति (अर्थात् उनसे सम्बद्ध स्थायी भाव की आनन्दमयी अनुभूति) होती है। इस शब्द में संयोग तथा निष्पत्ति दो शब्द महत्वपूर्ण हैं। और जिस किसी आचार्य ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से रस सिद्धान्त की आलोचना प्रत्यालोचना की है उसका समस्त विवेचन इन्हीं दो शब्दों के आधार पर है अधिकांश विद्वान् यही स्वीकारते हैं कि संयोग का अर्थ है— किसी स्थायी भाव के अनुकूल विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावों का सम्मिलन। भरत ने स्वयं निष्पत्ति शब्द की कोई व्याख्या नहीं की है। प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य लोल्लट श्री शङ्कु, भट्टनायक आदि ने 'निष्पत्ति' शब्द की अपने—अपने

ढग से व्याख्या किया। भट्टलोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति करते हैं। अर्थात् उसके मतानुसार अनुकर्ता नट में रस की उत्पत्ति होती है। श्रीशङ्कुक निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति करते हैं। अर्थात् दर्शक विभावादि द्वारा नट में रस का अनुमान करता है। भट्टनायक निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति करते हैं अर्थात् दर्शक विभावादि के संयोग से रस का भोग करता है।

व्यञ्जनावादी आनन्दवर्धन ने रस को व्यङ्ग्य माना तथा निष्पत्ति का अर्थ 'अभिव्यक्ति' माना है। ध्वनिकार ने अनुभाव को अभिनवगुप्त ने रस स्वरूप को व्यङ्ग्य मानते हुए उनके निष्पत्ति प्रकार की प्रत्यभिज्ञादर्शन के सहारे अनुपम एवं विशद व्याख्या की। कालान्तर में आचार्य मम्मट विश्वनाथ पण्डितराज जगन्नाथ आदि सभी आचार्यों ने निष्पत्ति की प्रायः वही परिभाषा स्वीकार की।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में रस की परिभाषा द्विविध हो सकती है। जो आचार्य रस को विषयगत या वस्तुगत मानते हैं— उनके अनुसार नाट्य सौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य ही रस है। उनकी अनुभूति सामाजिक या पाठक को हर्षादि अनुभूतियों के रूप में होती है। नाट्याचार्य भरत, अलङ्कारवादी भामह रीतिवादी वामन एवं दण्डी, वक्रोक्तिवादी कुन्तक के अनुसार रस का यही स्वरूप हो सकता है। इन सभी आचार्यों के अनुसार रस आस्वाद्य है। जो आचार्य रस को विषयगत भाव हैं वे रस को वस्तु में नहीं अपितु व्यक्ति को चेतना में स्थापित करते हुए नाट्य सौन्दर्य का काव्य सौन्दर्य जनित आनन्दानुभूति को ही रस की संज्ञा देते हैं। आनन्दवर्धन अभिनवगुप्त मम्मट विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने रस का यही स्वरूप मानते हैं। इस प्रकार आनन्दवर्धन से लेकर अद्यतन यही परिभाषा रस की विश्वजनीन सी हो गयी है। इनके अनुसार रस का स्थायीभाव का आनन्दमय आस्वाद रूप है।

रस के अंग

रस के प्रमुख तीन अंग हैं। विभाव अनुभाव व्यभिचारिभाव इन सब के सामान्य गुण योग से ही इस निष्पत्ति सम्भव बताई गयी है।^१

विभाव

लोक में प्रचलित हेतु कारण अथवा निमित्त शब्दों के लिये रसशास्त्र में पृथक् रूप से विभाव शब्द को ग्राह्य किया है। शास्त्र में वाचिक आङ्गिक एवं सात्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभावना ज्ञापन कराने हेतु कारण अथवा निमित्त को विभाव कहते हैं। विभावन का अर्थ केवल ज्ञापन नहीं अपितु उसका अर्थ आस्वाद योग्यता तक पहुँचाना भी है। अतएव हम कह सकते हैं कि विभाव वासना रूप में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित रति आदि स्थायी भावों को आस्वाद योग्य बनाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। आलम्बन तथा उद्दीपन। चित्तवृत्ति विषय के विषयभूत विभाव को आवलम्बन कहते हैं और उस निमित्त रूप सामग्री को जिससे जागरित भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है। उद्दीपन विभाव कहते हैं।^२ आलम्बन के पुनः दो भेद हैं, विषय तथा आश्रय। इत्यादि भावों के जागरित होने के कारण स्वरूप विभाव ही विषय कहलाते हैं जिस व्यक्ति में स्थायी भाव जागृति होते हैं वह उनका आश्रय होने के आश्रय कहलाता है।^३

अनुभाव

भाव जागृति के पश्चात् होने वाला और विकारों को अनुभाव कहते

१ नाट्यशास्त्र पृष्ठ ८०

२ यस्या चित्तवृत्ते यो विषय स तस्या आलम्बनम्।

निमित्तानि च उद्दीपकानि इति बोध्यम्। रसगङ्गाधर पृष्ठ ३३

३ आद्योऽपि द्वैधा विषयाश्रयभिदात् । सा कौ पृ २६

है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर अनु पश्चाद् भाव उत्पत्ति येषाम् अथवा अनु पश्चाद् भावो यस्य सोऽनुभाव स्थायी भावो के जागृति होने के पश्चात् इन्हे कार्य रूप ही मानना चाहिए।^१ आचार्य विश्वनाथ ने रसोद्बोध की दृष्टि से विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो तीनों को ही कारण माना है।^२ पण्डित राज जगन्नाथ ने भी रस की अनुभावना कराने वाले कारको को अनुभाव कहते हैं।

व्यभिचारीभाव

व्यभिचारी शब्द वि+अभि+चर्' धातु का योग दिखाई पड़ता है। अतएव वाक् अङ्ग तथा सत्त्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल सञ्चरण करने वाले भावो को व्यभिचारी अथवा सचारी भाव कहते हैं।^३ व्यभिचारीभाव स्थायीभाव के परिपोषक तथा उन्हें रसावस्था तक पहुँचाने वाले होते हैं। अस्थिरता उनका विशेष गुण है। स्थायी भाव के साथ इनका सम्बन्ध वारिधि १ के साथ कल्लोल का है। उनका आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है।^४ इसीलिए उन्हें अचिर अन तस्थित जनकवाला तथा सचारी भी कहते हैं। स्थायित्व के सहायक मात्र कहे जा सकते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने स्पष्टतः इन्हे स्थायीभाव का सहकारी कहा है।^५

स्थायीभाव

स्थायीभाव मानव मन की सूक्ष्म कृतियों से सम्बन्धित अथवा वासना रूप से प्रमाता के चित्त में सदैव रहने वाले भावो को कहते हैं।

१ उद्बुद्ध कारणै स्वै स्वैर्विभाव प्रकाशयन्।

लोके ११ काव्यरूप सोऽनुभाव काव्यनाटययो ॥ साद ३/१३२

२ कारण-कार्य सचारिरूपा अपि हि लोकत।

रसोद्बोधे विभावात्या कारणान्येव ते मता। साद ३/१४

३ नाट्यशास्त्र पृष्ठ ८४ चौखम्भा

४ विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचरिण। दशरूपक ४/६

५ काव्यप्रकाश ४/२६६

कारण के अनुपस्थित रहने पर भी स्थायीभाव की सत्ता रहती है। जबकि शेष भाग कारण के अभाव में निःशेष हो जाते हैं। काव्य में स्थायीभाव ही अनुकूल विभाव, अनुभाव व्यभिचारी भावों के संयोग से ही रस रूप प्राप्त करने में समर्थ होता है। स्थायीभाव अपने विरोधी अविरोधी किसी भी भाव से नहीं होते।^१ वे स्वयं दूसरे मतों को अपने में अन्तर्निहित कर लेते हैं। इसमें चिर स्थायित्वकाल आप्रबन्धस्थायित्व तथा अविच्छिन्न प्रवाहमयता होती है। स्थायीभाव चर्वणीय एवं आनन्ददायी होते हैं। स्थायीभाव की वासना रूपता के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम विचार किया जिसका अनुशरण परवर्ती आचार्यों ने किया। इनकी संख्या आठ मानी है।^२ कालान्तर में इनकी संख्या नौ दस तक पहुँच गयी। इनके नाम हैं। रति शोक हास उत्साह क्रोध, विस्मय जुगुप्सा भय तथा निर्वेद। निर्वेद यद्यपि एक व्यभिचारी भाव भी है किन्तु सात्विक निर्वेद (ज्ञातजन्य) शान्त रस का स्थायी भाव माना गया है।

रस के भेद

मानव के अन्त में जितने स्थायी भावों की कल्पना की जाती है उतने ही काव्य में रसों की गणना की गयी है। जैसा कि कहा गया है कि आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में 'आठ रस'^३ तथा आठ स्थायी^४ भावों की गणना की गयी है। महाकवि कालिदास भी विक्रमोर्वशीयम् में अष्ट रस^५ की ओर संकेत करते हैं। भरत द्वारा आठ रस तथा आठ स्थायी भाव के सिद्धान्त का समर्थन करने वाले काव्याचार्य यह कहते हैं कि भरत शान्त

१ दशरूपक ४/३४ सा द १७४ रसगङगाधर पृष्ठ २६

२ नाट्यशास्त्र/ ६/१५-१६

३ शृङ्गार— हास्य करुण । भरत नाट्यशास्त्र ६/१५-१६

४ रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्सा जुगुप्सा

विस्मयश्चेति स्थायीभावा प्रकीर्तिता । नाट्यशास्त्र ६/१७

५ मुनिना भरतेन या प्रयोगो भवतीष्टवण्टरसाश्रयो नियुक्त । कालिदास विक्रमो ११/१८

को रस के रूप में मान्यता नहीं देते और न शम अथवा निर्वेद को स्थायी भाव के रूप में मान्यता नहीं देते और न शम अथवा निर्वेद को स्थायी भाव के रूप में उल्लेख करते हैं। इस प्रकार भरत से लेकर आचार्य भामह तथा दण्डी तक (शान्त रस को छोड़कर) आठ रस का सिद्धान्त काव्यशास्त्र में मान्य रहा।

शान्तरस का सर्वाधिक विरोध करने वालों में नाट्याचार्य धनञ्जय तथा धनिक प्रमुख हैं।

रघुवश

रघुवश महाकवि कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस काव्य में महाकवि ने सूर्यवश में उत्पन्न महाराज रघु का तथा उनसे चलने वाले राजवश का काव्यात्मक वर्णन किया है। एक-एक वश के अनेक नायक महाकाव्य के नायकों के रूप में इसी काव्य में देखे जाते हैं। सम्भवतः इसी को देखकर अनेक नायक महाकाव्यों के नायकों के रूप में इसी काव्य में देखे जाते हैं। सम्भवतः इसी को देखकर बाद के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य का यह लक्षण दिया।

‘एकवश भवाभूपा कुलजा वहवोऽपि वा।’ साहित्यदर्पण ६/३१६

अनेक नायकों के चरित्रों से आपूर्ण होते हुए भी इस महाकाव्य का अर्थ से इति तक प्रधान रस वीर है, और उसी के विविध रूप चित्रित हुए हैं। कोई दानवीर है तो कोई युद्धवीर, कोई धर्मवीर है तो कोई दयावीर, और कोई दान और धर्म दोनों में वीर है। इस प्रकार प्रत्येक नायक अपूर्व साहस, निर्भीकता शौर्य एवं शक्तिमत्ता से युक्त है उनके चरित्र में दान धर्म, दया करुणा, अनुग्रह इत्यादि उदात्त गुणों का संग्रह दिखाई पड़ता है।

रघुवश के प्रथम उन्नायक महाराज दिलीप धर्मप्रवण नायक है। इस महाकाव्य में दिलीप का वर्णन केवल रघुवश के प्रवर्तक महाराज रघु के हेतुभूत नरेश के रूप में किया गया है। साथ ही उनके दिव्य गुणों की प्रशंसा की गयी है कि जिससे रघु के गुणों का महनीय स्रोत स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

इस प्रकार महाराज दिलीप के सत्त्वगुणों को रघु के दिव्य गुणों के बताने के लिये भूमिका रूप में हुआ है।

वशधर कोई पुत्र न होने से महाराज अत्यन्त दुखी रहा करते हैं अतएव पुत्र प्राप्ति के कुछ उपाय करने के लिए अपने प्रिय पत्नी साम्राज्ञी सुदक्षिणा सहित गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं और उनसे अपने आगमन का प्रयोजन बताते हैं।^१ मुनि वशिष्ठ अपने दिव्य चक्षु द्वारा सभी कारणों को ज्ञातकर, दिलीप को नन्दिनी की सेवा में तत्पर हो जाने का उपदेश देते हैं।^२ महाराज उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर बड़ी ही निष्ठापूर्वक मनसा वाचा, कमर्णा मुनि की होम धेनु नन्दिनी की सेवा में पत्नी सहित तत्पर हो जाते हैं।^३ पुत्र के लिये वह कठिन शारीरिक यातना को प्रसन्नतापूर्वक सहते हैं और गुरु की धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाली गौ के पीछे—पीछे उनकी परछाई के समान लगते रहते हैं।^४ किन्तु परम् अभीष्ट पुत्र प्राप्ति का लाभ होने से पूर्व ही उनकी एक ऐसी परीक्षा होती है जिससे महाराज दिलीप अतिमानव के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मायासिंह गौ को किसी भी तर्क पर छोड़ना स्वीकार नहीं करता है। तब उनका क्षत्रिय धर्म जाग्रत हो उठता है और वे पुत्र प्राप्ति के भी मूलभूत अपने

१ किन्तु बध्वा तवैतस्यामदृष्ट सदृशप्रजम्। न मामवति सद्दीपा रत्नसूरपि मेदनी॥ रघु १/६५

२ सुता तदीया सुरभे कृत्वा प्रतिनिधि शुचि।

आराधय सपत्नीक प्रीता कामदुधा हि सा॥ रघु १/८१

३ अथेप्सित भर्तुरुपस्थितोदय सखीजनोद्दीक्षण कौमुदीमुखम्।

निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्तते सुदक्षिणा दौर्हदलक्षण दधौ॥ ३/१

४ छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत्। २/६)

शरीर की गौ के बदले में अर्पित कर देते हैं।^१ धेनु की प्राण रक्षा के लिये अब उन्हें न वश मानना चाहिए न स्वर्ग न पितृलोक। धर्म की रक्षा के लिए महाराज अपने त्रिवर्ग को भी त्यागने के लिये तैयार हो जाते हैं।^२ राजा की एकनिष्ठ भक्ति भावना को देखकर नन्दिनी अति प्रसन्न हो उन्हें पुत्र लाभ का अमोघ वरदान देती है।^३

इस प्रकार यहाँ आश्रय दिलीप एवं आलम्बन सिंह हैं उसके द्वारा गौ की अपनी हिंसा का शिकार बनना उद्दीपन विभाव है। सिंह का वध करने के लिये राजा द्वारा वाण चलाने के लिये तत्पर होना गौ छोड़ने के लिये करुण याचना करना तथा देह त्याग करना इत्यादि अनुभाव है तथा दैन्य मोह जडता, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

इस प्रकार नन्दिनी के रस प्रसङ्ग में दिलीप के धर्मवीर का उच्चतम रूप व्यञ्जित होता है। वे ऐसे अनुपम वीर हैं जिन्होंने लोक में वीर शब्द को स्वयं बाहुवल से प्राप्त किया है। दिलीप के दयावीर की भी सुन्दर व्यञ्जना की गयी है। कवि ने उनके दयाभाव का आलम्बन दबोची गयी कातर आखे बतायी हैं जिसे देखकर करुणावरुणालय उमड़ पड़ता है।^४ दिलीप के पश्चात् ऐसा वीर महापुरुष अब इक्ष्वाकु वंश के सिंहासन का स्वामी बनता है, जो अपने नैसर्गिक गुणों से वंश का कर्ता कहलाता है क्योंकि महाराज दिलीप ने नन्दिनी से अनन्त कीर्ति से सम्पन्न वंश का कर्ता ही, पुत्र रूप में मागा था।^५ रघु के वीरोचित गुणों के कारण इक्ष्वाकु वंश अब रघुवंश के नाम से चल पड़ता है।

१ तथेति गामुक्तवते दिलीप सद्य प्रतिष्ठम्भविमुक्तवाहु।

सन्त्यस्त हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डभिवामिषस्य॥ २/५६

२ सन्त्यस्त । रघु २/२६

३ किमप्यहिस्यस्तव चेन्मतोऽहं यश शरीरे भव मे दयालु॥

एकान्तविध्वंसिषु मद्भिधाना पिण्डध्वनास्था खलु भौतिकेषु॥ २/५६

४ धेन्वा तदध्यासित कातराक्ष्या निरीक्ष्यमाण सुतरा दयालु। २/५२

५ वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं सुदक्षिणाया तनय यायाचे। रघु २/६४

यौवन का प्रारम्भ होने के पूर्व ही कवि ने रघु के वीर चरित की व्यञ्जना हेतु इनको परास्त करने वाला युद्धवीर का स्वरूप समक्ष उपस्थित किया है। इन्द्र द्वारा अपने पूज्य पिताजी के अश्वमेध यज्ञ का अश्व अपहरण कर लिये जाने पर कुमार रघु क्रोधारक्त हो उठते हैं तथा उच्च गम्भीर स्वर से इन्द्र को ललकारते हुए कहते हैं।^१ हे देवेन्द्र । विद्वानो का कथन है कि यज्ञ का भाग सर्वप्रथम आपको ही मिलता है और मेरे पिता जी आप के लिये ही यज्ञ कर रहे हैं फिर भी आप उनकी यज्ञ क्रिया में विघात क्यों डाल रहे हैं ?^२ हे त्रैलोक्य स्वामी । यज्ञ कार्यों में विघ्नकर्ता को दण्डित करना ही आपको शोभा देता है किन्तु यज्ञ में आप ही बाधा डालेंगे तो ससार से धर्म ही विलुप्त हो जायेगा।^३ इसलिए हे इन्द्रदेव आप मेरे पिता के यज्ञ का अश्व छोड़ दीजिये क्योंकि वेद का मार्ग दिखाने वाले महात्माओं को ऐसा कलङ्कित कार्य करना शोभा नहीं देता। रघु के इन गर्वपूर्ण वचनों को सुनकर इन्द्र आश्चर्य चकित रह जाते हैं और रथ घुमाकर कहते हैं— हे । राजकुमार । तुम्हारा सत्य है किन्तु यशस्वियों का शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करना परमकर्तव्य है । मैंने सौ यज्ञ करने का जो विश्व प्रसिद्ध यश अर्जित किया है उसे तुम्हारे पिता तिरस्कृत करना चाहते हैं। हम देवगण जिन नामों से विश्वविख्यात हैं, उस सज्ञा को कोई अन्य धारण नहीं कर सकता।^४ इसलिए हे कुमार । तुम इस अश्व को छुड़ाने का प्रयत्न मत करो । अन्यथा कपिल मुनि के क्रोध से सगर के साठ सहस्र पुत्रों के समान तुम भी मेरी क्रोधाग्नि से जल कर भस्म हो जाओगे।

१ अवोचदन गगनस्पृशा रघु स्वरेण धीरेण निवर्तयन्निव । रघु ३/४३

२ मरवाशभाजा प्रथमो मनीषिभिस्त्वमेव देवेन्द्र । सदा निगद्यसे ।

अजसदीक्षाप्रयतस्य मदगुरो क्रिया विधाताय कथं प्रवतसे । रघु ३/४४

३ त्रिलोकनाथेन सदा मखद्विषस्त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा ।

स चेत्स्वयं कर्मसु धर्मचारिणा त्वमन्तरायो भवसिच्युतो विधिः ।। रघु ३/४५

४ हरिमथैक पुरुषोत्तम स्मृतो महेश्वरस्त्रयम्बक एव नापर ।

तथा विदुषा मुनयः शतक्रतु द्वितीयगामी नहि शब्द एष न ।। रघु ३/४६

उद्दीपन विभाव रूप इन्द्र के इन वचनों को सुनकर रघु उत्साहित हो उठते हैं और निर्भय हास्य सहित इन्द्र से कहते हैं— 'यदि आप का यह दृश्य निश्चय है तो उठाइये शस्त्र और युद्ध कीजिए^१ रघु को परास्त किये बिना आप अश्व नहीं ले जा सकते। इस प्रकार रघु बड़ी तत्परता से अपने अचूक वाण से इन्द्र के वक्षस्थल पर प्रहार करते हैं और फिर मयूर पङ्ख वाले दूसरे वाण से उनकी ध्वजा को काट देते हैं। ध्वजा भेदन हो जाने के पश्चात् इन्द्र ऐसे क्रोधित हो उठते हैं मानो किसी ने उनकी राजलक्ष्मी का ही शिरच्छेदन कर दिया हो। इस प्रकार अप्रतिहत योद्धा रघु और इन्द्र का घमासान युद्ध होता है, जिसे देखकर देवगण भी विस्मयान्वित हो उठते हैं।^२ इसी बीच बड़ी निपुणता पूर्वक इन्द्र की डोरी काट डालते हैं। धनुष की डोरी कट जाने पर इन्द्र क्रोध से तमतमा उठते हैं और वह अग्नि के समान दैदीप्यमान वज्र से रघु पर प्रहार करते हैं। वज्र के आघात से रघु पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं किन्तु क्षण भर में ही पुनः इन्द्र से युद्ध करने के लिये आ डटते हैं। कुमार की इस अद्वितीय वीरता को देखकर इन्द्र अति प्रसन्न होते हैं और कहते हैं^३ मेरे कठोर वज्र से असह्य चोट को सहने वाले हे राजकुमार । मैं तुम्हारी वीरता से अति प्रसन्न हूँ। इसलिए अश्व के अतिरिक्त तुम्हारा जो भी इच्छित हो मुझसे माग लो।^४

यहाँ आश्रय रघु आलम्बन इन्द्र है। इन्द्र द्वारा अश्व हरण करना उद्दीपन विभाव। रघु द्वारा वाण सञ्चालन, भुजाच्छेदन ध्वजाच्छेदन धनुषभेदन तथा इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारना इत्यादि अनुभाव है।

१ तत प्रहस्यापभय पुरन्दर पुनर्वभाषे तुरगस्य रक्षिता ।

गृहाण शस्त्र यदि सर्ग एष ते खल्वनिर्जित्य रघु कृती भवान् ॥ रघु ३/५१

२ जहार चान्येन मयूरपत्रिण शरेण शक्रस्य महाशनिध्वजम् ।

चुकोप तस्मै स भृश सुरश्रिय प्रसह्य केशव्यपरोपणादिव ॥ रघु ३/५६

३ तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पद हि सर्वत्रगुणैर्निधीयते । रघु ३/६२

४ अवैहि मा प्रीतिमृते तुरङ्गमत्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासव ॥ रघु ३/६३

अमर्ष मद चपलता इत्यादि व्यभिचारी भाव है। इसी प्रकार धर्मवीर^१ दानवीर^२ तथा दानवीर^३ की अभिव्यक्ति सुन्दर वाक्यों में की गयी है।

रघुवश के अनेक सर्ग शृङ्गार रस से आप्लावित हैं। महाकवि तथा विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार के वर्णन में सिद्ध हस्त है।

सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाक शालीनतया न वक्तुम्॥

रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टि भित्त्वा निराक्रामदरालकेश्या ॥

रघु ६/८१

प्रस्तुत श्लोक में इन्दुमती के अनुभावों का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। शालीनता के कारण इन्दुमती अपने प्रेम की वार्ता को वाणी न दे सकी किन्तु रोमाञ्च ने सम्पूर्ण हृदय के भावों को अभिव्यक्त कर दिया। यहाँ इन्दुमती आश्रय है तथा अज आलम्बन।

रोमाञ्चित होना तथा लज्जित होना अनुभाव है हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। इन सभी भावों से शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। रघुवश का उन्नीसवा सर्ग शृङ्गार रस से परिपूर्ण है। रघुवश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण शृङ्गार के समुद्र में मज्जित रहने के कारण अपने वश सहित स्वयं को नष्ट करके विश्व को यह शिक्षा देता है कि असंयमित काम का भोग आयु एवं यश का यमराज है।

विप्रलम्भ शृङ्गार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मनोज्ञ वर्णन राम परित्यक्ता सीता की भाव विह्वलता में प्राप्त होता है। दुःखातिभार के कारण सज्ञा शून्य सीता को दुःख का भार इतनी दुःखदायी न हुआ, जितना होश में आने पर प्रबोध।

१ गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृप । श्रिय महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम्॥ रघु ४/४३

२ तमध्वरे विश्वजिति क्षितीश नि शेषाविश्राणितकोशजातम् ।

उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणाऽर्थौ कौत्स प्रपेदे वरतन्तुशिष्य ॥ रघु ५/१

३ स त्व मदीयेन शरीरवृत्ति देहेन निवर्त्तयितुं प्रसीद ।

दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यता धेनुरिम महर्षे ॥ रघु २/४५

सा लुप्तसज्ञा न विवेद दुःख प्रत्यागतासु समतप्यतान्त ।
तस्या सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतर प्रबोध ॥

रघु १४१/५६

महाकवि कालिदास का करुणरस अत्यन्त हृदय द्रावक है। इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात अज की करुणा किसको करुणा के समुद्र में मज्जित नहीं कर देती है।

गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद किं न मे हृतम् ॥
मदिराक्षि मदाननार्पित मधु पीत्वा रसवत्कथं नु मे ।
अनुपास्यसि वाष्पदूषित परलोकोपनत जलाञ्जलिम् ॥

रघु ८/६७-६८

इस सर्ग में कवि ने अज के नेत्रों से इतनी करुणा की धारा बहवायी है कि समस्त वनस्थली के रोम-रोम से करुणा की धारा बहने लगी वृक्षों ने अपनी अश्रुधारा में अचेतन को भी आवर्जित कर दिया। यद्यपि हास्यरस रघुवश का विषय नहीं है तथापि कवि ने कहीं-कहीं इसकी भी अभिव्यक्ति करायी है।

तथागताया परिहासपूर्वं सख्या सखी वेत्रभृदाबभाषे ।

आर्ये ब्रजामोऽन्यत इत्यथैना वधूरसूयाकुटिल ददर्श ॥ रघु ६/८२

सखियों के हास परिहासात्मक अनुभावों से हास्य रस की अभिव्यक्ति हो रही है। रघुवश महाकाव्य में रौद्र रस की स्थान-स्थान पर सुन्दर अभिव्यञ्जना मिलती है। ताडकावध परशुराम और राम-सवाद तथा पचवटी में शूपर्णखा की उपस्थिति के समय रौद्र रस का मूर्तिमान रूप दिखाई पड़ता है। एक उदाहरण देखिये।

क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि ।

पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलीत सागरेऽपि य ।

रघु ११/७५

प्रस्तुत वाक्य से परशुराम का क्रोध अभिव्यक्त हो रहा है इस प्रकार कवि के वाक्यों से वीभत्स^१ भयानक^२ अद्भुत^३ तथा शान्तरसो^४ की अभिव्यक्ति हुई है। यह कवि की कुशलता है कि अपने वाक्यों से किस प्रकार पाठक को रसमयता की पराकाष्ठा को प्राप्त करा सके।

इस प्रकार रघुवश वीररस प्रधान महाकाव्य है। इस महाकाव्य में रूढियों का प्रयोग महाकवि ने किया है कि रघुवशी राजा वर्णश्रम नियमों के पालन में सदैव जागरूक रहते थे। उनके राज्य में सभी आश्वस्त थे। परित्याग के बाद सीता को यह विश्वास है कि मनु के द्वारा बताये गये नियमों का पालन करना राम का धर्म है। मनु ने कहा है राजाओं का धर्म वर्णों तथा आश्रमों की रक्षा करना है। इसलिए घर से निकाल देने पर भी आप यह समझकर मेरी देखभाल करना कि सीता भी एक साधारण तपस्विनी है” राम की प्राणवल्लभा की यह मनस्थिति कि अब वह प्रियतम राम के साथ राजा प्रजा के सामान्य सम्बन्धों पर निर्भर हो रही है।^५

कुमारसम्भव

‘कुमारसम्भव कालिदास का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। इस

- १ उपान्तयोर्निष्कुषित विहङ्गैराक्षिप्य तेभ्य पिशितप्रियापि ।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार ॥ रघु ७/५०
- २ स छिन्नबन्धद्रुतयुग्यशून्य भग्नाक्षपर्यस्तरथ क्षणेन ।
रामापरित्राणविहस्तयोध सेनानिवेश तुमुल चकार ॥ रघु ५/४६
- ३ वामेतरस्तस्य कर प्रहत्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सत्ताडगुलि सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे । रघु २/३१
- ४ वनान्तरादुपावृत्तै समित्कुशफलाहरै ।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्यूह्य— तैस्तपस्विभि ॥ रघु १/४६
- ५ रघु १४/६७

महाकाव्य में कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का मुख्य कथनक शङ्कर-पार्वती के प्रेमाख्यान तथा विवाह के माध्यम से विकसित हुआ है। काव्य के प्रारम्भ से ही कवि का मुख्य उद्देश्य शिव पार्वती का संयोग कराना रहा है इसलिए सम्पूर्ण काव्य कलेवर में शृङ्गार रस की धारा प्रवाहित हुई है। यह शृङ्गार पूर्वराग से प्रारम्भ होकर प्रेम की समस्त अवस्थाओं को पार करता हुआ अन्त में (शङ्कर पार्वती के) संयोग (विवाह) में पर्यवसित हो जाता है। इसलिए प्राप्त अश कुमारसम्भव में प्रधान रस या अङ्गीरस शृङ्गार को ही स्वीकार करना चाहिए।

साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने शृङ्गार रस को श्रेष्ठ तथा अधिक व्यापक स्वरूप में स्वीकार किया है।^१ आनन्दवर्धन ने भी उसे मधुर रस माना है (शृङ्गार एव मधुर पर प्रह्लादनोरस) शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है— सभोग^२ तथा विप्रलम्भ^३ किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में इसका स्थायीभाव रति ही है, जो विभावानुभाव तथा व्यभिचारी भाव से पुष्ट होकर शृङ्गार-रस रूप में प्रतिफलित होती है। नायक-नायिका इसके आश्रय एव आलम्बन होते हैं। उनके परस्पर दर्शन कटाक्ष प्रस्वेद रोमाञ्च अश्रु भ्रूविक्षेपादि आङ्गिक व्यापार अनुभाव कहे जाते हैं इसमें तैत्तिरीय व्यभिचारी भाव होते हैं। कुमारसम्भव में नायक शङ्कर एव नायिका पार्वती हैं। काव्य में एक बात अवश्य है कि प्रारम्भ के पंचम सर्ग तक पार्वती आश्रय है तथा शिव अवलम्बन क्योंकि यहाँ तक के कथानक में शिव को प्राप्त करने के लिये पार्वती की ओर से प्रयत्न होता है, किन्तु पंचम सर्ग के

-
- १ यत्किञ्चित्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तृच्युगोरणोपमीयते। नाट्यशास्त्र ६/४५
सर्वरसेभ्यः शृङ्गारस्य प्राधान्यं अनुसरति रसस्यामस्य नान्यं सकलभिदमनेन व्याप्तमावालवृद्धम्
तदिति विरचनीयं सम्यगेव प्रयत्नादूभवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम्॥ शृप्र
- २ दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवते विलासिनी।
यत्रानुरक्तावन्योय सम्भोगोऽयमुदाहृतः॥ सा द ३/२६० पृष्ठ १४८
- ३ यत्र तु रतिः प्रकृष्टानामीष्टमुपेति विप्रलम्भोऽसौ। सा द ३१/८७ पृष्ठ २३३

उपरान्त (पार्वती तपस्या सिद्धि के पश्चात्) आश्रय शिव हो जाते हैं तथा आलम्बन पार्वती क्योंकि अब शिव को पार्वती प्राप्ति के लिये त्वरा होती है। इस प्रकार उभयनिष्ठ होकर रति पूर्व शृङ्गार योग्य बनती है।

शृङ्गार प्रधान होने के कारण कुमारसम्भव प्रेम प्रधान काव्य है। संस्कृत साहित्य के प्रेमाख्यान प्रधान काव्यों का अनुशीलन करने के बाद उसमें मुख्यतः चार प्रकार के प्रेम का स्वरूप समक्ष आता है।

प्रथम प्रकार के प्रेम की झोंकी हमें राम सीता के जीवन में लक्षित होती है। यह प्रेम विवाहोपरान्त स्वाभाविक रूप से प्रारम्भ होता है तथा जीवन की विकट परिस्थितियों में अधिक निखर उठता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम गान्धर्व विवाहों के प्रसङ्गों में देखा जाता है। नायिका तथा नायक का अकस्मात् मिलन होता है और उसमें परस्पर अनुराग हो जाता है फिर प्राप्ति के लिये व्याकुलता होती है। इस प्रकार की प्रेम कथा विवाह तक चलती है और विवाहोपरान्त उसका प्रसङ्ग हो जाता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम रत्नावली—प्रियदर्शिका इत्यादि नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः प्रेम नहीं वरन् के राजाओं के अन्तर्पुर में भोग विलास का चित्रण मात्र है। इसमें प्रयत्न कहीं नहीं केवल फल योग है। उदयन सम्बन्धी प्रेमाख्यान में प्रायः इसी प्रकार का प्रेम मिलता है और चौथे प्रकार का प्रेम वह है जो चित्रदर्शन स्वप्नदर्शनादि से उत्पन्न होता है और फिर प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न होता है तदन्तर विवाह चित्रण के साथ समाप्त हो जाता है, जैसा ऊषा अनिरुद्ध का प्रेम, नल दमयन्ती का प्रेम।

कुमारसम्भव में वर्णित प्रेम चौथे प्रकार का है इस काव्य के प्रथम सर्ग में विभावरूप पार्वती के सौन्दर्य का चित्रण, शृङ्गार रस का उत्कृष्ट पोषक है। क्योंकि कवि ने प्रायः उन्हीं अङ्गों का वर्णन किया है जो यौवन

के आने पर अडगना मे विशेष आकर्षक हो उठते है जैसे मुख स्मित कटि जडघा गति इत्यादि ।

कुमारसम्भव का सप्तम् का उत्तरार्द्ध और अष्टम् सर्ग तो श्रृङ्गार रस का मानस सरोवर है जहाँ सहृदय हस ही विहार कर सकते है । शिव पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अभिभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है । यदि भागीरथी के लिये समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिये भागीरथी । यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी ।

त यथात्मसदृश वर वधूरन्वरज्यत वरस्तथैव ताम् ।

सागरादनपगा हि जान्हवी सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्ति भाक ।।

कु स ८/१६

सभोग श्रृङ्गार के एक सुन्दर प्रसङ्ग मे कवि ने पार्वती के अधर क्षत की औषधि शिव शिर स्थित चन्द्रकला बताया है ।

दष्टमुक्तमधरोष्ठभम्बिका वेदनाविधुतहस्त पल्लवा ।

शीतलेन निरवापयत् क्षण मौलिचन्द्रशकलेन शूलिन ।। कु स ८/१८

एक अन्य उदाहरण—

विलष्टकेशमबलुप्तचन्दन व्यत्ययार्पितनख समत्सरम् ।

तस्य तच्छिदुरमेखला गुण पार्वतीरतम भून्न तृप्तये ।। कु स ८/८३

चन्दन का लुप्त होना, नख-क्षत की प्रतीति करधनी का टूटना कुन्तलो का शिथिल होना आदि अनुभावो के द्वारा सभोग श्रृङ्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है । यहाँ शिव की चेष्टाए अनुभाव रूप है तथा पार्वती की चेष्टाये उद्दीपन रूप सम्भ्रम चपलता, ब्रीडा, व्यभिचारीभाव है ।

धीरे—धीरे पार्वती का मुग्धात्व मिटने लगता है और अब ईषत् प्रगल्भा मध्या नायिका^१ का स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अब उनकी सारी सकोच और झिझक समाप्त होने लगती है। इस प्रकार उनकी गति विधियों से यह पता चलने लगता है कि वे आपस में घुलमिल गये हैं तथा उनका प्रेम अब 'गूढमितरेतराश्रयम्' हो जाता है।^२

शृङ्गार के इन स्थलों पर अनभावो व्यभिचारियों की ही छटा सर्वत्र व्यञ्जित होती है। बीच—बीच में प्रकृति का रम्य चित्रण नायक नायिका के प्रेम में अधिक तीव्रता लाने के लिए उद्दीपन विभाव रूप में किया गया है।^३ इस सर्ग के सभी श्लोक शृङ्गारिक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'वात्स्यायन कामसूत्र' का गहन अध्ययन किया था। सर्गान्त में पार्वती का वह रूप समक्ष आता है जो उसे स्मरान्धा प्रगल्भा की कोटि में रख छोड़ता है और इधर शङ्कर भी दक्षिण नायक के समान उन्हें सब प्रकार से प्रसन्न करते रहते हैं।

यही वह स्थल है जिसके कारण साहित्य के आचार्यों ने कवि द्वारा वर्णित शङ्कर पार्वती के अनौचित्य प्रवाह पर अङ्गुली उठाई है।^४

चुम्बनेष्वधरदानवर्जित सन्नहस्तसदयोपगूहनम्।

विलष्टमन्मथमपि प्रिय प्रभोर्दुलभ प्रतिकृत वधूरतम्॥ कुस ८/८

शिव जब पार्वती का अधर चुम्बन करना चाहते थे तब पार्वती ओष्ठ दान नहीं करती थी जब शिव गाढालिङ्गन करना चाहते थे तब पार्वती अपने हाथों को उठाती भी नहीं थी फिर भी शिव ने वधू के साथ रति क्रीडा की।

१ यौवनाधा स्मरान्मत्ता प्रगल्भा दापिताङ्गते। दशरूपक ३/१८

२ कुस ८/१५

३ कुस ८/३०

४ महाकवि कालिदास— प देवीदत्त शर्मा

उपर्युक्त श्लोक में शिव की चेष्टाएँ अनुभाव रूप हैं तथा पार्वती की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। ग्रीडा आदि व्यभिचारी भाव हैं। इस श्लोक में शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। कुमारसम्भव का प्रेम आदर्श का प्रतिरूप है। यह प्रेम किसी विशेष परिस्थिति का प्रतिफलन नहीं है वरन् जन्म जन्मान्तर के प्रेम का शाश्वत रूप है। कालिदास ने पूर्वराग की प्रायः सभी अवस्थाओं को अतिशय मनोरम रूप दिया है। शिव के प्रति पार्वती की स्मृहा रूप अभिलाषा^१ अवस्थाओं को अतिशय मनोरम रूप दिया है। शिव के प्रति पार्वती की स्मृहा रूप अभिलाषा चिन्ता^२ का आश्रय लेकर प्रिय की स्मृति^३ में, प्रिय के गुण कथन^४ से सन्तुष्ट न होकर उद्वेगावस्था^५ को प्राप्त हो जाती है पार्वती का अनुराग जब सप्रलाप^६ रूप को धारण कर उन्मादावस्था^७ को व्यक्त करता है तब यही प्रतीत होता है कि पार्वती की व्याधि^८ कहीं उसे जडतावस्था^९ को न प्राप्त करा दे।

कालिदास की कविता के प्रत्येक वाक्य एक मनमोहक चित्र उपस्थित करते हैं। पूर्व राग की सम्पूर्ण अवस्थाओं का शब्द-चित्र रचना शाश्वत् नवीन तथा नूतन सौन्दर्यबोधकता की चेतना प्रतीत होती है।

-
- १ असह्यहुकारनिवर्तित पुरा पुरारिमप्राप्तमुख शिलीमुख ।
इमा हृदि व्यायतपात मक्षिणोद्विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वन । कु.स. ५/५४
- २ इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपता समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन ।। कु.स. ५/२
- ३ अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वय तथाविध प्रेम पतिश्च तादृश ।। कु.स. ५/२
- ४ यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्य न विधि विचिन्वती । कु.स. ५/५६
- ५ अकिंचन सन्नभवं स सपदा त्रिलोकनाथ पितृसदयगोचर ।
स भीमरूप शिव इत्युदीर्यते, न सन्ति याथार्थ्यविद पिनाकिन । कु.स. ५/७७
- ६ तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु वाला लभते स्म निर्वृति तुषार सघात शिलातलेष्वपि ।। कु.स. ५/५५
- ७ उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन सवाष्पकण्ठस्खलितै पदैरियम् ।
अनेकश किनरराजकन्यका वनान्तसगीतसखीररोदयत् । कु.स. ५/५६
- ८ त्रिभागशेषासु निशासु च क्षण निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।
क्व नीलकण्ठ । व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना ।। कु.स. ५/५७
- ९ यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे न वेत्ति भावस्थमिमं कथं जनम् ।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखर ।। कु.स. ५/५८

कवि ने प्रकरण के अनुसार सुन्दर वाक्यों का चयन किया है इनके वाक्यों में रसों का बहुत सुन्दर परिपाक देखने को मिलता है। करुण रस की भी अभिव्यक्ति शृंगार से किसी भी अर्थ में न्यून नहीं है। कामदेव के विनाश पर शोकविधुरा रति मरने के लिये उद्यत है। उसका कथन है—चन्द्रमा के साथ चोंदनी और मेघ के साथ बिजली चली जाती है। पत्नी पति के साथ जाती है। यह अचेतनो में भी दृष्टिगोचर होता है। शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते। प्रमदा पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्न हि विचतनैरपि ॥ कुस ४/३३

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुमारसम्भव में दाम्पत्य प्रेम की विशद व्यञ्जना हुई है किन्तु शृङ्गार साधना से शुद्ध एवं विलासमय चित्रों की भी कमी नहीं है। विलास के ही ये चित्र, जो कहीं कहीं पूज्यत्व भावना मिश्रित हैं विश्वात्मा शिव के प्रति भक्ति भावना के लिये विधात सिद्ध होते हैं। फिर भी कुमारसम्भव में शृङ्गार का साङ्गोपाङ्ग चित्रण (रूढियों) परम्परा निर्वाह के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। शृङ्गार का कोई मनोरम पक्ष कवि की बहश्रुत लेखनी से छूटने नहीं पाया है। इस काव्य में कालिदास ने शृङ्गार—चित्रण में जो स्वाभाविक सफलता पायी है वह उनकी अन्य कृति में नहीं मिल पायी। इसका एक यह भी कारण है कि कुमारसम्भव उनके आराध्य का चरित्र चित्रण था, अतः उनका मन ही नहीं आत्मा भी रम उठी थी और उनकी प्रतिभा अतिशय मुखरित हो उठी थी। जिसके प्रत्येक वर्णन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। न ऐसी नायिका का सौन्दर्य ही उन्हें मिला और न ही ऐसा नायक मिला जो मदन का शासित होकर भी मदन शासित हो। इसी झोक में वे सयोग शृङ्गार वर्णन करने में समय में भी कहीं—कहीं अतिशय कर गये और मर्यादा की सीमा भी पार कर गये किन्तु इसमें कवि की भावुकता—अतिशय की कारण है और कुछ नहीं। महाकाव्य प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी अङ्गरूप में यदा—कदा निष्पन्न किये जाते हैं।

अङ्गानिसर्वेऽपि रसा । सा द ७/३१७

कुमारसम्भव मे अङ्गीरस शृङ्गार के अतिरिक्त करुण रौद्र वीर भयानक इत्यादि रसों का निरूपण हुआ है ।

भयानक रस

किसी भयानक व्यक्ति या वस्तु को देखकर जो भय नामक स्थायीभाव का उदय होता है उसी का परिपोष भयानक रस कहलाता है ।

शृङ्गार प्रधान प्रेमाख्यानों मे भयानक रस प्रायः नहीं मिलता । कुमारसम्भव मे भी ऐसा प्रसङ्ग केवल एक बार आया है किन्तु कवि की प्रतिभा से यह संस्कृत साहित्य का स्मरणीय प्रसङ्ग हो गया है । प्रसङ्ग है शङ्कर के तपोवन मे मदन के प्रवेश का । यहाँ समाधिस्थ शिव को जो दुर्घृष्ट स्वरूप है वह बड़ा ही रोमाञ्चकारी है ।^१ उन्होंने वीरासन लगा रखा है शरीर स्थिर है तथा दोनों कन्धे झुके हुए हैं ।^२ जब कलाप भुजङ्गो से बंधे हैं, दाहिने कान मे रुद्राक्ष माला लटक रही है तथा कमर मे मृगछाला कसी हुई है ।^३ वस्तुतः यह भगवान् शङ्कर का समाधिस्थ शान्त, सात्विक तथा सौम्यतम रूप है किन्तु जैसी 'रूढि' है कि चोर पुलिस को देखकर डर जाता है वैसे ही शिव का शान्त रूप कामचोर के मन मे भय उत्पन्न कर देता है ।

यहाँ शङ्कर का दुर्धर्ष रूप आलम्बन है । हाथ ढीले हो जाना शक्ति नष्ट होना आदि अनुभाव हैं । सम्भ्रम त्रास आदि व्यभिचारी भाव हैं । इस प्रकार भयानक रस का परिपोष होता है ।

१ कुस ३/५१

२ कुस ३/५२

३ कुस ३/५३

करुण रस

करुण रस का स्थायीभाव शोक है। आचार्य धनजय का कथन है कि शोक या तो इष्टनाश के परिणामस्वरूप होता है या अनिष्ट की प्राप्ति से होता है।

यद्यपि करुण रस शृङ्गार का परम शत्रु है और उसके साथ यह स्थिति सम्भव नहीं हो सकती है किन्तु आश्रय भेद अङ्गाङ्गि रूप में रखने पर उसका विरोध नहीं रह जाता ऐसा आचार्यों का मत है।

शिव की वहनिज्वाला में मदन के भस्मावशेष हो जाने पर उसकी प्रिय पत्नी रति का विलाप करुण रस का मार्मिक दृश्य उपस्थित करता है। पति के भस्मीभूत हो जाने के पश्चात् मूर्च्छित रति अपने नव वैधव्य की असह्य वेदना सी आख फाड़-फाड़ कर देखने लगती है। किन्तु अर्द्ध मूर्च्छावस्था में— हे प्राणनाथ तুম जीवित हो— यह कहती हुई वह ज्योहि खड़ी होती है— त्यों ही स्तम्भित रह जाती है— वहाँ तो पुरुष आकृतिकार हरकोपानल से भस्म एक राख का ढेर ही पृथ्वी पर पड़ा है। उसे देखकर अत्यन्त कातर हो उठती है और मिट्टी में लोट पोट कर बाल बिखेर कर विलख-विलखकर रोने लगती है और करुण स्वर में कहती है— हे प्रिय । तुम्हारे अतुलनीय सुन्दर शरीर को इस दशा में देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यों न हो गया सत्य है कि स्त्रियों का हृदय बड़ा कठोर होता है। इस प्रकार रति कभी अपने भाग्य को और कभी अपने कृत्यों का स्मरण करके बड़ा करुणा विलाप करती है। क्योंकि आम्र मजरियो गुनगुनाते भौरे मधुर कूक करती हुई कोयल को देखकर वह और भी विह्वल हो उठती है। इस प्रकार रति विलख रही है। तब उसी समय कामदेव का मित्र वसन्त वहाँ उपस्थित होता है। वसन्त को देखकर रति और फूट-फूट कर रोने लगती है क्योंकि दुःख में स्वजनो को देखकर दुःखी प्राणी का दुःख

द्विगुणित हो जाता है। यह रूढ़ि है क्योंकि यह प्राचीन काल में तथा आधुनिक समय में देखा जाता है। इस प्रकार कुमारसम्भव का चतुर्थ सर्ग रति विलाप के माध्यम से करुण रस का मार्मिक चित्रण उपस्थित करता है। यहाँ काम से अत्यधिक वियोग ही रति के शोक का आलम्बन है। भूमि पतन क्रन्दन धूल में लौटना, पूर्वघटित घटनाओं का स्मरण उलाहना देना इत्यादि सर्वत्र अनुभावों का ही मुख्यतया कथन हुआ है। दुःख चिन्ता मोह विषाद इत्यादि सर्वत्र अनुभावों का ही मुख्यतया कथन हुआ है। दुःख चिन्ता मोह विषाद इत्यादि व्यभिचारी भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

कालिदास के इस कारण प्रसङ्ग पर संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने यदा कदा आड़े, तिरछे कुछ खरी खोटी सुनाई है।

इस प्रकार सम्यक् रूप से विचार किया जाय तो इस योजना की दृष्टि से यह निर्दोष प्रसङ्ग का पर्यवेक्षण करने पर यह तथ्य ज्ञात हो जाता है कि पहले केवल पति के भस्मीभूत शरीर को देखकर अनाथ रति का शोक उमड़ता है अतः उसके सारे विलाप उन दोनों के व्यक्ति जीवन से सम्बद्ध है किन्तु जैसा कि महाकवि की प्रतिभा ने विवरण दिया है कि दुःख में स्वजनो को देखकर शोक सतप्त प्राणी का दुःख अनेक द्वारा से फूट पड़ता है अतः मित्र वसन्त के आने पर रति का दुःख पुनः उमड़ पड़ता है ऐसी रूढ़ियाँ प्राचीन काल से चली आ रही हैं।

शान्तरस

वास्तविक ज्ञान के उदय होने के परिणामस्वरूप प्राणी को जगत से निर्वेद या वैराग्य होता है।

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग के अन्त में कवि ने शिव का जो आशिक परिचय दिया है उसमें शान्तरस की सुष्ठु अभिव्यक्ति हुई है। पिता

द्वारा अपमानित होने पर सती ने उनकी यज्ञाग्नि में सबसे प्राणोत्सर्ग कर दिया था तभी से विमुक्तसङ्ग भगवान शिव ने दूसरा विवाह नहीं किया।^१ इतना ही नहीं जितेन्द्रिय तथा गज चर्म ओढ़ने वाले शिव हिमालय की एक चोटी पर जाकर तपस्या करने लगते हैं जहाँ गंगा जी अपनी जल प्रवाह से देवदारु को निरन्तर सींचती थी तथा गन्धर्व गण दिन रात गाया करते थे।^२ उनके पास ही सर पर नमेरु की कोमल पुष्पमाला बांधे शरीर पर भोजपत्र धारण किए प्रथमगण चट्टानों पर बैठे पहरा दिया करते थे।^३ उनके समीप उनका गर्वीला नान्दी वृष भी रहता था। इस प्रकार तपस्याओं के स्वयं फलदाता भगवान शिव अपनी दूसरी मूर्ति अग्नि को समाधि से जगाकर पता नहीं किस फलेच्छा से घोर तपस्या करते हैं।^४ यहाँ शिव आश्रय है, सती के प्राणत्याग के कारण उत्पन्न दुख ही उनके तप का उद्दीपन है। सब प्रकार के भोग विलास का त्याग कर देना दूसरा विवाह न करना तथा तप करना इत्यादि अनुभाव है। धृति व्यभिचारीभाव है।

वीररस

वीररस का स्थायीभाव उत्साह होता है। यह उत्साह शक्ति सम्भूत होता है। आलम्बन विभाव कोई समक्ष स्थित शत्रु साहसपूर्ण कार्य तथा यशादि होता है। शत्रु की ललकार युद्धभेरी इत्यादि उद्दीपन विभाव है। आखों का लाल हो जाना शस्त्र प्रहार होठ चलाना सैन्य संचालन चढ़ाई करना तथा आवेश रोमाञ्च इत्यादि अनुभाव है। मति, धृति गर्व उग्रता इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

१ यदैव पूर्वे जनने शरीर सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।

तदाप्रभृत्येव विमुक्तसङ्ग पति पशूनामपरिग्रहोऽभूत्॥ कुस १/५३

२ स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गाप्रवाहोक्षितदेवदारु।

प्रस्थ हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किञ्चित्कषात्किन्नरमध्युवास॥ कुस १/५४

३ गणा नमेरुप्रसवावतसा भूर्जत्वच स्पर्शवतीर्दधाना।

मन शिलाविच्छुरिता निवेदु शैलेयनद्वेषु शिलातलेषु॥ कुस १/५५

४ तत्राग्निमाधाय समित्समिद्ध स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्ति।

स्वयं विधाता तपस फलाना केनापि कामेन तपश्चचार॥ कुस ११/५७

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में इन्द्र—कामदेव सवाद में कामदेव की गर्वोक्तियों का वर्णन हुआ है उन गर्वोक्तियों के माध्यम से उत्साह स्थायी भाव की किंचित झॉकी दिखाई पड़ती है। इन्द्र की आज्ञा से काम उनके दरबार में उपस्थित होता है तथा आते ही अपनी शक्ति का परिचय सा देता हुआ कहता है— हे स्वामी ! आप आज्ञा दीजिये ! तीनों लोक में ऐसा कौन सा कार्य है जो आप मुझसे करवाना चाहते हैं ?^१ कहिए तो ऐसा कौन पुरुष उत्पन्न हो गया है जिसने बहुत बड़ी बड़ी तपस्याये करके आपके मन में ईष्या जगा दी है। आप उसका नाम मात्र बता दीजिये तो मैं जाकर उसे अपने धनुष वाण से क्षण भर में जीते लेता हूँ।^२

मेघदूत में रस

महाकवि कालिदास का विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत विप्रलम्भ शृङ्गार की अद्वितीय सर्जना है। काव्य का नायक प्रवासित यक्ष है जो राज्य कार्य में प्रमाद दिखाने के कारण अलकापति कुवेर द्वारा प्रिया से दूर जाने के लिये अभिसप्त होता है। अब प्रेमी यक्ष अपनी नवोढा पत्नी से वियुक्त ही नहीं होता, अपितु उसे सर्वाधिक कठोर दण्ड यह मिलता है कि शाप की अवधि में अपनी पत्नी से कदापि नहीं मिल सकता। अतः वह घर से प्रवासी हो जाता है और दूर दक्षिण की विन्ध्यश्रेणियों के मध्य कहीं रामगिरि आश्रम पर जा बसता है।

काव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ शृङ्गार है। काव्यानुशासन के अनुसार विप्रलम्भ शृङ्गार की निरुक्ति इस प्रकार है— सभोगसुखास्वादलोभेन विशेषेण प्रलभ्यते आत्माऽत्रेति विप्रलम्भ तात्पर्य यह है कि नायक नायिका के परस्परानुराग में मिलन नैराश्य ही विप्रलम्भ है। इसीलिये नाट्यदर्पणकार कहते हैं 'परस्परानुरक्तयोरपि विलासिनो पारतन्त्रया वा विप्रलम्भ ।

१ आज्ञापत्र ज्ञातिविशेष पुसालोकेषु यत्ते करणीयमस्ति । ३/३

२ केनाम्यसूया पदकाडक्षिणा ते नितान्तदीर्घजनिता तपोभि ।

यावद्मवत्याहितसायकस्य मत्कार्मुकस्यास्य निदेशवती/ ३/४

आचार्य विश्वनाथ विप्रलम्भ के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं— इसमें नायक नायिका का परस्परानुराग हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता ।^१ कालिदास की कला ने विशेष रस परिपाक ने इस कृति को विश्व की अन्यतम गीतिकाव्यता प्रदान की है। महाशय किन्केड का कथन है कि मेघदूत किसी भी भाषा के प्रेम काव्य की अद्भुत कृति है। इसने अनेक शताब्दियों से अपनी भावना से रस के चमत्कार से एव शैली से मानव मस्तिष्क को चमत्कृत कर रखा है ।^२ वियोग में रति का भाव लगा रहता है और यही रतिभाव विप्रलम्भ शृङ्गार करुण से भिन्न बनाता है। पुनर्मिलन की आशा वियोग में सयोग का सुख स्वप्न उत्पन्न करती है। जो आनन्द प्रियजन के मिलन से होता है वह वियोग में प्रियजन के चिन्तन तथा गुण कथनादि के माध्यम से होता है। इसमें प्रतिक्षण नायक का स्मरण होता रहता है। इस स्मरण जन्य सयोग में जो सुख है वह उसे प्रत्यय सयोग से भी अधिक श्रेष्ठता देती है। इसमें गुरुजनो की लज्जा का भय न वियोग को उत्साह शून्य करने वाली शङ्का। इसीलिए लोग वियोग को ही सुखद माना करते हैं ।^३ यदि वियोग में यह सुख न होता तो दुख सहकर भी प्राणी वियोग में मग्न क्यों रहते हैं।

विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद हैं— पूर्वराग, मान प्रवास करुण विप्रलम्भ। पूर्वराग के अनेक कारण निवद्ध किये गये हैं जिसमें श्रवण प्रत्यक्षदर्शन, स्वप्नदर्शन दैवपारतन्त्र, मानवपारतन्त्र इत्यादि हैं। इसमें दस प्रकार की कामदशाये सम्भव हैं— अभिलाष चिन्ता, स्मृति, गुणकथन उद्वेग सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति (मरण)। प्रवास का अभिप्राय है

१ यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ— सा द ३/१८७)

2 Is the most wonderful love poem in any language It has fascinated men's mind for outless centuries by its originality of concelution and its charm of sentiment and style"

३ विरहा विरहा मत कहो विरहा है सुल्तान।

जा घट विरह न सपरे सो घट जान मसान॥ कबीर

कि कार्यवश, शापवश अथवा सम्भ्रमवश नायक का देशदेशान्त मे गमन । प्रवास विप्रलम्भमे नायिका की दो प्रकार की चेष्टाये हुआ करती है— अङ्गमालिन्य वस्त्रमालिन्य एकवेणीधारण निश्वाश— उच्छ्वाश रोदन भूमि पतन आदि ।^१ और दस प्रकार की कामदशाये दृष्टिगोचर होती है । अङ्गो का सौष्ठव सन्ताप पाण्डुता दुर्बलता अरुचि अधीरता अनालम्बनता तन्मयता उन्माद तथा मूर्च्छा ।^२

मेघदूत मे शापज प्रवास का ही विस्तृत वर्णन किया गया है । प्रिया के चतुर कटाक्षो मे ही सदैव निमग्न रहने वाले प्रवासी यक्ष के लिये मिलन की अत्युग्रता रहते हुए भी प्रिया समागम दुर्लभ हो जाता है और उसकी विरहविह्वलता वासना परिपक्व बुद्धि को विफल बना डालती है । वह वलाविप्रयुक्त यक्ष किसी प्रकार शाप के कुछ ही माह व्यतीत कर पाया था कि आषाढ के प्रथम दिन ही पर्वत से मेघ को कष्टश्लेष करते देखकर उसकी विरहवेदना पुन उद्दीप्त हो उठती है और वह प्रिया के पास अपना शुभ सन्देश भेजने के लिये व्याकुल हो उठता है । विरह की असहायता ने यक्ष को इतना दीन बना दिया है कि वह अपनी सुध—बुध खो बैठता है । और विचार शक्ति इतना निर्वल हो गयी है कि चेतन—अचेतन का भी निर्णय नहीं कर सकता । अन्य कोई उपाय न देखकर, विवश उत्तर की ओर गगनोन्मुख जलद से ही प्रिया के पास प्रणय सन्देश ले जाने की आशा भरी प्रार्थना करने लगता है ।^३ पूर्वमेघ मै अलकापुरी जाने तक के मार्ग का विस्तृत परिचय देने के पश्चात् अपनी प्रिया का विस्तृत परिचय देने के पश्चात् अपनी प्रिया का विस्तृत परिचय देता हुआ कहता है, हे मेघ । दुबली

१ द.रू ४/२०४

२ अङ्गेष्वसौष्ठव ताप पाण्डुता कृशता रूचि ।। सा.द० ३/२०५

अधृति स्यादनालम्बस्तन्यत्रोन्मादमूर्च्छना ।

मृतिश्येति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह ।। सा.द ३/२०६

३ आषाढस्य । पू.मे २

पतली शिखर के समान दौंलो वाली पके हुए विम्बाफल के समान ओष्ठो वाली क्षीण कटिकावाही चकित हरिणी के नयनो के समान नेत्रो वाली गहरी नाभि वाली नितम्ब भार से मन्द गति वाली स्तनो से कुछ झुकी हुई स्त्रियो मे जो ब्रह्मा की (एकमात्र) प्रथम रचना (सर्वसुन्दरी) वहाँ होगी उसे ही मेरी प्रिया समझना।^१ इस प्रकार का वर्णन करना कालिदास का अभ्यास सा बन गया है। विश्व मे ब्रह्मा की जो सर्वश्रेष्ठ रचना और अनिन्द्य सुन्दरी होती है उसे ही कवि अपने काव्य का आलम्बन (नायिका) बनाता है।

मेघदूत वस्तुतः यक्ष की प्रेम कहानी है जो विरही है अतः कवि ने बड़ी कुशलता के साथ विप्रलम्भ रति का चित्रण किया है। रामगिरि पर बैठा यक्ष स्वयं रति विप्रलम्भ, क्षीणदेह विरह की प्रतिमूर्ति बन बैठा है।^२ वियोग मे व्याकुल अपनी पत्नी की जिस वियोगावस्था की वह कल्पना करता है और जिसका उसने स्वयं भूयोभूय अनुभव करता है तथा जिसके स्पष्टीकरण के लिये वह मेघ से भी कहता है कि तुम केवल मेरी बात ही विश्वास न करो वरन् तुम स्वयं जाकर देख लेना— इस विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ किया गया है।

विप्रलम्भ के भुक्तभोगी महाकवि ने विरह विधुरा यक्षिणी का शिशिर मथिता पद्मिनी के रूप मे जो हृदय द्रावक चित्र खींचा है— उसमे प्रवास का परिपोषक सचमुच बहत प्रगाढ़ एव मर्मस्पृक हो उठा है। यक्षिणी का पाले से भारी कमलिनी के समान कहने से उसकी क्षीणता की स्पष्ट व्यञ्जना हो रही है साथ ही शोक विषाद चिन्ता इत्यादि व्यभिचारियो की भी सुन्दर व्यञ्जना हो रही है। मल्लिनाथ का कथन है कि प्रवासावस्था मे विरह वेदना इतनी असीम हो जाती है कि रमणियो की दस कामदशाये

१ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्नाभि।

श्रोणीभारादल सगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या वा

२ तस्मि कतिचिदबलाविप्रयुक्ता स कामी नीत्वा। पूमे २

लक्षित होती है— नयनसङ्ग मनसङ्ग सकल्प जागर कुशता अरति लज्जा त्याग उन्माद मूर्च्छा अन्त या मृत्यु। प्रथम तथा अन्तिमावस्था के अतिरिक्त सभी दशाओ का चित्रण कालिदास अभूतपूर्व रूप से प्रस्तुत किया है।

इसके पश्चात् यक्ष ने अपनी प्रिया की बिरह व्याकुलता का जो विस्तृत परिचय देता है वह सब अनुभाव की कोटि में ही आता है। यक्ष मेघ से कहता है— हे मेघ । जब तुम उसके पास पहुँचोगे तब उस मृगनयनी की वॉई आँख फडक उठेगी जिस पर बाल ढँके हुए होंगे जो अजन न लगाने से स्नेह से शून्य हो गयी होगी तथा बहुत दिनों से मदिरा पान न करने के कारण भौहो के विलास को भूल गयी होगी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मेघदूत में विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ है, अतः नायिका का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सन्देह कथन के माध्यम से यक्ष के विरहावस्था का वर्णन प्रारम्भ होता है। यहाँ से अब आश्रय यक्ष है और यक्षिणी आलम्बन और यक्ष की समस्त चेष्टाये अनुभाव रूप हैं। यक्ष कहता है कि हे मेघ! मेरी प्रिया से कहना कि तुम्हारे प्रिय का मार्ग वैरी ब्रह्मा रोके बैठा है अतः वह तुमसे मिलने में असमर्थ है। किन्तु वह अपने क्षीण शरीर अत्यन्त सन्ताप, अश्रुयुक्त उत्कण्ठित एवं दीर्घ उच्छवास लेने वाले अङ्गो से यह समझ लेता है कि तुम भी उसी प्रकार क्षीण सन्तप्त अश्रुयुक्त निरन्तर उत्कण्ठित, ऊष्णोच्छवासे ले रही होगी।^१ यहाँ नायक नायिका की समदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है, उत्कण्ठित होना उच्छवास लेना अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव हैं तथा दैन्य विषाद व्यभिचारी भाव है।

विरहकाल में विरहिणियों के चित्त बहलाने के कुछ उपाय होते हैं जिन्हें मनोविनोद के साधन कहे जाते हैं जैसे सादृश्य दर्शन चित्रदर्शन स्वप्नदर्शन, पियाङ्गस्पृष्टदर्शन इत्यादि इन सभी मनोविनोदों को कवि बड़ी ही निपुणता से प्रस्तुत किया है। वास्तव में वियोगी प्राणी के लिये आशा ही सबसे बड़ा अवलम्ब होता है।

जीवित करने के लिए वियोग के पश्चात् मिलन की आशा ही उन्हें कठिन से कठिन दुखों को सहने की प्रेरणा देती रहती है। यही महाकवि ने रूढियों का प्रयोग मेघदूत में किया है। यदि वियोगी आशावादी न होगा तो सम्भव है उसकी मृत्यु हो जाए। इसीलिये तो यक्ष प्रिया को आशा बधाता हुआ कहता है— हे शुभे ! विष्णु भगवान के शेषशय्या से उठने के पश्चात् मेरे शाप का अन्त हो जायेगा। अतः विरह के शेष चार महीने किसी प्रकार आख निमीलित कर व्यतीत कर दो। इसके बाद तो हम शरद ऋतु की पूर्णरूपेण विकसित चोंदनी वाली रात्रियों में विरह से द्विगुणित हुई अनेक अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगे।^१

वस्तुतः विरह ही सच्चे प्रेम की कसौटी है वियोग में प्रेम और अधि-क तीव्र और विश्वसनीय बनता है। उपर्युक्त श्लोक के द्वारा कवि ने प्रेम की सुन्दर व्यञ्जना की है। प्रेम अवस्थाभेद से स्नेह से बड़ा माना गया है। रसाकर में स्नेह की उस चरमकोटि को प्रेम कहा गया है, जिसमें क्षणभर का भी वियोग असह्य हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम वियोग के कारण दुखी अपनी प्रिया को भलीप्रकार धैर्यालम्बन कराकर^२ कार्य करने हेतु निश्चय कर लिया। वास्तव में विरह में इतना उन्मत्त हो गया है कि मेघ स्वीकारोक्ति समझ लेता है।^३ और उसके सुखमय भविष्य की कल्पना करने लगता है।^४

१ उ मे ५३

२ आश्वास्येव प्रथम विरहा । उ मे

३ कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्य उ मे

४ मा भूदैव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयागै । उ मे

इस प्रकार मेघदूत विप्रलब्ध यक्ष एव यक्षिणी की विरह व्याकुलता का अभिराम चित्र प्रस्तुत करता है। काव्य में एक दूसरे के वियोग से दुःखी परस्पर आलम्बन और आश्रय बने नायक नायिका के अनुभावों का ही अधिकांश वर्णन हुआ है। आषाढ के प्रथम दिन मेघोत्थान का दर्शन करना उद्दीपन विभाव है। नायिका द्वारा निश्वाशोच्छ्वास लेना शय्या पर करवटे बदलना गीतगायन सारिका से सम्भाषण करना आभूषणों को त्याग कर देना, भूमि पतनादि अनुभाव है तथा पश्चात् में आश्रय बने हुए यक्ष द्वारा प्रिया आलिंगन करने के लिये हाथ उठाना चित्र बनाकर चरण में गिरना प्रार्थना करना अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव है। विषाद दैन्य औत्सुक्य, मोह, चिन्ता वितर्क इत्यादि व्यभिचारी भावों की यथास्थान सुन्दर व्यञ्जना हुई है। महाकवि ने प्रसिद्ध गीतिकाव्य मेघदूत में रूढियों का प्रयोग किया है जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

अलङ्कार

कवि के वाक्य अलङ्कृत अनलङ्कृत दोनों प्रकार के होते हैं। जब अलङ्कारता रहती है तब सुन्दर वस्तु व्यञ्जित होकर सहृदय को आनन्द प्रदान करती है। कवि का वाक्यार्थ जब गौण हो जाता है तब सौन्दर्य भी आनन्द का हेतु बनता है। कवि अलङ्कृत वाक्य के माध्यम से इतने सुन्दर वाक्यार्थ को है जिसे देखकर पाठक आनन्द विभोर हो उठता है। अलङ्कार का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

“अलङ्क्रियतेऽनेनेति अलङ्कार ।”

अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु की शोभा बढ़ाई जाये वह अलङ्कार है। अलङ्कार शब्दार्थ रूप कविता-कामिनी के शरीर के प्रति सौन्दर्य को बढ़ाने वाले हैं। वस्तुतः उक्ति वैचित्र्य ही अलङ्कार है, जो काव्य शरीर की शोभा को बढ़ाता है। उक्ति वैचित्र्य से काव्य में चमत्कार आ जाता है जो उसके रसास्वादन में सहायक होता है।

चन्द्रालोककार जयदेव का तो स्पष्ट मत है कि जो आचार्य अलङ्कार रहित शब्दार्थ को काव्य मानता है वह यह क्यों नहीं मानता कि अग्नि उष्णता रहित होती है ।

महाकवि कालिदास ने यद्यपि शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है किन्तु अधिकता अर्थालङ्कारों की ही है। अलङ्कारों के प्रयोग में महाकवि ने बड़ी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। शब्दालङ्कारों का मोह कभी-कभी कवियों को इतना जकड़ लेता है कि मूल भाव तत्त्व एकदम गौण हो जाता है। कालिदास ने उनका प्रयोग बहुत स्वाभाविक ढंग से किया है। इस सम्बन्ध में स्व **श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय** का कथन कितना सटीक है कि अलङ्कारों के प्रयोग में कवि ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनकी कविता अत्यधिक तथा आवश्यक अलङ्कारों के भार से आक्रान्त कामिनी की भाँति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयों के चित्र को आकृष्ट करने वाली है।

काव्य में अलङ्कार प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है।

रसाक्षिप्तया यस्य बन्ध शब्दक्रियो भवेत् ।

अपृथग्—यत्ननिर्वृत्य सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ।।

रस के द्वारा आक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के पृथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, वही सच्चा अलङ्कार है— ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम रस की अनुभूति उसकी अलङ्कृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति और शब्दाभिव्यक्ति— दोनों एक ही प्रयास के परिणत फल हैं। कोई कलाकार जिस चित्त प्रयास द्वारा अलङ्कारादि के उपक्रम से रस प्रस्फुटन करता है उसके लिये उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत ही नहीं होती।

अभिनवगुप्त ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा है कि रसानुभूति हृदय वाले कवि के द्वारा अभिव्यक्त अलङ्कार भाषा का समस्त सौन्दर्य कटककुण्डलादिवत् कही बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता प्रत्युत वह काव्यपुरुष का स्वाभाविक धर्म होता है। अभिनवगुप्त ने यह भी स्पष्ट कहा है कि “न तेषा वहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ”। के विषय में महाकवि कालिदास अद्वयवादी थे।

वागर्थविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ रघु १/१

महाकवि ने अलङ्कार के प्रयोग में रूढियों (परम्परा) का निर्वाह किया है। जिसका विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

अलङ्कार विधान में भी कालिदास ने बड़ी ही सावधानी दिखाई है। प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा—सम्पन्न कवि की अलङ्कृति योजना उनकी वशवर्तिनी होती है। उनकी रचनाओं की योजना अपने आप स्वभावतया होती जाती है। कालिदास की रचनाओं में अलङ्कारों का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है। अलङ्कारों की भरमार इनकी कविता में नहीं मिलेगी।

अनुप्रास

अनुप्रास के लिये कही से अलग प्रयास नहीं करना पड़ा अपितु कवि की भावाभिव्यक्ति में इनका समावेश स्वतः हो गया है।

जीवन्पुन शश्वदुपप्लवेभ्य प्रजा प्रजानाथ पितेव पासि। रघु २/४८

इस उदाहरण में पकार की अनुवृत्ति पाठकों के चित्त को आकर्षित करती है।

यमक

यमक के प्रयोग काव्य के दुरुह होने के कारण ध्वनिकार ने विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में यमक के प्रयोग को मना किया है।^१ इसीलिए कालिदास ने यमक का प्रयोग बहुत कम किया है। यमक का प्रयोग रघुवश के नवम् सर्ग में दशरथ की राज्य व्यवस्था वसन्त ग्रीष्म ऋतु— वर्णन तथा आखेट वर्णन में देखे जा सकते हैं। कालिदास के यमक के प्रयोग के सम्बन्ध में डा. भोलाशङ्कर व्यास का कथन द्रष्टव्य है। कालिदास ने यमक के प्रति रुचि दिखाई है पर ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ने यह इसलिये प्रयोग किया कि वे चित्र काव्यों के शौकीनों के सामने यह सिद्ध कर सकें कि वे उस प्रकार के प्रयोग भी कर सकते हैं किन्तु कालिदास भाव को प्रधानता देते हैं तथा अलङ्कारों के मोह में फँसकर उसका हनन करना नहीं चाहते।

यमक का यह कितना सुन्दर उदाहरण है। मान छोड़ो, वीती हुई अवस्था फिर लौट कर नहीं आती है इस प्रकार कोयल के कामोद्दीपक वचनों को सुनकर नायिका नायक से मिलने को आतुर हो उठती है।

त्यजत मानमल वत विग्रहैर्न पुनरेति गत चतुर वय ।

परभृताभिरितीव निवेदिते रमते स्म बधूजन ॥

श्लेष

यमक के समान कालिदास ने श्लेष के प्रयोग में विशेष कौशल का परिचय दिया है जिससे वह केवल कोरी बुद्धि का व्यायाम न होकर विविक्षितार्थ को सुन्दर ढंग से व्यक्त करने में सहायक होता है कालिदास के श्लेष आसानी से समझ में आ जाते हैं।

^१ ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे यमकादिनिबन्धनम्।

शक्तावापि प्रमादित्व विप्रलम्भे विशेषतः ॥ ध्वन्यालोक २/१५)

समासोक्ति

समासोक्ति मे शिल्प विशेषणो के द्वारा अप्रस्तुत के व्यवहार का कथन किया जाता है।

बालेन्दुवक्राष्यविकासभावाद् बभु पलाशान्यतिलोहितानि।

सद्यो वसन्तेन समागताना नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्॥

कु०स० ३/२६

वसन्त के समागम—काल मे ही द्वितीया के चन्द्र के तुल्य वक्र अरु अरुणिम अर्द्ध—विकसित वनभूमि मे विकीर्ण पलाश पुष्प ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वसन्त ने वनस्थलियों के साथ रमण करके उनके (शरीर के) ऊपर नख—क्षत के चिह्न बना दिए हो।

इस श्लोक मे उत्प्रेक्षा वाच्य है और समासोक्ति व्यङ्ग्य है। वसन्त और वनस्थलियों पर नायक—नायिका के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। इस अलङ्कारयुक्त वाक्य ने ही प्रस्तुत अर्थ वसन्त और वनस्थलियों को एक रसमय चित्र प्रदान किया है। समासोक्ति अलङ्कार ने अचेतन वनस्थलियों को चेतना ही नहीं प्रदान की वरन् उनमे नवयौवना का सम्पूर्ण मादकता भर दी है। और वसन्त को ऐसा रसिक नायक बना दिया है जो अनेक नायिकाओ का उपभोग करने मे पूर्णतः समर्थ है।

अङ्गुलीभिरिव केशसचय सन्निगृह्य तिमिर मरीचिभ।

कुड्मलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीव रजनीमुख शशी॥ कु स ८/८३

कुमारसभव के आठवे सर्ग मे शिव शिवा से कह रहे है कि अङ्गुलियों द्वारा केश—समूह की भाति किरणो द्वारा अन्धकार को भलीभाति लाधकर चन्द्र (नायक) बन्द किए हुए नेत्र रूप कमलो वाले (नायिका) के मुख को मानो चुम्बन कर रहा है।

यहाँ भी उत्प्रेक्षा वाच्य और समासोक्ति व्यङ्ग्य है। रजनी नायिका है और चन्द्रमा नायक है। प्रस्तुत रजनी और चन्द्र पर समासोक्तिमूलक आरोप ने जडतत्त्व को चेतन बना दिया है। समासोक्ति अलङ्कार के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा चन्द्र नहीं है वह तो ऐसा कामकला-मर्मज्ञ नायक है जो अपनी सुनहरी उगलियों से नायिका के मुख पर विकीर्ण कुन्तलो को समेटकर बन्द कमल के समान नेत्रों वाली रजनी नायिका का चुम्बन ले रहा हो। समासोक्ति अलङ्कार ने ही सम्पूर्ण वाक्यार्थ को रसमय रग से रगीन बना दिया है। रघुवश का एक उदाहरण—

शशुभिरे स्मितचारुतरानना स्त्रिय इव श्लथशिञ्जितमेखला ।

विकचतामरसा गृहदीर्घिका मदकलोद कलोलविहङ्गमा ॥

रघु ६/३७

लोगों के घरों के भीतर बनी हुई बावलियों में जो कमल खिले हुए थे और वहाँ मधुर शब्द करते हुए जो जलपक्षी तैर रहे थे उनमें बावलियाँ ऐसी सुन्दर प्रतीत हो रही थी, मानो उनमें मुस्कुराती हुई सुन्दर मुखवाली और शिथिल होने से बजती करधनी वाली स्त्रियाँ विहार कर रही हों।

बावलियों पर स्त्रियों का आरोप किया है इसलिए वहाँ समासोक्ति अलङ्कार है। गृह की दीर्घिकाएँ भी सरस राग तथा हाव भाव वाली प्रमदाओं के समान मन को मोह रही हैं।

इन उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि समासोक्ति अलङ्कार वह मायाजाल है जो अचेतन को भी चेतनता की मदिरा पिलाकर उसे कामदेव का रूप प्रदान कर देता है।

मेघदूत का एक उदाहरण—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धु

पाण्डुच्छाया तटरुहतरु भ्रशिभिर्जीर्णपणे ।

सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

कार्ष्व येन त्वजति विधिना स त्वयैवोपपाद्या ।। पू मे २६

इस श्लोक में निर्विन्ध्या नदी पर नायिका और मेघ पर नायक के व्यवहार की व्यञ्जना हो रही है। अतः इस समासोक्ति अलङ्कार के कारण निर्विन्ध्या नदी उस वियोगिनी नायिका की भाँति प्रतीत हो रही है जिसके केश प्रिय—वियोग में एकवेणी का रूप धारण कर लिए हैं उसके नेत्रों से निरन्तर अश्रु की धारा बहने से वह पीले वर्णवाली हो गयी है।

मेघ नायक की भाँति उपस्थित है जो उसकी सम्पूर्ण व्यथा को दूर कर सकता है।

दीपक

दीपक अलङ्कार में एक प्रस्तुत वाक्यार्थ रहता है दूसरा अप्रस्तुत^१। एक ही क्रिया का अनेक कारको तथा अनेक क्रियाओं से एक कारक का सम्बन्ध होने पर दीपक की स्थिति आती है।

अच्छिन्नामलसताना समुद्रोर्म्यनिवारित ।

पुनन्ति लोकान्पुण्यत्वात्कीर्तय सरितश्च ते ।। कु स ६/६६

हिमालय की प्रशंसा में अङ्गिरा कह रहे हैं कि निरन्तर प्रवाह वाली समुद्र की लहरों से टकराने वाली नदियाँ और आम की कीर्तियाँ लोकों को पवित्र करती हैं।

इस श्लोक में उपमा की व्यङ्गता दीपक मूलक है। दीपक के द्वारा एक ही क्रिया के प्रयोग से अमूर्त कीर्तियाँ भी मूर्तिमती हो गयी हैं और सम्पूर्ण लोकों को पवित्र कर रही हैं।

आलोके ते निपतति पुरा सा वलिव्याकुला वा
 मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्य लिखन्ती ।
 पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पजरस्था
 अरिचदभतु स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ॥ उ मे २२

इस श्लोक में क्रिया दीपक है। इसके माध्यम से यक्ष—प्रिया की विरहावस्था की उद्दामता की व्यञ्जना करायी गयी है। यक्ष प्रिया निरन्तर अपने प्रिय के ध्यान में डूबी है। उसे किसी एक क्रिया से ध्यान की प्राप्ति नहीं होती है। प्रिय—ध्यान विषयक—क्रियाओं में अपने विरह को अर्न्तभूत करने वाली यक्ष प्रिया साक्षात् विरह की प्रतिमूर्ति हो रही है।

पर्यायोक्त

पर्यायोक्त वह अलङ्कार है जहाँ वाच्य वाचक सम्बन्ध के बिना ही व्यञ्जना नामक व्यापार के द्वारा प्रकारान्तर से वाच्यार्थ का बोध होता है।

उदाहरण यदुच्यते पार्वति । पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि
 तद्वच । तथाहि ते शीलमुदारदर्शने । तपस्विनामप्युपदेशता गतम् ॥

कुस ५/३६

ब्रह्मचारी पार्वती से कह रहा है कि हे पार्वती । जो यह कहा जाता है कि सुन्दर रूप पापाचरण के लिए नहीं होता है, यह आपके विषय में एकदम सार्थक है एवं आपका आचरण तपस्वियों के लिए उपदेश का विषय बन गया है।

पर्यायोक्ति से यह अर्थ प्रतीत हो रहा है कि आप की तपस्या किसी एक नहीं अपितु अनेक तपस्वियों से श्रेष्ठ है। कालिदास की मान्यता है कि अखण्ड पुण्य से ही सुन्दर रूप को प्राप्ति होती है ब्रह्मचारी यह कहना चाहता है कि तुम अद्वितीय तपस्विनी हो तभी तुम्हारा इतना सुन्दर

रूप है। इसलिए सुन्दर रूप की प्राप्ति के लिए तपस्वियों को तपस्या विधि में तुमसे शिक्षा लेनी चाहिए। कहने का आशय है कि तुम तपस्या की साक्षात् मूर्ति हो अन्य तपस्वी गण तुम्हारी भाँति कठोर तप नहीं करते हैं अतः उन्हें तुमसे शिक्षा लेनी चाहिए।

अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाण पाणि वरेण्येन कुरु प्रवेशे ।

प्रसादवातायनसश्रिताना नेत्रोत्सव पुष्पपुराङ्गनानाम् ।। रघु ६/२४

सुनन्दा इन्दुमती से कहती है कि यदि तुम इनके साथ विवाह करना चाहती हो तो अवश्य विवाह करो जब इनके साथ राजधानी में प्रवेश करोगी तो तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर वहाँ की स्त्रियों के नेत्रों को अपरमित सुख मिलेगा।

यहाँ पर्यायोक्ति से व्यक्त हो रहा है कि इस राजा के नगर की स्त्रियों से तुम अधिक सुन्दर हो। इसलिए वे तुम्हारा स्वागत करेगी।

इस प्रकार के अलङ्कारों के प्रयोग से जो नवीन अर्थ अभिव्यक्त होता है वह वाच्य अर्थ को और सुन्दर बना देता है।

सङ्कर

अङ्गाङ्गिभाव रूप में रहने वाले अलङ्कारों को सङ्कर कहते हैं। इस प्रकार के अलङ्कारों में निरपेक्षता का अभाव रहता है।

उदाहरण मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपद्मशोभिना ।

तुषार वृष्टिक्षत् पद्मसपदा सरोजसघान मिवाकरोदपाम् ।। कुस ५/२७

जाड़े की शतो में जल के ऊपर पार्वती जी का मुँह भर दिखायी पड़ता था, जाड़े से उनके ओठ कम्पित होते थे और उनकी सासों से कमल की जो सुगन्ध निकल रही थी उसकी गन्ध चारों ओर फैल रही थी।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक के अडगाडिगभाव होने से सङ्कर अलङ्कार है। तुषारवृष्टि के कारण सरोवर के सभी कमल श्रीविहीन हो गये थे, पार्वती ने ही मानो अपने सुगन्धित पद्म मुख से सरोवर को कमल युक्त बनाया। यहाँ उत्प्रेक्षा है। सरोवर के कमल तुषार से नष्ट हो गए थे लेकिन पार्वती पद्म-मुख नहीं। इसलिए व्यतिरेक अलङ्कार व्यक्त हो रहा है। दोनों अलङ्कारों की सापेक्षता सङ्कर की सृष्टि करती है।

इस अलङ्कार के माध्यम से कवि ने पार्वती को अलौकिक नारी का रूप प्रदान किया है। पार्वती के मुख से कमल का सौरभ दिशाओं को परिव्याप्त कर देता है। इससे पार्वती को पद्मिनीत्व सिद्ध हो रहा है। सरोवर के पद्म तो तुषार से नष्ट हो रहे हैं किन्तु पार्वती के मुख पद्म पर तुषार का कोई प्रभाव नहीं है। इस व्यतिरेक से पार्वती की कठोर तपस्या व्यञ्जित हो रही है। कठोर तपस्या ही छन्दों को सहन कर सकती है।

दूसरा उदाहरण — प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीरविप्रेक्षित मायताक्ष्या ।

तया गृहीत न भृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीत न मृडाङ्गनाभि । कुस १/४६

विशाल नेत्र वाली पार्वती के नेत्रों के चितवन के प्रभाव से कम्पित नीलोत्पल के समान चल थे। इन चितवनों को देखकर यह ज्ञात नहीं हो पाता था कि इस कला को उमा ने हरिणियों से सीखा था या हरिणियों ने उनसे सीखी थी।

उत्प्रेक्षा और सन्देह की सापेक्षता ने सङ्कर अलङ्कार की सृष्टि की है। पार्वती ने नेत्र संचालन की क्रिया हरिणियों से सीखी थी या हरिणियों ने पार्वती से। इस वाक्यार्थ में सन्देह अलङ्कार है और यह सन्देह अलङ्कार उत्प्रेक्षामूलक है। इस अलङ्कार से पार्वती की चितवन को लोकोत्तर सौन्दर्य से अभिषिक्त किया गया है।

सेय मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।

दूरे वसन्त शिशिरानिलैर्मा तरङ्गहस्तैरूप गूहतीव । रघु १३/६३

राम सरयू नदी का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि मानवीय राजा दशरथ से वियुक्त मेरी मा के तुल्य यह सरयू नदी अपने शीतल पवन से प्रेरित तरङ्गरूप हाथ को उठाकर मानो दूरस्थित मेरा आलिङ्गन करना चाहती है ।

इस श्लोक में कौशल्या माता और सरयू की तुल्यता ने उपमा की सृष्टि की है । तरङ्गेहस्ते में रूपक और मानो आलिङ्गन कर रही है में उत्प्रेक्षा है । तीनों अलङ्कारों की अङ्गाङ्गिभावता ही सङ्कर अलङ्कार का कारण है ।

इस अलङ्कार से सरयू मात्र नदी नहीं प्रतीत होती है । इस नदी में माता का प्यार होने से वत्सला बन गयी है । अतः सरस तरङ्ग रूपी हाथों से राम का आलिङ्गन वत्सला करना चाहती है । इस अलङ्कार ने ही सरयू को वात्सल्यमयी चेतनता प्रदान कर उसे समग्र प्यार दुलार एवं हृदय समर्पण करने वाली माता बना दिया है तथा राम के हृदय में इसके प्रति श्रद्धा भाव को अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

मेघदूत

ता चावश्य दिवसगणना तत्परामेकपत्नी

मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्

आशावन्ध कुसुमसदृशप्रायशो ह्यङ्गनाना

सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रूणद्धि ।। पू मे ६

यक्ष मेघ से कह रहा है कि हे मेघ । मेरे विरह के अवशिष्ट दिनों की गणना में सलग्न अतः जीवित रहने वाली पतिव्रता अपनी भावी को

माता के सदृश सर्वत्र गमन करने की गति से अवश्य देखेंगे। क्योंकि प्रायः अङ्गनाओं का, वियोग में शीघ्र नष्ट होने वाला प्रेममय हृदय पुष्प के सदृश होता है। वही हृदय से बना रहता है।

यहाँ उपमा और अर्थान्तरन्यास अलङ्कारों के सापेक्ष होने से सङ्कर अलङ्कार है। सङ्कर अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग होने के कारण पति के विरह में व्याकुल प्रमदाओं का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। स्त्रियों का हृदय पुष्प के सदृश कोमल होने से विरहावस्था में शीघ्र नष्ट हो जाता है लेकिन यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाय कि उनका पति इतने दिनों में आएगा, तो वे किंचित धैर्य धारण कर लेती हैं। इस श्लोक में सङ्कर अलङ्कार के द्वारा स्त्रियों में हृदय की कोमलता और धैर्य की क्षमता की व्यञ्जना करायी गयी है।

अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास के प्रयोग से किसी विद्वान् प्रशंसक ने अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में कालिदास की उपमा से श्रेष्ठ माना है। महाकवि की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान धारा भी बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास शुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये हैं।

उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मत मम।

अर्थान्तरन्यासे कालिदासो विशिष्यते।।

अन्तररत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जातीन्दो किरणेष्विवाङ्क ।। कुस १/३

रत्नराशि हिमालय की शोभा को हिम नष्ट नहीं कर सका, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलङ्क छिप जाता है, उसी प्रकार गुण समूह में एक दोष भी छिप जाता है।

दिव यदि प्रार्थमसे वृथा श्रम पितु प्रदेशास्तव देवभूमय ।

अथोपयान्तारमल समाधिना न रत्नन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।।

कुस ५/४५

यहाँ अर्थान्तरन्यास द्वारा यह व्यक्त हो रहा है कि पार्वती उस धरा की सर्वोत्तम कन्यारत्न है, जिस प्रकार रत्न पारखी के द्वारा ढूँढा जाता है उसी प्रकार कोई सर्वोत्तम व्यक्ति पार्वती को पत्नी के रूप में वरण के लिये स्वयं ढूँढ लेगा। इसलिये उसे पति को प्राप्त करने के लिये तपस्या नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार के वाक्य कवि के कौशल को अभिव्यक्त करते हैं।

त प्राप्य सर्वावयवानवद्य व्यान्वर्तयाऽन्योपगमात्कुमारी ।

नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य वृक्षान्तर काडक्षति षटपदालि ।।

रघु ६/६६

इन्दुमती सर्व अवयवों से सुन्दर राजा अज को देखकर किसी अन्य राजा की ओर नहीं बड़ी क्योंकि भ्रमरावली प्रफुल्लित आम्र वृक्ष को प्राप्त कर अन्य वृक्ष की कामना नहीं करती है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार वाक्यार्थ को शोभायवृद्धि कर रहा है। भौरो का समूह अच्छी प्रकार से प्रफुल्लित आम्र वृक्षों की कामना करता है आम्रमजरियों में मादकता और फलोत्पादन की क्षमता रहती है। आम्र वृक्ष में ही इतनी मजरिया होती है कि भौरो का समुदाय उसका रसास्वादन कर सकता है। राजा अज के सम्पूर्ण अवयव मादक और सौन्दर्य पाकर जहाँ इन्दुमती की सम्पूर्ण इन्द्रियों को तृप्ति मिल सकती थी। इस अर्थान्तरन्यास से अज का सर्वातिशायी सौन्दर्य और इन्दुमती का अनुपम स्वयंवर दक्षता की अभिव्यक्ति हो रही है।

मेघदूत

जात वशे भुवनविदितेपुष्करावर्तकाना
जानामि त्वा प्रकृतिपुरुष कामरूप मद्योन ।
तेनार्थित्व त्वयि विधिवशाद् दूरवन्धुर्गतोऽह
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकाम ॥ पू मे ६

यक्ष मेघ से कह रहा है कि आपका जन्म लोक प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक नामक मेघकुल में हुआ है। आप इन्द्र के प्रधान पुरुष हैं। आप स्वेच्छा से अपने रूप को परिवर्तित करने वाले हैं। मैं भार्या विरही आप से याचना कर रहा हूँ। श्रेष्ठ के प्रति की गयी याचना विफल होने पर भी सफल है और अधम से की गयी प्रार्थना सफल भी निष्फल है। मे उदाहरण लोक सिद्ध अर्थ की अभिव्यञ्जना को प्रतिपादित करते हैं। यह रूढि है।

कालिदास ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रयोग करते हुए शाश्वत सत्यो और जीवन की अनुभूतियों का भी बड़े मार्मिक ढंग से उद्घाटन किया है। प्रिया के प्राणों की रक्षा के लिये आतुर हुआ यक्ष समर्थ इन्द्रियों द्वारा प्रापणीय सन्देश को जाने के लिये घूम ज्योति सलिल के सन्निपात मेघ से ही याचना कर बैठता है। भला कामी में जड और चेतन का विवेक कहाँ रहता है। इस प्रकार महाकवि ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार के प्रयोग में रूढियों का प्रयोग किया है।

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनुष। पू मे ५

महाकवि कालिदास के कई अलङ्कार तो ऐसे सुभाषित हो गये हैं जो लडखडाते और पथभ्रष्ट होते हुए मानव के लिये सत्पथ पर बढ़ते चले जाने के लिये महान सवल सिद्ध हो सकते हैं। यक्ष मेघ से कहता है कि “उज्जयिनी में एक रात बिताकर उसे शेष मार्ग पार करना चाहिए क्योंकि जो मित्रों का कोई काम करना स्वीकार कर लेते हैं, वे कभी अपने प्रयास में शिथिलता नहीं करते।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाध्येदध्वशेष ।

मन्दायते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ।। पू मे ४१

सासारिक द्वन्द्वो का क्रम पहिये की भाति घूमता ही रहता है ।
विवश और असहाय यक्ष ससार की इस परिवर्तनशीलता की ओर सडकेत
करके ही अपनी प्रिया को सान्त्वना दे सकताथा ।

कस्यात्यन्त सुखभुपनत दु खमेकान्ततो वा ।

नीचैर्गच्छति च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।। उ मे ४६

कुछ अत्यन्त एव मनोरम अर्थान्तरन्यास निम्नलिखित है । इनमे विषय—वैविध्य
य विविधशास्त्रज्ञता, वैदुष्य कलात्म प्रवीण्य और मनोज्ञता दर्शनीय है ।

१ प्रियेषु सौभाग्यफला हिचारुता । (कुस ५/१) २ शरीरमाद्य
खलु धर्मसाधनम् (कुस ५/४५) ३ न धर्मवृद्धेषु वय समीक्ष्यते कुस
(५/१६) ४ मनोरथानामगतिर्न विद्यते (कुस ५/६४) ५ प्रायेण गृहिणीनेत्रा
कन्यार्थेषु कुटुम्बिन (कुस ६/८५) ६ क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसादति (रघु
३/२६) ७ तेजसा हि न वय समीक्ष्यते (रघु ११/१) ८ सन्तति शुद्धवश्या
हि परत्रेह च शर्मणे (रघु १/६८) ९ मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति
चेत (पू मे ३) १० स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु (पू मे २६)

उपमा

अलङ्कार कवि भाषा का ऐसा अद्भुत धर्म है जो कथ्य अर्थ को
मादक रूप प्रदान करता है । कालिदास की शैली की सबसे बड़ी विशेषता
है कि उपमा अलङ्कार के माध्यम से सौन्दर्यात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति ।
किसी भी कवि के आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उनकी उपमाये जितना
सहज रूप मे प्रस्तुत करती है, उतना अन्य नहीं । कालिदास के महाकाव्य
रघुवश का श्रीगणेश उपमा की पृष्ठभूमि मे हुई है । इनकी यह उपमा

सम्पूर्ण काव्य सौन्दर्य को समेटे हुए सम्पूर्ण काव्य की गरिमा को अभिव्यक्त करती है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ रघु १/१

इस श्लोक का उपमेय पार्वती और परमेश्वर है और उपमान है शब्दार्थ की नित्य सम्बन्धता। कालिदास की दार्शनिक मान्यताओं का अभिव्यक्तमूलक यह उपमान शक्ति और शिव की अभेदता को अभिव्यक्त करता है। शिवाश्रय भाव में शक्ति की लीला सम्भव नहीं है तथा शक्ति के अभाव में शिवत्व का अस्तित्व प्रश्नचिह्न का विषय बन जाता है। साहित्यिक वैभव पार्थक्य सृष्टि के लिये नहीं है अपितु तादात्म्य सर्जना के लिये है। अर्थ वैभव का शिवत्व शब्द स्वरूपिणी शिवा शक्ति के अभाव में शिव रूप ही है। अर्थ विहीन शब्द की परिकल्पना अज्ञान की सर्जना है। शब्द की अर्थ का ज्ञान किसी एक की सम्पदा नहीं है। अर्थ की अग्नि को छिपाए ही शब्द सुनायी पड़ता है। काव्य को पाठक के हृदयडगम के लिये महाकवि सादृश्य विधान का प्रयोग करते हैं। सादृश्य विधान प्रस्तुत करने वाले अलङ्कारों में उपमा सर्वप्रमुख है। उपमा के ज्ञान से ही अन्य सादृश्यमूलक अलङ्कारों का ज्ञान भी सहज ही हो जाता है। सादृश्य मूलक अलङ्कारों में कालिदास उपमा के धनी माने जाते हैं। विल्कुल सीधे और नये जले शब्दों के द्वारा कालिदास ने अपनी उपमाएँ दी हैं। कालिदास के उपमा सौन्दर्य को विशिष्टता प्रदान करते हुए समीक्षकों ने 'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति प्रचलित कर दी है और उपमा का श्रेष्ठ कवि घोषित किया है।

कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शङ्कर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है, उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है।

अवृष्टिसरम्भभिवाम्बुवाहमपाभिवाधारमनुतडगम् ।

अन्तश्चराणा मरुता निरोधा निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ।।

कुस ३/४८

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओ को निरुद्ध कर सर्गबन्ध में स्थिर अचंचलभाव से बैठे हैं जैसे वृष्टि के सरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो। जल को धारण करने वाला अम्बुवाह किसी भी क्षण वरस सकता है। तरङ्ग से समुद्र हो (चंचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरङ्गहीन अचंचल है) तरङ्ग से समुद्र हो (चंचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरङ्गहीन अचंचल है)। अपामिवाधार शब्द की यह ध्वनि तथा निवात निष्कम्प प्रतीत हो। यहाँ तीनों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगिराज की अचंचल स्थिरता की अभिवृद्धि कर उसके गौरव की एक रेखा खींचते हुए प्रतीत होता है। कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा का उपमा से 'दीपशिखा कालिदास' हो गये। इन्दुमती स्वयंवर के वर्णन में इन्दुमती की उपमा सचारिणी दीपशिखा से दी गयी है। वह जिस प्रकार राजा को छोड़कर आगे निकल जाती थी वह उसी प्रकार विवर्ण एवं विषादाकुल हो जाता है जैसे सचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राजप्रासाद अन्धकारवृत्त हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है।

सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ य व्यतीयाय पविवरा सा ।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपाल ।। रघु ६/६७

इस श्लोक में दो उपमान 'सचारिणी दीपशिखा' और 'नरेन्द्र मार्गाट्ट' इन्दुमती और भूमिपाल के स्वरूप का मनमोहक चित्र उपस्थित करते हैं। राजाओं के लिये अधेरी रात है पतिवश इन्दुमती संचरण करने वाली दीपशिखा है।

कामदेव के विनाश से दुःखित रति की अवस्था वायु से बुझाए हुए

दीपक की घूमावृत्त बर्लिका के तुल्य अन्धकारवृत्त (विषादमय) थी। यह कवि की सर्वश्रेष्ठ उपमाओं में से एक है। इसमें शोकाकुल व्यक्ति का क्या ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहत ।

अहमस्य दशेव पश्य माविषहनव्यसनेन धूमिताम् ।। कुस ४/३

मेघदूत में उपमा का प्रयोग दर्शनीय है। वासना की सूक्ष्मता केवल अनुभाव का विषय बनती है। कवि उसे उपमान के माध्यम से उसे एक रूप देकर उसके रहस्यात्मक पहलुओं पर प्रकाश डालता है। चित्तवृत्तियों की असस्यता के जाल में मानव की सम्पूर्ण चेतना उलझी हुई है। व्यक्ति की वासना या कल्पना को यदि सर्जना का रूप मिल जाये तो सम्पूर्ण सृष्टि का आचल रत्नों से भर दिया जाए। कवि अमूर्त मानसिक चिन्तन को उपमानों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। वाह्य जगत का सूक्ष्म निरीक्षण ही आन्तरिक लहरों की गुत्थियों को किंचित रूप दे पाता है। कालिदास ने अपने काव्यों में अमूर्त कल्पनाओं को उपमानों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का सुन्दर प्रयास किया है।

मेघदूत का विरही यक्ष मेघ से कह रहा है।

ता चावश्य दिवसगणनातत्परामेक पत्नी

मव्यापन्नामविहतगतिद्रक्ष्यसि भातृजायाम् ।

आशावन्ध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यङ्गनाना

सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रूणद्धि ।। पू.मे ६

पिता मेरे लिये एक-एक दिन बिता रही होगी। स्त्रियों का वियोग में नष्ट होने वाला प्रणयी हृदय पुण्य के समान मृदुल होता है। वही हृदय वियोगावस्था में आशा रूपी बन्धन से बँधा होने से बचा रहता है।

पुष्प का वृक्ष से टूट जाना उपमान मन की सम्पूर्ण विफलता को स्पष्ट करता है किन्तु मन की स्थिति विचित्र होती है। पुण्य की नियति मन से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है। आशा वन्धन में बँधा हुआ शरीर के वृन्द में लटका हुआ भविष्य की कल्पना में टूट-टूट कर भी जीता रहता है।

रघुवश महाकाव्य का एक और सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है— दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य राजा दिलीप और इसी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु पुत्री नन्दिनी की स्थिति का वर्णन किया है।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।

तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपा मध्यगतेव सन्ध्या ॥ रघु २/२०

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कालिदास की उपमा केवल अलङ्कार के लिए नहीं है वरन् उनकी उपमाएँ ब्रह्माण्ड की एक कला है। कालिदास की एक-एक उपमा एक-एक नक्षत्र है जिसका रहस्य जानना कठिन है।

उत्प्रेक्षा

इस श्लोक की उत्प्रेक्षा ने बसन्त को नायक बनाकर वनस्थलियों को नायिकाएँ बना दिया है। फलाश के अधखिले पुष्प बालचन्द्र के समान वक्र प्रतीत हो रहे हैं। ये पुष्प मानो वनस्थलियों के वदन पर किये गये नख-क्षत हैं। नायक और नायिका के व्यवहार के आरोप से समासोक्ति अलङ्कार की भी प्रतीति हो रही है। यहाँ उत्प्रेक्षा और समासोक्ति दोनों अलङ्कारों के चयन ने वनस्थलियाँ को पदमाती नायिका के सौन्दर्य से अलङ्कृत कर दिया है।

रघुवश की एक उत्प्रेक्षा—

त कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति ।

कैकेयीशङ्कयेवाह पलितछिदमना जरा । रघु १२/२

मै वृद्धावस्था की सम्भावना की शङ्का में की गयी है। इस उत्प्रेक्षा अलङ्कार में वृद्धावस्था को वतन बनाकर उसे भविष्यद्रष्टी के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार अहृदय वृद्धावस्था भी उत्प्रेक्षा के कारण अत्यन्त हृदया बन गयी है। कान के पास बाल पढ़ना गुप्त वार्ता कथन की ओर सङ्केत है। वृद्धावस्था राजा को सचेत करना चाहती है अतः कान के पास आकर कहती है ताकि उसकी वार्ता दूसरा कोई सुन न ले।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गा गताना

शैषे पुष्पैर्हृतमिव दिव कान्तिमत्खण्डमेकम्॥ पू. मे ३०

इस श्लोक में उज्जयिनी नगरी भूतल से अत्यन्त रमणीय बनाने के लिये कवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा उसे स्वर्ग का खण्ड बताया है। इस उत्प्रेक्षा ने उज्जयिनी की अलौकिकता पुष्पशीलता सततसुखशीलता आदि को अभिव्यक्त किया है।

इनके उपवन में कहीं रूपक का चातक स्वाती बूद की काना को अपनी ध्वनि से अभिव्यक्त करता है कहीं तो निदर्शना के मालती—पुष्पो पर ससृष्टि अथवा सकर का भ्रमर मडराता रहता है। उपमा की कोकिला की मधुर ध्वनि तो योगी की भी समाधि को भङ्ग कर देती है। व्यतिरेक प्रतीप परिणाम आदि की तितलिया रग—बिरगी परिधान में दृष्टान्त के मलयानिल में अठखेलिया करती रहती है।

कालिदास के अलङ्कार चयन मानसिक प्रक्रियाओं को मूर्त रूप में अधिक बोधगम्य बनाकर पाठकों को एक ही अर्थ—समुद्र से चौदह से भी अधिक रत्नों की प्राप्ति के आनन्द की अनुभूति कराते हैं। कुछ अलङ्कारों के चयन के द्वारा कालिदास को काव्य—भाषा की गम्भीरता समझी जा सकती है।

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्ति चित्र मुखे मधुश्रीस्तिलक प्रकाश्य।

रागेण बालारूणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलचकार॥ कु. स ३/३०

यहाँ रूपक अलङ्कार ने भ्रमर तिलक के फूल और लाल-लाल कोपले रूपक के माध्यम से नवयौवना की मादकता की वर्षा कर रही है। रूपक ने अचेतन तत्वों को चेतनता ही नहीं प्रदान की वरन् उन्हें सरसता का मूर्तिमान् रूप प्रदान कर दिया है। एक-एक वस्तु ने रूपक के माध्यम से श्रृङ्गार के आसव समुद्र की सर्जना कर दी है।

रूपक ने चित्रकूट जडत्व को वृषभ के रूप में परिणत कर उसे शिव का वृषभ के रूप में परिणत कर उसे शिव का वृषभ सा बना दिया है जो किसी भी व्यक्ति के चित्त को आकर्षित कर सकता है।

कालिदास ने अपने निदर्शना अलङ्कार के माध्यम से अवर्ण्य अर्थ को भी कोकिला की वाणी दे दी है।

अभ्युन्नताङ्गुष्ठनख प्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागभिवोदगिरन्तौ ।

आजहतुस्तच्चरणौ पृथिव्या स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ।। कुस १/३३

पार्वती के चरणविन्यास को निदर्शना ने अरुणिमा बना दिया है। उनके चरण-विन्यास ने स्थल पर लाल-कमल की सर्जना कर दी है।

क्व ? सूर्यप्रभवो वश क्व ? चाल्पविषया मति ।

तितीर्षुदुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।। रघु १/२

इस श्लोक की निदर्शना कालिदास की विनयशीलता को हिमालय से भी शीतल और उन्नत बनाकर रघुवश की मर्यादा की अलौकिकता प्रदान की है।

कालिदास की प्रतिवस्तूपमा अत्यन्त रमणीयता की सृष्टि करती है—

मधुश्च ते मन्मथ । साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव ।

समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ।। कुस ३/२१

यहाँ प्रतिवस्तूपमा ने यह व्यजित किया है कि कामदेव और बसन्त

की मित्रता अभिन्न है। बसन्त और काम की सी तथा अग्नि और पवन की सी मित्रता अभिन्न है।

स्थिता क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता ।

वलीषु तस्या स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभि प्रथमोदविन्दव ॥

कुस ५/२४

उपर्युक्त श्लोक में परिकर अलङ्कार ने प्रत्येक पद चयन को एक-एक रत्न से भी अमूल्य बना दिया है। वर्षा का प्रथम बिन्दु अत्यन्त विरल होता है किन्तु बहुवचन ने उसकी विरलता को थोड़ी सी सप्तता प्रदान की है। उनका पार्वती के नेत्रलोभ पर क्षण भर रूकना पद्मों की सान्द्रता और स्निग्धता को अभिव्यक्त कर रहा है। बिन्दुओं का पार्वती के अधर को ताडित करना अधर की कोमलता तथा मुग्धता को द्योतित करता है। पार्वती के स्तन के अग्र-भाग से बिन्दु का होना यह अभिव्यक्त करता है कि पार्वती के उन्नत पयोधर अत्यन्त कठोर है अतः उसमें नव-यौवनात्मक है। बिन्दुओं का विलम्ब से नाभि प्रदेश में समा जाना नाभि प्रदेश की गम्भीरता को अभिव्यक्त करता है।

सार्थक विशेषणों के प्रयोग से पार्वती के अद्वितीय सौन्दर्य की अभिव्यजना करायी है।

मनीषता सन्ति गृहेषु देवतास्तप क्व वत्से क्वच तावक वपु ।

पद सहेत भ्रमरस्य पेलव शिरीषपुष्प न पुन पतत्रिण ॥ कुस ५/४

यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार ने जिस कलात्मक ढंग से पार्वती की रमणीयता को अभिव्यक्त कर उसे तपस्या से रोकने का प्रयास किया है उसके समक्ष काव्य का कान्तासम्मित कथन भी लज्जित हो जाता है।

चन्द्र गता पद्मगुणान्न भुङ्गते पद्मश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।

उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला दिसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ॥ कुस १/४३

यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार ने कालिदास की लेखनी को उपमा सौन्दर्य सृष्टि की शक्ति दी है। पार्वती के मुख में चन्द्रमा की कमनीयता और पद्म की कोमलता एवं सौरभ की मादकता है। अतएव पार्वती का सौन्दर्य लोकोत्तर है।

प्रतीप अलङ्कार ने भी कालिदास की वासना के सौन्दर्य को मूर्तिमान रूप देने का प्रयास किया है। पार्वती के अरुणिम अधर के अमूर्त हास का विलास प्रतीप के माध्यम से व्यक्त होकर कालिदास के कल्पना वैभव को अभिव्यक्त करता है—

पुष्पप्रवालोपहित यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुटविद्रुमस्थम्।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुच स्मितस्य ॥ कुस १/४४

इस प्रतीप अलङ्कार के माध्यम से पार्वती के अरुणिम अधर के हास के लिए दो दो उपमानों की सृष्टि कर प्रकृति की असम्भवता को सम्भव रूप प्रदान करने का प्रयास है प्रवाल (नव पल्लव) अत्यन्त अरुणिम सरस और मार्दव होता है। उस प्रवाल पर यदि सौरभ बिखेरने वाला धवल पुष्प हो तो पार्वती के अरुणिम अधर का मादक हास समता कर सकता है अथवा विद्रुम पर स्थित मुक्ताफल ही।

इस प्रकार कवि ने अन्यान्य अलङ्कारों के प्रयोग से काव्य को दिव्य रूप प्रदान किया है। कवि ने अलङ्कारों के प्रयोग में रूढियों (परम्परा) का पूर्णतः पालन किया है।

छन्द

सर्गों का सम्बन्ध छन्दयोजना से भी जोड़ा गया है। वाल्मीकि ने एक सर्ग में एक ही छन्द प्रयुक्त किया, किन्तु सर्गान्त में वृत्त परिवर्तन कर दिया। इसी पद्धति को कालिदास ने रघुवश में तथा बाद के सभी कवियों ने

अपनाया। कुछ सर्गों में कालिदास ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। ऐसा सम्भवतः इसलिये किया कि वर्ण्यविषय का उप विविध था। कुमार सम्भव में भी ऐसा ही छन्द प्रयोग किया है। सर्गान्त में वाल्मीकि की भाँति उन्होंने बदले हुए वृत्तों की संख्या एक या दो न रखकर कहीं-कहीं तो अनेक रखी है। महाकवि ने रघुवंश में वाल्मीकि कृत रामायण की रूढ़ियों (परम्परा) का प्रयोग किया है।

छन्द की मूलधारणा आच्छादन की है। चित् शक्ति का आच्छादन ही जगत की सर्जना है। सृष्टि विलास छन्द प्रक्रिया की क्रमिक विकासात्मिका रमणीयता है। ब्रह्म की इच्छा ही छन्द है। इसलिये उसकी इच्छा से ही एक शक्ति की अनन्त रमणीयता बिखेर रही है। जहाँ सौन्दर्य है शिवत्व है, वहाँ उस चित्शक्ति की लीला है। लीला आवरण में आवृत्त होकर मनोरंजन करती है। कवि का मूलभाव शक्तिमय है। छन्द स्फुटन में मूल शक्ति का विकासात्मक सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है। जगत की सम्पूर्ण रचना एक छन्द है जिसमें एक एक स्वर एक-एक लाभ और एक-एक ताल अन्तर्निहित है। जब तक यह लय और ताल है सृष्टि का छन्दात्मक सौन्दर्य है जहाँ यह भङ्ग हुआ सृष्टि का सौन्दर्य प्रलय में विलीन हो जायेगा।

‘छदि सवरणे’ से निष्पन्न छन्द शब्द का शाब्दिक अर्थ अभिप्राण होता है।^१ छन्द वर्णों का ऐसा गुम्फन है, जिसमें छन्दशास्त्र के नियमों-गुणों, लघु गुरु यति आदि का पालन किया जाता है। संस्कृत भाषा के छन्दों की मात्रा की योजना की है। उनका मेघदूत काव्य ‘मन्दकान्ता छन्द में विरचित है। मन्दकान्ता छन्द का प्रयोग प्रावृट्-वर्षा, प्रवास और व्यसन (कष्ट की स्थिति) के वर्णन में किया जाता है।^२ महाकवि क्षेमेन्द्र ‘सुवृत्ततिलक में लिखा है कि काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का सोच समझकर विनियोजन करना चाहिये।^३

१ अभिप्रायश्चछन्द आशय । अमरकोश ३/२०

२ ‘प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते । सुति ३/२१

३ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च । कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोग विभागवित् ।। सुति

मन्दाक्रान्ता छन्द मन्द-मन्द गति से प्रारम्भ होकर आक्रान्तता को प्राप्त हो जाती है कि इनकी असह्य विरह वेदना को देखकर वनदेवियों के नेत्रों से मुक्ताफल के समान आसू किसलयों पर गिरने लगते हैं।^१

मेघदूत में मेघ की यात्रा कालिदास के विप्रलम्भ शृङ्गार की करुणोत्पादिनी यात्रा है। इसी छन्द में कालिदास के कोमल भावों को इतना गौरवान्वित किया कि सभी आचार्यों ने मुक्तकण्ठ से मेघदूत और उसके छन्द की प्रशंसा की है।

क्षेमेन्द्र ने कालिदास के मन्दाक्रान्ता छन्द की बड़ी प्रशंसा की है कि जिस प्रकार कुशल अश्वारोही जिस प्रकार काम्बोज देशीय घोड़ी को अपने नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार कालिदास को नियन्त्रण में मन्दाक्रान्ता शोभित होता है।^२

इस प्रकार कालिदास ने अपने काव्य में उपजाति का सफल प्रयोग कर अपनी सहज अभिरुचि का परिचय दिया है। उनके काव्य में उपजाति के बहुल प्रयोग ने ही, सम्भवतः परवर्ती काल में उपजाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया। काव्य में वैदर्भी रीति को व्यक्त करने में यह छन्द सर्वाधिक उपयुक्त है— न बहुत बड़ा न बहुत छोटा। विशेषकर वीर एवं शृङ्गार रस को व्यक्त करने के लिये इससे बढ़कर उपयोगी दूसरा छन्द नहीं है।

वसन्तलिका

रघुवश के कई स्थलों पर वसन्तलिका का प्रयोग हुआ है। पञ्चम सर्ग में इन्दुमती को प्राप्त करने के लिये अज की चिन्ता एवं चारणों द्वारा

१ पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थल देवताना।

मुक्ता स्थूलास्तरुकिस्त्रिलयेण्वश्रुलेशा पतन्ति॥ उ मे ४३

२ 'सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते।

सदश्वकदमकश्मेव काम्बोजतुरगाडगना॥ सु ति ३-३४

अज के वीरचरित्र का प्रशस्ति गान नवम् सर्ग में महाराज दशरथ की आखेट क्रीडा त्रयोदश सर्ग में राम लक्ष्मण भरत इत्यादि के वीर आदर्श चरित्र की व्यञ्जना आदि के प्रसङ्ग में भी^१ वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया। इस प्रकार रघुवश में राजाओं के वीर चरित्र के कथन में वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है किन्तु उसमें रौद्र रस का लेश भी नहीं है केवल उनके उच्च आदर्शों तथा पौरुष का ही कथन हुआ है।

रघुवश के अन्य सर्गों में जैसे अष्टम सर्ग में महाराज अज के शोकमय कथा के वर्णन में^२ एकादश सर्ग में राम पर प्रसन्न होकर दशरथ द्वारा उन्हें स्नेह करने के प्रसङ्ग में^३ द्वादश सर्ग में राम राज्याभिषेक प्रसङ्ग में षोडश सर्ग में कुश के विवाह के अवसर पर एकोविश सर्ग में राजा अग्निवर्ण की मृत्यु के पश्चात् उसकी दुःखित रानी के राज्याभिषेक के प्रसङ्ग में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

नवम् तथा अष्टादश सर्गों के अन्त में वसन्ततिलका छन्द का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग विविध विषयों तथा विविध प्रसङ्गों के अवसर पर हुआ है।

रथोद्धता

महाकवि कालिदास को रथोद्धता छन्द के प्रति अपना स्वराज्य है। जिस कर्म का परिणाम खेद रूप में परिणत हो जाए— चाहे वह खेद रतिजनक हो दुष्कर्मजनित हो, या पश्चाताप जनित हो— या आखेट जनित हो सबका वर्णन रथोद्धता छन्द में हुआ है।

१ एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीयामिच्छा विमानमधिदेवतया विदित्वा।

ज्योतिषथादवततार सविस्मयभिरदीक्षित प्रकृतिभिर्भरतानुगाभि ॥ रघु १३/६८

२ तस्य प्रसह्य हृदय किल शोकशङ्कु प्लक्षप्ररोह इव सौधतल बिभदे।

प्राणान्तहेतुमपि त भिषजाम साध्य लाभ प्रियानुगमने त्वरया स मेने। रघु ८/६३

३ तस्मिन्नाते विजयिन परिरभ्य राम स्नेहादमन्यत पिता पुनरेव जातम्।

तस्याभवत्क्षण शुच परितोष लाभ कक्षाग्निलङ्पिततरोरिव वृष्टिपात ॥ रघु ११/६२

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में^१ शिव पार्वती के काम-क्रीडा का वर्णन रथोद्धता छन्द में हुआ है। शङ्कर जब पार्वती का चुम्बन करना चाहते हैं तो वे अपना होठ ही नहीं बढाती और जब वह हृदय से लगाना चाहते हैं तो वे अपने हाथ तक नहीं उठाती। इस प्रकार बाधाओं के साथ अधूरे रस के साथ भी, शिव जी ने वधू के साथ जो रति क्रीड की उसमें उन्हें आनन्द ही मिला।

रघुवश में दु खान्त घटनाओं के वर्णन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग हुआ है। दशरथ के आखेट जन्य परिश्रम के प्रसङ्ग में^२ मुनि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ राक्षसों के वध के प्रसङ्ग में^३ राम द्वारा शिव के धनुष भङ्ग के प्रसङ्ग में, मार्ग में परशुराम को देखकर दशरथ की चिन्ता के प्रसङ्ग में अग्निवर्ण की काम क्रीडा एवं दु खान्त मृत्यु के प्रसङ्ग में^४ रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया है। इन श्लोको में वर्णित स्थलों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ विषाद एवं खेद के वर्णन के प्रसङ्ग के लिये कवि रथोद्धता का अलग से चयन किया है।

प्रहर्षिणी

कालिदास ने प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग केवल रघुवश में किया है। प्रहर्षिणी छन्द कहीं तो सर्ग के अन्त में और कहीं सर्ग के मध्य में प्रयुक्त हुआ है। रघुवश के प्रथम सर्ग में महाराज दिलीप, गुरु वशिष्ठ से पुत्र प्राप्ति का

१ पाणिपीडनविधेरनन्तर शैलराज दुहितुर्हरै प्रति।

भावसाध्वसपरिग्रहाद् भूत्काम दोहद मनोहर वपु ॥ कुस ८/१

२ तस्य कर्कशविहार सम्भव स्वेदमानन विलग्न जालकम्।

आचचाम सतुषारशीकरो भिन्नपल्लवपुरो वनानिल ॥ रघु ६/६८

३ कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविधात शान्तये।

काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसा हिन वय समीक्ष्यते ॥ रघु ११/१

४ पितुरनन्तरमुक्तरकोसलान्समाधिगम्य समाधिजितेन्द्रिय।

दशरथ प्रशशाम्स महारथो यमवताभवता च धुरि स्थित ॥ रघु १६/१

उपाय पूछते हैं तो वशिष्ठ नन्दिनी की सेवा रूप उपाय बताते हैं। राजा यह सुनकर बड़े ही प्रसन्न होते हैं और उन्हें यह विश्वास होने लगता है कि उनको पुत्र अवश्य ही प्राप्त होगा।^१ रघु दिग्विजय के पश्चात् विश्वामित्र यज्ञ करते हैं और बिना बाधा के सफलता पूर्वक समाप्त हो जाने का वर्णन प्रहर्षिणी छन्द में किया है।^२ यज्ञ समाप्त हो जाने पर रघु तथा उनके मन्त्रियों ने हारे हुए राजाओं का बड़ा सत्कार किया। और इस प्रकार उनके मन में हार जाने की भी लज्जा थी उसे दूर कर दिया फिर अपनी रानियों से बहुत दिनों से बिछुड़े हुए उन राजाओं को स्वदेश जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हर्षमय प्रसङ्गों का ही वर्णन कवि ने प्रहर्षिणी छन्द में किया है।

मालिनी

कालिदास ने काव्यों में किसी किसी सर्ग के अन्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया और किसी सर्गान्त में अन्य छन्दों (पुष्पिताग्रा प्रहर्षिणी मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका इत्यादि) का भी प्रयोग किया है।

कुमारसम्भव के प्रथम द्वितीय सप्तम् और अष्टम् सर्गों के अन्त में मालिनी का प्रयोग किया है। रघुवश में द्वितीय, सप्तम् दशम एकादशसर्ग के अन्त में मालिनी छन्द ही प्रयुक्त है। उदाहरणार्थ कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग की समाप्ति का चित्र देखिये—

नया विवाह होने से लजीली महादेव जी के होंथो द्वारा अचल खीचे जाने पर अपना मुह छिपाने वाली तथा सखियों की चुटकियों का ज्यो—त्यो उत्तर देने वाली पार्वती जी के आगे आकार जब प्रमथादिगण अनेक प्रकार के मुँह बनाने लगे तो पार्वती भी मन ही मन हँस दी।

१ निर्दिष्टा कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रह द्वितीय।

तच्छिष्याध्ययन निवेदितावसाना सविष्ट कुशशयने निशा निनाय॥ रघु १/६५

२ सत्रान्ते सचिवसख पुरस्क्रियाभिर्गुर्वीभि शमितपराजयव्यलीकान्।

काकुत्स्थश्चिरविरहोत्सुकावरोधान् राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने॥ रघु ४/८६

वैतालीय

महाकवि ने करुणरस के वर्णन में वैतालीय छन्द का प्रयोग किया है। रघुवश में अज विलाप^१ का वर्णन तथा कुमारसम्भव में रति विलाप^२ का वर्णन वैतालीय छन्द में हुआ है। अज तथा रति दोनों करुण रस के आश्रय हैं। अतएव कवि ने उनकी मार्मिक तथा दुःखपूर्ण दशा का चित्रण वैतालीय छन्द में किया है।

इसी प्रकार रघुवश के नवम् सर्ग में दशरथ द्वारा—हाथी के भ्रम में तापस कुमार के मारे जाने जैसी दुःखपूर्ण कथा का वर्णन कवि ने वैतालीय छन्द में किया है।

वशस्थ

महाकवि ने वशस्थ का प्रयोग अपनी सुविधानुसार किया है। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन इसी छन्द में हुआ है।^३ पतली कटि वाली प्रसन्नवदना पार्वती, गर्मी के दिनों में अपने ओर आग जला कर उसी के बीच में खड़ी रहने लगी और चकाचौंध करने वाले सूर्य के प्रकाश को भी जीतकर वे सूर्य की ओर एकटक होकर देखती गयी।

रघुवश में महाराज रघु के वीर चरित्र की व्यञ्जना में वशस्थ छन्द का प्रयोग मिलता है। रघु तथा इन्द्र के युद्ध का वर्णन इसी छन्द में किया गया है। रघु ने मोर के पङ्खों वाले बाण से इन्द्र की वज्र जैसी ध्वजा काट

१ अथ तस्य विवाहकौ तुल्यं ललितं विभ्रत एव पार्थिव ।

वसुधामपि हस्तगामिनीम करोदिन्दुमतीमिवा पराम् ॥ रघु ८/१

२ अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता ।

विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधत्यमसहयवेदनम् ॥ कुस ४/१

३ नृपते प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पण्डितरयो विलङ्घय यत् ।

अपथे पदपयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता ॥ रघु ६/७४

डाली। उससे इन्द्र को ऐसा क्रोध हुआ मानो किसी ने बलपूर्वक देवताओं की राजलक्ष्मी के सिर के बाल काट लिये हो।

पुष्पिताग्रा

कालिदास ने अधिकतर पुण्यिताग्रा छन्द का प्रयोग सर्ग के अन्त में ही किया है। किसी शुभ कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये प्रस्थान तथा सफलता प्राप्ति का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द में किया गया है। रघुवश के पंचम सर्ग के अन्त में इन्दुमती स्वयंवर के लिये प्रस्थान करते हुए महाराज अज का वर्णन पुष्पिताग्रा छन्द में किया गया है।^१ कुमारसम्भव में आकाशवाणी के अनन्तर आश्वस्त हुई रति का वर्णन पुष्पिताग्रा में हुआ है।^२ षष्ठ सर्ग में पावर्ती के मिलने के लिये महादेव की आतुरता का वर्णन इसी छन्द में हुआ है।^३ पार्वती से मिलने के लिये महादेव जी इतने उतावले हो गए कि तीन दिन उन्होंने बड़ी कठिनाई से काटे। जब महादेव जैसों की प्रेम में यह दशा हो जाती है तब भला दूसरे लोग अपने मन को कैसे वश में कर सकते हैं। इस प्रकार भावों की तीव्रता दिखाने के लिये कवि ने इस छन्द को साधन बनाया।

द्रुतविलम्बित

समृद्धि के वर्णन में कालिदास ने द्रुतविलम्बित छन्द की योजना की है। रघुवश के नवम् सर्ग में महाराज दशरथ के समृद्धिशाली तथा धन धान्य से पूर्ण राज्य का वर्णन इसी छन्द में हुआ है। महाराज दशरथ बड़े ही

१ अथ विधिमवसाय्य शास्तदृष्ट दिवस मुखोचितमञ्जिताक्षिपक्ष्मा।

कुशलविरचितानुकूलवेष क्षितिपसमाजमगात्स्वयंवरस्थम्॥ रघु ५/७६

२ अथ मदनवधूरूपप्लवान्त व्यसनकृशा परिपालयावभूव।

शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयथसरा प्रदोषम्॥ कुस ४/४६

३ पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छादगमयदद्विसुता समागमोर्तक।

कमपरमवश न विप्रकुर्युर्विभुमपि त पदमी स्पृशन्ति भावा॥ कुस ६/६५

प्रजावत्सलशासक थे। उनकी कीर्ति दिगदिगन्त में फैली थी।^१ कवि उनके राज्य की समुन्नत दशा का वर्णन करता हुआ कहता है। दशरथ जी देवताओं के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था राज्य के संचालन का भार अपने हाथ में लेते ही उनका देश समृद्धिशाली हो गया। रोग भी उनके राज्य की सीमा में पैर न रख सके फिर भी शत्रुओं के आक्रमण की तो सम्भावना ही कहों।

हरिणि

हरिणि छन्द का प्रयोग केवल रघुवश में तृतीय सर्ग के अन्त में हुआ है। महाराज दिलीप वृद्ध हो गये हैं इसीलिये उन्होंने सभी प्रकार से समर्थ रघु को राज्य का भार सौंप दिया। उनका यह कार्य सभी दृष्टि से उदारतापूर्वक तथा औचित्यपूर्वक था क्योंकि उन्होंने यह कार्य रघुकुल की (रूढियों) परम्परा के अनुकूल किया था।^२ उनके द्वारा प्रयुक्त छन्दों का पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि मन्दाक्रान्ता कवि का प्रिय छन्द रहा है और उसमें यश एव सफलता भी प्राप्त हुई है। कवि ने मन्दाक्रान्ता के प्रति रूचि का परिचय मेघदूत के माध्यम से दिया है। मन्दाक्रान्ता के पश्चात् उन्होंने अनुष्टुप छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया और लगभग एक हजार श्लोकों की रचना इस छन्द में किया है। इसके पश्चात् उपजाति एव क्रमशः अन्य छन्दों का प्रयोग हुआ है। महाकवि का छन्द प्रयोग इतना सटीक एव तथ्यपूर्ण है कि बाद में चलकर वे ही छन्दशास्त्र के नियम बन गये। यद्यपि छन्दों के प्रयोग में कालिदास ने अपनी वैयक्तिक रूचि को ही प्रधानता दी है किन्तु फिर भी वे विषय एव रस के सर्वथा अनुकूल एव सराहनीय हैं।

१ पितुरनन्तर मुक्तरकोसलान्समधिगम्य समाधिजितेन्द्रिय ।

दशरथ प्रशशास महारथो यमवतामवता च धुरि स्थित ॥ रघु ६/१

२ मुनिवनतरूच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये ।

गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ रघु ३/७०

कालिदास के छन्द मे कही भी इत्तवृत्तता दोष नहीं है। उनके सफल छन्द प्रयोग को देखकर हम यह कह सकते है कि महाकवि ने अपने काव्य के द्वारा रसो के अनुकूल छन्दो की योजना की शिक्षा सी दी है। उनका छन्द परिधान काव्यात्मा के रस को और भी अलङ्कृत कर देता है।

मेघदूत मे छन्द विवेचन

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते। सु ति ३/२१

(वर्षा एव प्रवास और विपत्ति के वर्णन मे मन्दाक्रान्ता छन्द (काव्य मे) उपयुक्त होता है)

कालिदास का खण्डकाव्य मेघदूत आद्योपान्त इसी छन्द मे सर्जित है। मन्दाक्रान्ता के प्रयोग का काव्य मे विशेष कारण है— रस काव्य का प्रारम्भ वर्षा ऋतु के वर्णन से होता है तथा प्रवासी यक्ष की करुण स्थिति के वर्णन के उपरान्त समाप्त हो जाता है। वर्षाकाल मे मेघ के आगमन से साधारण प्रवासी का पथ भी आर्द्र हो जाता है और उसकी गति मन्थर हो जाती है। इसीलिये क्षेमेन्द्र ने वर्षा प्रवास एव विपत्ति के वर्णन मे मन्दाक्रान्ता के प्रयोग का निर्देश दिया। वृत्तरत्नाकर मे 'मन्दाक्रान्ता को मृदु चरणो मे क्रीडा करती हुई मुग्ध एव स्निग्ध मन्थर गति वाला कहा है।' दौत्य कर्म करने वाला मेघ मन्द—मन्द चरणन्यास से ही अपनी लम्बी यात्रा मे अग्रसर होता है। भौगोलिक दृष्टि से भी दक्षिण से चलकर मानसून उसी पथ का अनुसरण करता है जिसे कालिदास ने अपनी रस स्निग्ध रचना मे निर्दिष्ट किया है और इसी पथ से वर्षा के नायक 'मेघदूत ने मन्दाक्रान्ता के रथ पर चढ कर मनोहारी प्रवास किया।

१ नानाश्लेषप्रकरणचरणाचारुवर्णोज्ज्वलाङ्गा।

नानाभावा कलिताशिसकैश्रेणि कान्तातरङ्गा। वृ रत्ना

मेघदूत का प्रवासी नायक दुर्भाग्य ग्रस्त नायक है। इसलिये कवि ने उसकी कारुण्य दशा का वर्णन मन्दाक्रान्ता में किया है। वियोगी यक्ष अपनी पत्नी के शोकाकुल दशा का परिचय देता हुआ कहता है— विरह के कठोर दिन बड़ी ही कठिनाई से व्यतीत करते हुए रूप विवर्ण हो गया। उसे देखकर तुम्हें भ्रम हो सकता है कि यह कोई वाला है या पाले से मारी हुई कमालिनी।¹ मेघदूत में महाकवि का सारा काव्य नैपुण्य पुजीभूत होकर प्रस्फुटित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि कालिदास की समग्र काव्यकला का दर्शन किसी एक स्थान पर देखना है तो मेघदूत का अध्ययन करना चाहिए। कहीं तो उन्होंने शब्दों के नाद द्वारा विषम का परिचय किया।

तस्मादगच्छेरनुकनरवल शैलराजावतीर्ण ।

जह्नौ भार्या सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।।

तो कही सुभग शब्द मैत्री द्वारा छन्द के माध्यम से रमणीयता का संचार किया।

इस प्रकार मन्दाक्रान्ता की अपनी मन्द—मन्द गति विप्रलम्भ शृङ्गार के करुण कोमलभाव की व्यञ्जना करने में विशेष सहायक सिद्ध हुई है और कालिदास ने उनके प्रयोग में विशेष निपुणता का परिचय दिया है। काव्य का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहना ही पड़ता है कि मेघदूत की मन्दाक्रान्ता अपनी समस्त विशेषता लेकर अमर हो गयी। कवि का सम्पूर्ण वाग्वैभव इसमें प्रकट हुआ है। मेघदूत में उत्कृष्ट कल्पना वैभव कलापूर्ण सृजन सौष्ठव भावों की एकाग्रता अद्भुत एवं अद्वितीय ढङ्ग से व्यक्त हुआ है। उनकी मन्दाक्रान्ता दक्षिण से उत्तर दिशा तक— प्रवासी पक्ष का सन्देश उसकी प्रिया तक पहुँचाने का सफल दौत्य कार्य किया है और मृदु और मन्थरगति में काव्य रसिकों को जिस आनन्द की अनुभूति हुई है— वह सचमुच आश्चर्यजनक है। कालिदास से पूर्व किसी भी कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द में काव्यरचना नहीं की थी। यद्यपि हरिषेणकृत प्रयाग शिलास्तम्भ की प्रशस्ति में एक स्थान पर इस छन्द का प्रयोग हुआ है किन्तु इसे काव्य में प्रयोग करने तथा लोकप्रिय बनाने का श्रेय कालिदास तथा उनके मेघदूत को है।

प्रकृतिवर्णन

रघुवश

महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार रघुवश संस्कृत साहित्य का सबसे सुन्दर महाकाव्य है। यहाँ पर महाकाव्य सम्बन्धी सभी तथ्यों का प्रायः समावेश है। विभिन्न ऋतुओं, नदी, समुद्र, पर्वत, वनविहार, जलविहार, विवाह, वियोग, सगामादि सबका यथास्थान वर्णन है। पूर्णता के दृष्टिकोण से 'कीर्ति' महोदय ने रघुवशकार को भारत का वरजिल माना है यद्यपि रघुवश में पदार्थों और दृश्यों का मूर्तस्वरूप उतनी कुशलता से प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि वरजिल रचित स्नीड के छोटे भाग में दीख पड़ता है।^१ वस्तुतः यह कमी कुमारसम्भव में पूरी कर दी गयी है। रघुवश के कथा-प्रबन्ध में इतना अवकाश नहीं था कि पूर्णरूप से प्राकृतिक शुषमा के रूप-विधान या विम्ब-संरचना में ध्यान रखा जाता

चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन करते समय पाण्ड्यदेश, ताम्रपर्णी, कावेरी, मुरला, मलकचायल, प्रागज्योतिषपुर (कामरूप या असम), कम्बोज (कावुल), हिमालय आदि विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन इस प्रकार का है कि प्रतीत होता है महाकवि कालिदास को तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक पर्यटन किया था। ऐसा इसलिये कहना पड़ता है कि मध्यभारत और दक्षिणभारत की नदियों और पर्वत श्रेणियों का सदा वहाँ उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का यथार्थ वर्णन यहाँ दीख पड़ता है। दक्षिण समुद्र तट पर पकी हुई सुपाण्डियों के वृक्ष, मलयाचल की उपत्यकाओं में काली मिर्च की झाड़ियों जिनमें हरे-हरे तोते उड़ रहे थे, लौंग और चन्दन के वृक्ष-मलय और दुर्दर की

१ 'If in perfection of form Kalidasa's poem proclaim his the Vergil of India'
History of Sanskrit literature P १००

पहाडियों पर चन्दन के वृक्ष इस प्रकार सुशोभित थे मानो चन्दन लगे हुए दक्षिण दिशा के दो स्तन हो २ सनिर्विशय यथाकाम तटेष्वालीनचन्दनौ । स्तनाविव दिशस्तस्या शैलौ मलयदर्दुरौ । रघु ४/५१ पाचवे सर्ग में सूर्य और चन्द्र का प्राभातिक वर्णन चारणों के मुख द्वारा हुआ है । नवमसर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन है । त्रयोदश सर्ग में पुष्पकविमान द्वारा आकाश मार्ग से अयोध्या लौटते समय रामचन्द्र जी सीता से उन स्थलो का वर्णन करते हैं जहाँ पर उन्होंने बनवास के दिन व्यतीत किये थे । चतुर्दशसर्ग में महाराज कुश अन्तपुर की सुन्दरियों के साथ जलविहार करते हैं । नवम् सर्ग का वसन्त वर्णन और त्रयोदश सर्ग का सगमवर्णन काव्य-सौन्दर्य के दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है ।

‘रघुवश में भी कालिदास ने प्रकृति के जड स्वरूप का ग्रहण नहीं किया है । कवियों के आश्रमों की प्रकृति सुषमा के भीतर सत्त्वगुण प्रतीत होता है । वहाँ दिव्यशान्ति के दर्शन होते हैं । अरण्यवासी जीव भी सत्त्वोदेक के कारण काम क्रोध को भूलकर परस्पर स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार करते हैं । परमधाम जाते समय श्रीराम ने सरयू को अयोध्यावासियों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी बना दिया है ।

उपरिस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना ।

चक्रे त्रिदिवनिश्रेणि सरयूरनुयायिनाम् । रघु० १५/१००

ये सब वर्णन काल्पनिक नहीं हैं, बल्कि, विस्तृत पर्यटन और सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति के परिणाम हैं ।

परन्तु कामी और व्यसनी अग्निमित्र को सरयू एक कामिनी के समान ही प्रतीत होती है । राजभवन के झरोखे से सरयू के तट पर बैठी हुई राज हंसों की पक्षि अग्निमित्र को ऐसी प्रतीत होती है, जैसे सरयू उन सुन्दरियों का अनुकरण कर रही है जितने नितम्ब प्रदेश में करधनी पड़ी हो

सैकत च सरयू विवृण्वतीं श्रोणिबिम्बमिव हसमेखलम् ।

स्वप्रियाविलसितानुकारिणीं सौधजालविवरैरैत्यलोकयत् ।। रघु १६/४०

उपर्युक्त स्थलो से स्पष्ट है कि कालिदास ने प्रकृति का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया है—

कालिदास ने धरती से लेकर आकाश तक विस्तृत प्रकृति के प्रदाय कोष से उपमान चुने हैं। रघुवश के श्लोको का सौन्दर्य और आकर्षण बहुत कुछ इन नैसर्गिक उपमानों की देन है। लालरगवाली नन्दिनी के मस्तक पर स्वेत वालो की रेखा ऐसी प्रतीत होती है जैसे सन्ध्या के मस्तक पर द्वितीय का चन्द्र सुशोभित हो। रघु १/८३

दिलीप और सुदक्षिण के बीच स्थित नन्दिनी दिन और रात्रि के बीच स्थित सन्ध्या के समान प्रतीत होता है। अग्निमित्र को स्त्रियों के स्पर्श से वैसा ही आनन्द मिलता था जैसे चन्द्रमा के किरणों के स्पर्श से। अतः वह कुमुदों के समान रात भर जागता रहता था और दिन भर सोया करता था।

योषितामुडुपतेरिवर्चिषा स्पर्शनिर्वृतिमसाववाचुवन् ।

आरुरोह कुमुदाकरोपमा रात्रिजागरपरो दिवाशय ।। रघु० १६/३४

महाकवि कालिदास को जीव-जन्तुओं के व्यवहार का अच्छा ज्ञान था। उपमानों में चित्रमयता भी पर्याप्त है। रक्तवर्णा नन्दिनी के ऊपर बैठा हुआ पीले केसरो वाला सिंह ऐसा प्रतीत होता है जैसे गेरू के पहाड़ की ढाल पर पीले फूलों वाला लोध्रवृक्ष फूल रहा हो। (२-२६) ज्योतिषशास्त्र के नक्षत्रों का भी उपमान के रूप में ग्रहण दीख पड़ता है। जनकपुरी में विचरण करते हुए राम लक्ष्मण की उपमा कवि ने दो पुनर्वसु नक्षत्रों से दी है। कालिदास ने स्त्रियों के सौन्दर्य में प्राकृतिक सुषमा के दर्शन किये हैं, तो प्राकृतिक पदार्थों में भी उन्हें नारी सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। अज विलाप कर रहे हैं कि —

कल्यमन्यभृतासु भाषित कलहसीषु मदालस गतम् ।

पृषतीषु विलोलभीक्षित पवनाघूतलतासु विभ्रमा ।। रघु० ८/५६

चतुर्थ सर्ग में १४ से २४ तक ११ श्लोको में शरद ऋतु का वर्णन है। यह वर्णन महाराज रघु के दिग्विजय प्रसंग में है। सरोवरो में कमल के फूल खिले थे। आकाश में सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। धान के खेतों की रक्षा करने वाली कृषकों की स्त्रियाँ ईख की छाया में बैठकर महाराज रघु का गुणगान गा रही थीं। शरद ऋतु के व्याज से कवि ने महाराज रघु का यशोगान ही किया है—

पंचम सर्ग में ६५ से ७५ तक ११ श्लोको में महाराज अज को जगाने के लिये चारणों के द्वारा आकर्षण प्रभातवर्णन हुआ है। मधुर कोमलकान्त पदावलियाँ शब्दों का संगीतात्मक प्रयोग अर्थकोमलता और भावपेशलता इस वर्णन की विशेषता है। अभिव्यजक पदावलियों के प्रभाव से सुरम्य सुशीतल प्रभातकालीन वर्षच्छटा अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ नेत्रों के सामने नाचने लगती है। उन्होंने व्यजना के द्वारा शान्त और सुखद प्रभातकालीन सुषमा का विम्बग्रहण कराने का स्तुत्य प्रयास किया है।

निद्रावशेन भवताऽप्यनवेक्ष्यभाणा पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।

लक्ष्मीर्विनोदयति मेन दिगन्तलम्बी सोऽपि त्वदाननरुचि विजहाति चन्द ।।

रघु० ५/६७

प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते समय कालिदास में तीन विशेषताएँ साधारणतया पायी जाती हैं। शब्दों के दृष्टिकोण से पदावलियों में मधुरिमा रहती है। अर्थ में चित्रमयता रहती है। पूर्णता लाने के लिये उस दृश्य से सम्बद्ध सामान्य तथ्यों का समावेश रहता है। प्रभातवर्णन में भी सेधानमक खाकर पागुर करने वाले अश्वों पिजरो में गीता गाने वाले शुकों, सुगन्धित पवन का बहना, कमलों का खिलना भ्रमरों का गुँजार, राजहंसों की क्रीडा आदि व्यापारों का समावेश है।

नवम् सर्ग में २५ से ४७ तक श्लोको में वसन्त ऋतु का मनोरम वर्णन है। कालिदास की प्रतिभा का वसन्त वर्णन में जितना अधिक उन्मेष हुआ है उतना अन्य ऋतुओं के वर्णन में नहीं। संस्कृत साहित्य में कालिदास जैसे वसन्त वर्णन करने वाला नहीं है। अन्य कवियों ने तो कालिदास के भावों का ही वर्णन करने का प्रयास किया है परन्तु कालिदास में मौलिकता है। पंचम वर्णों के प्रयोग के द्वारा अनुप्रास की सृष्टि कोमल शब्द संगीत को जन्म देती है। उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने चित्रमयता की सृष्टि की है। परन्तु दशरथ के पक्ष में वसन्त वर्णन सम्भोग श्रृंगार का उद्दीपन है, परन्तु यह चीज केवल कथा प्रबन्ध के दृष्टिकोण से है। कालिदास ने वसन्त ऋतु का ग्रहण आलम्बन विभाव के रूप में ही किया है। पदलालित्य और अर्थ सौंदर्य वसन्त वर्णन से सम्बद्ध सभी श्लोको में है—

वसन्त का आगमन धीरे—धीरे होता है। कालिदास सूक्ष्मदर्शी रससिद्ध कवि थे। वसन्त के आविर्भाव और विकास के क्रम का जितनी सूक्ष्मता से उन्होंने वर्णन किया है उसी सूक्ष्मता अन्यत्र नहीं देख पड़ती। फाल्गुन और चैत्र के महीने में वन प्रदेशों में जितना सौन्दर्य किशुक के फूलों का रहता है उतना अन्य जाति के फूलों का नहीं। सम्पूर्ण पलाशवृक्ष इन फूलों से लाल पड़ जाता है। किशुक की कलियों की उपमा कालिदास ने प्रियतम के शरीर पर लगे हुए कामिनी के नखक्षत्रों से दी है।

उपहित शिशिरापगमश्रिया मुकुलजालनशोभत किशुके ।

प्रणयिनीव नखक्षतमण्डन प्रमदया मदयापितलज्जया ।।

रघु० ६/३१

आम्रमजरी को कामदेव के पंचबाणों में से एक बाण माना है। कवियों ने आम्रमजरी को सबसे अधिक कामोद्दीपक माना है। कालिदास ने मधुमास की शोभा का चित्रण करते समय आम्रमजरी का विशेष ध्यान रखा है। इसका सौन्दर्य किसी अभिसारिका से कम नहीं है—

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा ।

अमदयत्सहकारलता मन सकलिका कलिकामजितामपि ।।

रघु ६/३५

वसन्त मे नारी—सौन्दर्य और उनके कामोद्दीपक विलासो की ही प्रधानता रहती है। कालिदास ने मधुमास की प्रकृति—सुषमा पर नारीत्व का आरोप किया है। वन की लताएँ भौरो के गुँजार के वहाने गीत गा रही थी। विकसित कुसुमो की कान्ति ही उनके दोंतों की शुभ्र चमक थी। वायु के कारण उनकी शाखाये हिल रही थी अतः प्रतीत होता था जैसे वे विविध हाव—भाव दिखा रही हैं।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतय कुसुमकोमलदन्तरूचो बभु ।

उपवनान्तलता पवनाहतै किसयै सलयैरिव पाणिभि ।।

रघु० ६/३५

वृक्षो की सुन्दरी नायिका नव मल्लिका लता भी वनस्थली में अपना सौन्दर्य विखेर रही थी। वह अपने मकरन्द रूपी मदिरा के गन्ध से भरे लाल—लाल किसलयरूपी अधरो पर फूलों की मुस्कान लेकर सभी को विह्वल कर रही थी।

अमदयन्मधुगन्धसनाथया किसलयाधरसङ्गतया मन ।

कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका स्मितरूचा तरुचारुविलासिनी ।।

रघु ६/४२

रघुवश का वसन्त वर्णन काव्य सौन्दर्य का दृष्टिकोण जितने उच्च स्तर का है, उतने ही उच्च स्तर का भाव सौन्दर्य और कोमल रूप योजना के दृष्टिकोण से भी है। वसन्त का वर्णन करते समय कालिदास की काव्य प्रतिभा अपने उत्कर्ष के चरमविन्दु का स्पर्श करने लगती है—

त्रयोदश सर्ग मे पुष्पक—विमान से देखे गये मार्ग के दृश्यो का वर्णन है। आकाश से दूर चढकर अगर धरती के दृश्य देखे जाय तो उसकी पूर्ण स्वरूप अपनी सभी विशेषताओ के साथ दीख पडेगा। राम ने इन स्थलो मे वनवास के दिन बिताएँ थे। अत इन परिचित स्थलो के साथ उनकी सुखद और दुःखद स्मृतियों जुडी है।

षोडश सर्ग मे ४३ से ५३ तक ११ श्लोको मे ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है। यह वर्णन कुश की सुन्दरिया के जल बिहार की भूमिका मात्र है। तीव्र आकर्षण, भाव सौष्ठव और सहानुभूति की यहाँ भी कमी नहीं है। कालिदास के मानसिक जगत का निर्माण ही इन्ही तत्वो से हुआ है—

कालिदास के समय मे ग्रीष्म के प्रारम्भ मे तीन चीजे विशेष प्रिय मानी जाती थी। मनोहर गन्ध वाली आम की बौर और उनके फल चुराती मदिरा और नये पाटल के फल।

मनोज्ञगन्ध सहकारभङ्गम् पुराणशीधु नवपाटल च।

सम्बन्धनता कामिजनेषु दोषा सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टा ॥

रघु० १६/५२

जलविहार का भी सुन्दर वर्णन है। जल क्रीडा करने वाली रानियो के कानो से शिरीष के कर्णफूल निकलकर जल मे तैर रह थे। मछलिया उन्हे सेवार समझकर मुँह मारने दौड रही थी—

कालिदास के उपमान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी खेर प्रतीत होते है। पात्र के मानसिक भावो की अभिव्यक्ति प्राकृतिक उपमानो के द्वारा जिस सुगमता से कर देते है, उतना अन्य किसी तरीके से नहीं कर पाते—

शशिन पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचर पतत्रिणम्।

इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मा दहे ॥

रघु ८/५६

पुष्पक विमान पर आरूढ राम भी सीता से वियोगजन्य दुःख की अभिव्यक्ति किया है। कालिदास ने विरह वेदना की ही केवल अभिव्यक्ति नहीं की सीता मिलन से उत्पन्न सुख और दाम्पत्य जीवन की स्वाभाविक मधुरिमा की भी अभिव्यजना करते समय उन्होंने प्राकृतिक उपादानों का ही आश्रय लिया है।

अत्रावियुक्तानि रथाडनाम्नामन्योन्यदत्तोपत्वल केसराणि ।

द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये । सस्पृहमीक्षितानि ।।

रघु १३/३१

कालिदास केवल भावुक ही न थे उन्हें प्राकृतिक उपादानों का वैज्ञानिक ज्ञान भी था। मानवीय परिस्थितियों की आश्रय लेकर वे ऐसा उपामान चुनते हैं जो बराबर तौल का होता है और उसमें औचित्य और अनुकूलता रहती है।

कालिदास ने प्रकृति—चित्रण करते समय रूढिवादिता स्वीकार की।^१ उन्होंने मुग्ध दृष्टि से भारत के विभिन्न स्थलों की नैसर्गिक शोभा देखी थी। इसका अनिर्वचनीय प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा था। चित्रकूट सगम कावेरी और सरयू आदि के वर्णन उसी के फल हैं। प्रथम सर्ग में ४६ से ५३ तक ५ श्लोको में वरिष्ठ जी के आश्रम का वर्णन है। ऋषियों की कन्याएँ वृक्षों की जड़ों में पानी देकर हट गयी थीं। कालिदास ने निश्चय ही ऋषियों के आश्रमों में घूम—घूम कर वहाँ के रहन—सहन जीव जन्तुओं के व्यवहार तथा प्राकृतिक शोभा का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। तभी इतनी कुशलता से 'रघुवश' में वाल्मीकि, अत्रि सुतीक्ष्ण और शरभग आदि कवियों के आश्रमों का भी वर्णन है—

संक्षेप में 'रघुवश' का प्रकृति—चित्रण प्रायः मनोवैज्ञानिक, भावाभिव्यजक और आलम्बन विभाव के रूप में है। वर्णन—शैली में स्वाभाविकता, सरलता और मधुरिमा है। रघुवश में शिष्टाश्रम और शाकुन्तलम् में कण्वाश्रम का वर्णन कर सके हैं।

कुमारसम्भव

प्रकृति—चित्रण के दृष्टिकोण से कालिदास का कुमारसम्भव सस्कृत साहित्य का नि सन्देह सबसे सुन्दर महाकाव्य है। कालिदास ने कथा प्रबन्ध ही ऐसा चुना है, जिसका वर्णन पूर्णरूप से हिमालय की अधित्यकाओ तथा उपत्यकाओ में ही केन्द्रित है। यह प्रकृति—नटी के लास्य की ऐसी रगभूमि है जहाँ कोई ऐसा सर्ग न मिलेगा जो किसी न किसी आकर्षक सौन्दर्य का शब्द चित्र न प्रस्तुत कर रहा हो। रघुवश में प्रकृति मूक है परन्तु कुमारसम्भव में चेतन प्रकृति का वर्णन है। पर्वत राज हिमालय ऋतुराज वसन्त काम रति मन्दाकिनी अग्नि सूर्य चन्द्र सप्तर्षि कृतिकाये और नन्दी—सभी इस महाकाव्य के पात्र हैं। पात्र दिव्य हैं, कथा दिव्य है अतः प्रकृति का दिव्य होना अनिवार्य है। इस दिव्यता के होने पर श्री कालिदास ने सम्पूर्ण वर्णन मानवीय व्यवहार की छाया में ही प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि 'कुमारसम्भव' का अध्ययन करने के पश्चात् 'पूजा' की भावना जाग्रत नहीं होती बल्कि काव्यमृतमहासिन्धु में निज्जन करता वेसुध हो जाता है। आचार्य मम्मट ने रस की इसी भावना को 'अन्यत्सर्वमिव तिरोदघत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् इत्यादि विशेषताओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

कालिदास एक ओर जहाँ प्रकृति के स्वाभाविक शब्द—चित्र निर्माण में अत्यन्त कुशल है, वहाँ वे दूसरी ओर अपनी नवनवोन्मेष शालिनी कल्पनामयी—प्रतिभा के सहारे अलौकिक एवं दिव्य विभूतियों का निपुणता पूर्वक वर्णन करने में समर्थ है। कालिदास रूढिवादी या परम्परावादी नहीं थे। उनकी उक्तियाँ उत्प्रेक्षाएँ तथा सौन्दर्य विधान कुछ ऐसा कि उनके जैसा वर्णन नहीं कर सकता है, जो मुग्धदृष्टि से प्रकृति का अद्भुत सौन्दर्य निहारता हुआ सब कुछ भूल जाता है—

निसर्ग कन्या शकुन्तला और पर्वत राज हिमालय की पुत्री उमा—सस्कृत साहित्य के लिये दो कालिदास की महान देन है। ये प्रकृति देवी के शृंगारससारहृदयसिन्धुसम्भूत दो पूर्ण निष्कलक चन्द्र हैं। इसकी तुलना विश्व साहित्य में कहीं भी नहीं है। वर्डवर्थ ने ल्यूसी (Lucy) नामक प्रकृति कन्या की तुलना की है परन्तु सौन्दर्य का इन्द्रजाल त्याग तपस्या वात्सल्य और स्वाभिमान जो शकुन्ता और पार्वती में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मिल्टन के पैराडाइसलास्ट (Paradise Lost) में (Eve) का सौन्दर्य और चरित्र उतना विकसित और हृदयस्पर्शी नहीं है कि उसे शकुन्तला और पार्वती के समकक्ष रखा जा सके। चरित्र की उज्ज्वलता और पातिव्रत के दृष्टिकोण से इव (बुक ४ लाइन्स ६३५—५६) के लिये शकुन्तला और पार्वती उपमान रूप हो सकती हैं उपमेयरूप नहीं। प्रकृति और मानवलोक के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली ये दो स्वर्णिम श्रृंखलाएँ हैं।

कुमारसम्भव का प्रकृतिचित्रण आलम्बन—विभाव के रूप में है। अष्टम सर्ग का सन्ध्या और चन्द्रोदयादि का वर्णन भी केवल पात्र के पक्ष में ही सम्भोग शृंगार का उद्दीपन हो सकता है, श्रोता या पाठक के लिए यह भी आलम्बन रूप है। हिमालय वसन्त, सन्ध्या, अन्धकार और चन्द्रोदय की भावनाओं के रंग से अभिरजित करके मधुर चित्र खींचने वाले कालिदास ही पहले कवि हैं। वसन्त ऋतु का चित्रण करते समय कालिदास की बराबरी बाल्मीकि और अश्वघोष भी नहीं कर पाते—

कुमारसम्भव का प्रत्येक श्लोक सरस, मधुर और आकर्षक है। आचार्य आनन्द वर्धन और अभिनवगुप्त ने जिस रसध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है। उसी की अजसधारा यहाँ प्रवाहित है। कालिदास, काव्यशास्त्र सगीतशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। इन्हीं विशेषताओं के कारण उनके कतिपय श्लोक, शब्दसौष्ठव शब्दसगीत अभिव्यजना और भावों की

कोमलता के दृष्टिकोण से संस्कृत साहित्य में अतुलनीय है। यहाँ पर स्थान-स्थान पर नवीन सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। उनका काव्य रसानुभूति काल में सदृश्य को अलौकिक जगत् में खींच ले जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कवि ने इसी रहस्य की ओर संकेत किया है।

अहोराग

तवास्मि गीतरागेण हरिणा प्रसभ दृत ।

यथा राजेव दुष्यन्त सारङमेणातिरहसा ।

इसी आत्मविस्मरणकारिणी स्थिति को अभिनवगुप्त के व्यतिरेक-तुरीयातीत स्थिति माना है।

जहाँ कुमारसम्भव की रसानुभूति सहृदय को खींच ले जाती है। 'डा० कान्ती चन्द्र पाण्डेय' के शब्दों में यह वह स्थिति है जहाँ चैतन्य की आत्मा में समाहित हो जाती है। दीपक की निश्चय लौ के समान केवल आत्मा ही प्रकाशित रहती है आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में स्थित रहती है। इसी वैशिष्ट्य के कारण आचार्य आनन्दवर्धन ने कालिदास की गणना वाल्मीकि के साथ करके उन्हें महाकवि माना है—

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ के १७ श्लोको में हिमालय का विम्ब ग्राही वर्णन है। पर्वतराज हिमालय के पार्थिवस्वरूप का चित्रण करते समय कालिदास ने केवल कल्पना का ही आश्रय नहीं लिया। हिमालय के वनों में गरजते हुए सिंहों मदमस्त गजराजों और लम्बी पूँछ वाले चामरमृगों ने भी उनके मन को अपनी ओर खींचा होगा। कालिदास को वाल्मीकि के बाद भारत का दूसरा महाकवि कहा जा सकता है जिन्होंने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति का यहाँ की ऋतुओं तथा विविध नैसर्गिक व्यापारों का वैज्ञानिक की तरह सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण किया है। तदुपरान्त महाकवि की तरह उनके सौन्दर्य का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किया है। पढ़ते

ही या श्रवण करते हो हिमालय की भव्यमूर्ति मन में आ जाती है अतः हिमालय वर्णन श्रोता या पाठक के भावों के आलम्बन रूप में है।

हिमालय की भावना कवि ने धरती के स्वर्ग के रूप में की है। इसी से यहाँ यक्ष अप्सराएँ और गन्धर्व निवास करते हैं।

अस्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज ।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ॥

कु० सं० १/४

कालिदास के समय में हिमालय से प्राप्त भोजपत्र का लिखने के कार्य में विशेष उपयोग होता था। उन्होंने स्वयं कहा है कि भोजपत्र में बने हुए अक्षर ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे हाथी की सूँड पर लाल मन्दकिया रखी हो

पद तुषारस्रुतिधौतरक्त यरिमन्नदृष्टवापि हतद्विपानाम् ।

विन्दन्ति मार्गं नखरध्रमुक्ताफलैः केसरिणा किराता ॥ कु० सं० १/६

हिमालय में बॉसों के सघन वन हैं। उनके छिद्रों में जब वायु भर जाती है तो अनायास वेणु की सुरीली ध्वनि निकलने लगती है जैसे ये बॉस किन्नरों के गीतों के साथ सगत कर रहे हैं।^१

हिमालय की उपत्यकाओं में देवदारु के सघन वन पाए जाते हैं। हिमालय के मदमस्त हाथी जब देवदारु के वृक्षों में कनपटी खुलजाने लगते हैं तो उनकी रगड़ से ऐसा सुगन्धित दूध निकलता है कि हिमालय की सभी चोटियों महक से गमक उठती हैं। कालिदास ने हर श्लोक में कई-कई व्यापारों का एक साथ समावेश करके वर्णन किया है। हिमालय की चोटी पर सिद्ध लोक धूप का आनन्द ले रहे हैं और उनके ठीक नीचे बादल जलवृष्टि कर रहे हैं— इस प्रकार का दृश्य अनोखा ही है। जिन्होंने यह दृश्य देखा होगा, वे प्रकृति की लीला देखकर अवश्य गदगद हो गए होंगे— हिमालय की

घाटियों में सजीवनी आदि स्वप्रकाशित औषधियाँ पायी जाती हैं। कालिदास ने किरातो के जीवन के साथ इनका आकर्षण मेल बैठा दिया है।

वनेचराणा वनितासखाना दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभास ।।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूरा सुरतप्रदीपा ।। कु०स० १/१०

स्वकाशित औषधियाँ हिमालय की गुफाओं में पायी जाती हैं। अतः किरात लोग अपनी प्रियाओं के साथ जब इन गुफाओं में रात के समय विहार करते हैं, तो ये जड़ी बूटियाँ उनकी काम क्रीड़ा के समय बिना तेल के दीपक का कार्य करती हैं। हिमालय पर निवास करने वाले प्राणियों तथा वहाँ की वनस्पतियों का वर्णन करने के बाद कालिदास ने भागीरथी की निर्मल धारा का भी वर्णन किया है। यहाँ पर भी एक साथ कई व्यापार आपस में सम्बद्ध हैं। हिमालय के पवन के साथ भागीरथी के जल-कणों का फैलना देवदारु के वृक्षों का कोंपना, मोर की पूँछों का छितराना किरातो का मृगों की खोज में निकलना तथा वायु सेवन करना—इतने व्यापार परस्पर जुड़े हुए हैं—

भागीरथीनिर्झरसीकाराणा बोढा मुहु कपितदेवदारु ।

यद्वायुरन्विष्टमृगै किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्ह ।। कु०स० १/१५

हिमालय के भौतिक स्वरूप के अलावा दिव्य स्वरूप है। वह 'अचल' ही नहीं चल भी है। कालिदास के ग्रन्थ के पहले श्लोक में ही देवतात्मा पद के द्वारा हिमालय के इस स्वरूप की अभिव्यक्ति कर दी है। कुमारसम्भव की नाट्यमुनि में हिमालय का यही स्वरूप दीख पड़ता है। विश्व के किसी भी देश के साहित्य में सम्भवतः पर्वत के स्वरूप का इतना भव्य चित्रण न हुआ होगा जितना कि 'कुमारसम्भव' में कालिदास ने पहली बार हिमालय के मानवीय स्वरूप का वर्णन छठे सर्ग के ५१ वें श्लोक में किया है। हिमालय का यह स्वरूप उसकी भौतिक संरचना के अनुरूप ही है—

इस नगर मे जरा—मृत्यु आदि सासारिक व्याधिया नही है। नगर के बाहर गन्धमादन नामक सुगन्धित पर्वत स्थित है। गन्धमादन के कल्पवृक्षों की शीतल छाया मे विद्यार्थी पढ़कर विश्राम करते है। हिमालय की इस दिव्य राजधानी का दर्शन एक बार सप्तर्षियों ने किया तो वे मन्त्रमुग्ध होकर सोचने लगे कि स्वर्ग के लिये इतनी तपस्या करके हम व्यर्थ ही ठगे गये—

अथ ते मुनयो दिव्या प्रेक्ष्य हैमवत पुरम्।

स्वर्गाभिसधिसुकृत वन्चनामिव मेनिरे ॥ कु०स० ६/४७

हिमालय के मानवीय स्वरूप और उसकी राजधानी औषधियप्रस्थपुरी के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास आकाश मे चित्र कर्म प्रस्तुत करने के पक्षपाती न थे। उनकी कल्पनाए भी पुराणों की मान्यताओं से अनुप्राणित है। कालिका पुराण के ४९ वे अध्याय के अनुसार औषधिप्रस्थपुरी के पास ही एक चोटी पर गंगाजी पहले पहल ब्रह्मपुर से आकर गिरी थी।

पर्वतराज हिमालय के राजभवन मे भी वही सम्बन्ध वही भाव आकाशाए मानसिक द्वन्द्व दीख पड़ते है जो मानवीय व्यवहार मे प्राय दीख पड़ते है। पिता हिमालय के हृदय मे भी पार्वती को देखकर वात्सल्य की दुग्ध धार वहने लगती है।

महीभृत पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥

कु० स० ९/२७

इस प्रकार कालिदास ने हिमालय के विविध स्वरूप का चित्रण किया है। अपने अचल स्वरूप मे हिमालय भारत के ऊपर मे पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र का स्पर्श करता हुआ पर्वतराज है, अपने मानवीय रूप से वे पार्वती के पिता है। हिमालय के दोनों स्वरूप आपस मे मिलते जुलते है। दोनों के वर्णन मे कालिदास को पूर्ण सफलता मिली है—

कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में तारकासुर के आसुरी वैभव का वर्णन है। सूर्य चन्द्र वायु समुद्रादि सभी उनके आतंक से कँपते हैं। वेचारी ऋतुओं की भी विचित्र दशा है। वे अपने समय का विचार छोड़कर एक साथ फुलवारी की मालिनो की भोंति दूसरी ऋतु के फूलों को बिना तोड़े हुए अपने समय के फूल उपजाकर तारकासुर की सेवा करती हैं।

पर्यायसेवामुत्सृज्यपुष्पसभारतत्परा ।

उद्यानपालसामान्यमृतवस्तमुपासते ।। कु०स० २/३६

कालिदास ने हिमालय की ही तरह ऋतुओं अधिष्ठाता देवता की कल्पना की है। यहाँ उन्हीं से तात्पर्य है।

तृतीय सर्ग में भगवान् शंकर की समाधि भग्न करने के लिये कामदेव अपने मित्र वसन्त को लेकर हिमालय की रगभूमि पर उतरता है। काम की पत्नी रति भी साथ ही है। इस सर्ग का वर्ण्य विषय प्रायः एलीगारिकल (Allegorical) है। रति शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। वसन्त का नैसर्गिक सौन्दर्य उसके उद्बोधन में सहायक होता है। रति जब तरलता को प्राप्त हो जाती है तभी कामजन्य विलास सम्भव होते हैं। इसीलिये रति काम की पत्नी है और रति को उद्वुद्ध करने वाला औषधि वसन्त काम का अत्यन्त विश्वसनीय मित्र है। कालिदास का भी ऐसा ही मत है।।

मधुश्च ते मन्मथ । साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव ।

समीरणो नोदमिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ।। कु०स० ३/२१

कोई कहे या न कहे काम का साथी तो वसन्त ही है। पवन से कहने कोई नहीं जाता कि तुम अग्नि की सहायता करो। अग्नि को उद्दीप्त करना तो उसका स्वभाव ही है।

कालिदास ने व्यवहारिक काम ही अपनाया है। सबसे पहले वसन्त हिमालय की पावन भूमि में प्रवेश करके अपने सौन्दर्य का इन्द्रजाल बिखेर देता है। इसके बाद रति को साथ लेकर कामदेव इस नाट्यभूमि पर उतरता है—

त देशमारोपितपुष्पचाये रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।

काष्ठागतस्नेहरसानुविद्ध द्वन्द्वानि भाव क्रियया विवबु ।। कु०स० ३/३५

इस सर्ग के वसन्त वर्णन में भी हिमालय वर्णन जैसे विविध वैशिष्ट्य का समावेश है। एक तरफ वसन्त ऋतु की भौतिक पुष्प समृद्धि और नैसर्गिक सुषमा का मनमोहक चित्रण है और दूसरी तरफ वसन्त स्वयं अपने मानवीय स्वरूप में वहाँ उपस्थित है। वसन्त अपने सौन्दर्य का जाल जब बिखेरने लगता है तो सूर्यदेव असमय में दक्षिणायन से उत्तरायन हो गये। कालिदास ने अपनी भावनाओं के रंगों से अभिरजित करके इन सबका वर्णन किया है। कामदेव के पंचवाणों में आम्रमजरी सबसे प्रसिद्ध है। वसन्त अपने मित्र के लिये वाण तैयार कर रहा था। वन प्रदेश में वसन्त लक्ष्मी का अद्भुत श्रृंगार देख पड़ता है।

लग्नद्विरेफान्जनमाभाक्तचित्र मुखे मधुश्रीस्तिल प्रकाश्य ।

रागेण वालारूणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलङ्चकार ।। कु०स० ३/३०

कामदेव अपनी ही पत्नी रति को लेकर जब इस नाट्य भूमि में उतरा तो चराचर विश्व काम की उद्दाम लहरों में बहने लगा। भौरा अपनी प्यारी भौरी के साथ एक ही फूल की कटोरी में रस पीने लगा। काला हिरण अपनी प्यारी हिरणी को सींगों से खुजलाने लगा और हिरणी उसके खुजलाने का आनन्द लेती हुई आँखें मूँदकर चुपचाप बैठ गयी। गजराज अपनी सूँड से कमलों के पराग से सुरभित जल निकाल कर अपनी प्रियाओं को पिलाने लगे। जिन वृक्षों को हम अचेतन समझते हैं वहाँ भी काम की छाया पड़ने पर स्पन्दन होने लगा।

पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्य स्फुरत्प्रावालोष्ठमनोहराभ्य ।

लतावधूभ्यस्तखोऽप्यवापुर्विनमशाखाभुजबन्धनानि । कु०स० ३/३६

वृक्ष अपनी शाखा रूपी भुजाओं को फैलाकर उन प्यारी लताओं का

आलिगन करने लगे जिनके बड़े-बड़े फूलों के गुच्छों के रूप में स्तन लटक रहे थे कोमल और अरुण किसलयों के रूप में जिनके ओष्ठ खिल रहे थे। साहित्यशास्त्र के आचार्यों के अनुसार यहाँ पर शृंगार रस का आभास मात्र होता है। अतः यह रसाभास हुआ परन्तु कालिदास का उद्देश्य रसाभास का चित्रण करना नहीं है। उनका उद्देश्य यहाँ यह स्पष्ट करता है कि अनुकूल वातावरण प्राप्त करके कामवासना जड़ चेतना सभी को अपने पाश में आश्रय कर लेती है। भगवान् शंकर की समाधि की दूसरी स्थिति है। वे दीपक की लौ के समान समाधिस्थ हैं। नन्दी अपनी सुवर्ण दण्ड लेकर सभी गुणों को शान्त कर रहे हैं। उनके आदेश पर वृक्षों ने हिलना बन्द कर दिया। सभी जीव जन्तु शान्त होकर बैठ गए। पशु भी जहाँ खड़े हो गये पक्षियों ने कलरव बन्द कर दिया। यहाँ तक कि सारा वन प्रदेश एक ही सकेत में ऐसा लगने लगा मानो चित्र में खिचा हो।

निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।

तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवावतस्थे ।। कु० सं० ३/४२

समाधिस्थ शंकर पर वसन्त के पार्थिक सौन्दर्य का प्रभाव नहीं पड़ता। कामदेव की भी शक्ति प्रतिहत हो जाती है। परन्तु मालिनी और विजया नामक वनदेवियों को आता देखकर उसकी खोयी हुई शक्ति पुनः लौट आती है। अशोक के किसलयों स्वर्णिम कान्ति वाले कर्णिकार के पुष्पों तथा मोती जैसे उजले सिधुवार के फूलों से विभूषित पार्वती स्तनों के भार से झुकते हुए शरीर पर प्रातः कालीन सूर्य के अरुण प्रकाश के समान कान्ति वाले वस्त्र धारण किए हुए इस प्रकार चली आ रही है, जैसे फूलों के गुच्छों के भार से झुकी हुई लाल-लाल किसलयों वाले चलती फिरती लता हो।

आवर्जिता किचिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्।

पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सचारिणी पल्लविनी लतेव ।। कु० सं० ३/५४

उसी समय परमात्मा की परम ज्योति का दर्शन करके समाधिस्थ शिव ने नेत्र खोले। पार्वती ने मन्दाकिनी के कमलो की माला शिव के कण्ठ में डाल दी। कामदेव के वाण प्रहार के कारण उन्हे मन में पार्वती के प्रति कुछ आसक्ति सी प्रतीत हुई। वसन्त का वैभव पार्वती की अत्यधिक सौन्दर्य कामदेव का सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। परमयोगी शिव के तृतीय नेत्र से प्रादुर्भूत क्रोधाग्नि की लपटों से काम जल जाता है।

कालिदास ने पचम सर्ग में ४ श्लोको में (१४—१७) उस आश्रम का चित्रण किया है, जहाँ रहकर पार्वती तपस्या किया करती थी। वहाँ के गुफाओं लताओं और पशु-पक्षियों के एक ही साथ रखने के कारण उनका बड़ा स्नेह था।— कु०स० ५/१४

अष्टमसर्ग में सन्ध्या सूर्यास्त अन्धकार चन्द्रोदय का आलंकारिक वर्णन है। इन व्यापारों का एक पूरे सर्ग में वर्णन करने वाले कालिदास प्रथम कवि हैं। उत्तरकालीन कवियों ने अपने महाकाव्यों में इस क्रम का अनुसरण करके अनिवार्य रूप से सन्ध्या, सूर्यास्त अन्धकार और चन्द्रोदय का वर्णन किया है। अन्तर केवल इतना है कि अन्य कवियों ने इन तथ्यों का वर्णन सम्भोग श्रृङ्गार की उद्दीपन सामग्री के रूप में किया है। सूर्योदय और चन्द्रोदय के बीच अन्धकार कृष्ण पक्ष में ही दीख पड़ता है। कालिदास के पक्ष में यह मौलिक उद्भावना है परन्तु अन्य कवियों ने कालिदास का अनुसरण करके चन्द्रोदय के पूर्व अन्धकार वर्णन की परम्परा ही बना ली थी। कुछ कवि तो ऐसे हैं जो चित्रण तो पूर्णिमा के चन्द्र का करते हैं परन्तु परम्परा निभाने के लिये उसके पहले अन्धकार का वर्णन करते हैं—

गन्धमादन पर्वत पर भगवान शिव उमा के साथ विहार कर रहे थे। इसी पृष्ठभूमि में सम्पूर्ण वर्णन हुआ है। इस दृष्टिकोण से यह वर्णन शिव और पार्वती के पक्ष सम्भोग का उद्दीपन हो सकता है, परन्तु रूप योजना, बिम्ब

ग्राहिकता, सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति और भाव कोमल के दृष्टिकोण से ये वर्णन श्रोता या पाठक के पक्ष में आलम्बन रूप ही है। सम्भवतः कालिदास ने हिमालय की उपत्यकाओं में सन्ध्या सूर्यास्त और चन्द्रोदय के जिन मनोरम दृश्यों का सौन्दर्य देखा था उसी का सरस और मधुर पदावलियों में सश्लिष्ट वर्णन किया है। उपमा एवं उत्प्रेक्षा की सिद्धि के लिये उन्होंने जिन उपमानों को प्रयोग किया है वे काल्पनिक न होकर उन सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति पर आधारित हैं। सन्ध्या सूर्यास्त और चन्द्रोदय का चित्रण करते समय कालिदास ने प्रकृति के चेहरे पर होने वाले एक-एक क्षण के परिवर्तन को ध्यान से देखकर उन चित्रों की झोंकी सजा दी है।

सन्ध्या के भौतिक सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ ही साथ कालिदास ने सबके आध्यात्मिक महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। भगवान् शंकर का कहना है—

निर्मितेषु पितृषु स्वयंभुवा या तनु सुतनु पूर्वमुज्झिता ।

सेयमस्तमुदय च सेवते तेन मानिनि ममात्र गौरवम् ।।

कु० स० ८/५२

कालिदास के सभी उपमान एक विशेष प्रकार का कोमल और रगीन चित्र खींच देते हैं। यह चित्रमयता काल्पनिक नहीं है। वल्कि सन्ध्याकालीन दृश्यों का ध्यान से देखने पर जो अनुभव प्राप्त होता है यह उसी का प्रतिफल है। लाल-लाल सूर्य की हल्की सी झलक पश्चिम दिशा में दीख पड़ती है। कवि ने पश्चिम दिशा की भावना उस कन्या के रूप में की है जिसके मार्ग पर केशर से भरे हुए वन्धुजीव के फूल का तिलक लगा हो।

लाल-पीले और भूरे रंग के बादलों को देखकर ऐसा लगता है जैसे सन्ध्या देवी ने बादलों के हाथ में तूलिका लेकर रंग दिया हो।

रक्तपीतकपिशा पयोमुचा कोटय कुटिलकेशि । भान्त्यम् ।

द्रक्ष्यसि त्वमिति साध्येवेलया वर्तिकाभिरिव साधुवर्तिता ।। कु०स० ८/४५

सन्ध्या के समय अन्य प्राणी भी विश्राम के लिये अपनी निवास भूमि की ओर प्रस्थान करने लगते हैं। सल्लकी के वृक्षों से सुवासित वन—भूमि को छोड़कर राजराज कमल सरोवरो की ओर जा रहे हैं जैसे जगली सुअर दिन भर तालाब के कीचड़ को मथकर अपने शरीर की गर्मी मिटाते हैं परन्तु अब वे भी बाहर निकल आए हैं। उनके सफेद दाँत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे खाए हुए मृणाल की डठल अटकी हो। वेचारे चक्रवाक पक्षी भी आसन्न वियोग से विह्वल होकर अपने प्रियाओं के गले मिल रहे हैं। इस प्रकार कालिदास ने सन्ध्या का पूर्ण चित्र अंकित किया है भारतीय सन्ध्या का यही स्वरूप है। अन्धकार का वर्णन कालिदास ने दो ही श्लोको में किया है, परन्तु जितना पूर्ण और आकर्षण चित्र उन्होंने खींच दिया है। उतना अन्धकार के स्वरूप का चित्रण अन्य कोई कवि नहीं कर सका अँधेरा फैल जाने से न तो इस समय ऊपर कुछ दिखाई दे रहा है न नीचे न आस—पास और न आगे—पीछे। रात्रि के समय सारा ससार इस प्रकार अँधेरे में घिर गया है जैसे गर्भ की झिल्ली से लिपटा हुआ बालक पड़ा हो।

नोर्ध्वभीक्षणगतिन चाव्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठत ।

लोक एष तिमिरोल्ववेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ।।

कु० स० ८/५६

इस अँधेरे में उजले और मैले स्थिर और गतिशील, सीधे और टेढ़े—सभी एक से हो गये हैं भाड़ में जाय ऐसे दुष्टों का राज्य जहाँ भले—बुरे एक ही घाट उतारे जाते हैं।

शुद्धमाविलमवस्थित चल वक्रमार्जवगुणान्वित च यत् ।

सर्वमेव तमसा समीकृत धिङ्महत्त्वमसता हृतान्तरम् ।। कु० स० ८/५७

चन्द्रोदय का वर्णन कालिदास ने उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के द्वारा किया है। कहीं पर पूर्व दिशा रात्रि ओर ताराओं को नासिका के रूप में तथा चन्द्रमा को नासिका के रूप में तथा चन्द्रमा को नायक के रूप में मानकर भावमय श्रृङ्गारिक चित्र खींचा है। चन्द्रोदय वर्णन शिव पार्वती के पक्ष में सम्भोग श्रृङ्गार का उद्दीपन है परन्तु चित्रमयता और भावेगलता के दृष्टिकोण से यह वर्णन भी श्रोता या पाठक के पक्ष में आलम्बन रूप ही है। कालिदास ने एक-एक क्षण के परिवर्तन का दर्शन करके उसका विम्बग्रहण कराने का प्रयास किया है। उनके समुचित उपमान इस कार्य में विशेष योगदान देते हैं।

अन्धकार हट जाने के पश्चात् चमकता हुआ नीला आकाश ऐसा प्रतीत होता है। मानो हाथियों की जल क्रीड़ा से मटमैला मानसरोवर का जल निर्मल हो गया हो। धीरे धीरे चन्द्रमा का बिम्ब लालिमा त्यागकर उजाला होने लगा। ठीक भी है निर्मल स्वभाव वाले लोगों के हृदय में यदि कोई दोष आ भी जाय तो अधिक समय तक नहीं ठहरता। चन्द्रमा का प्रकाश फैलने पर भारतीय दृश्य विषमही रहता है। कवि ने इस दृश्य का भी वर्णन अर्थान्तर न्यास के प्रयोग के द्वारा किया है। यहाँ पर उन्होंने मूर्त प्रदायो के लिये अमूर्त उपमान चुने हैं। कु०स० ८/६६

कालिदास ने महाकाव्य के दृष्टिकोण से चन्द्रोदय का ग्रहण उद्दीपन विभाव के रूप में किया। परन्तु प्राकृतिक दृश्यों से उनकी इतनी सहानुभूति रहती है कि साधारणतया श्रोता या पाठक के भावों के आलम्बन बन जाते हैं। उनकी दृष्टि यहाँ पर भी चन्द्रमा और तारों तक ही सीमित नहीं रहती। पर्वत की घाटियों और वृक्षों के दृश्यों का भी समावेश है। कालिदास ने इस प्रकार का चन्द्रोदय वर्णन अपनी मौलिक उद्भावना के आधार पर किया है। परन्तु परवर्ती कवियों ने उद्दीपन विभाव के रूप में चन्द्रोदय का वर्णन करते समय कालिदास की शैली का अनुकरण किया है।

नवम् सर्ग मे कतिपय श्लोको मे कैलासपर्वत का वर्णन हैं। कालिदास की कल्पनाएँ यहाँ भी बड़ी मधुर है। कैलास पर्वत की धवलता की सर्वत्र अभिव्यजना की गयी है। स्फटिक मणि से निर्मित कैलास के भवनो मे जब नक्षत्रो की परछाही पडती है तो सिद्धो की स्त्रियो को यह भ्रम हो जाता है कि कही सम्भोग के समय टूट कर गिरे हुए मोतियो के दाने तो नही है।

निशासु यत्र प्रतिबिम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु।

दृष्ट्वा रतान्तच्युततारहारयुक्ताभ्रम विभ्रति सिद्धवध्व ।। कु स ६/४३

‘कुमारसम्भव’ मे अधिकतर उपमान कालिदास ने प्रकृति के अक्षय कोष से चुने है। मणियो मोतियो और सोने के आभूषण धारण करने पर पार्वती जी का सौन्दर्य और अधिक बढ जाता है जैसे पुष्प निकल आने पर लताएँ और सुन्दर लगने लगती है, तारे निकल आने पर रात जगमगाने लगती है, तथा रग-विरगे पक्षियो के आ जाने से नदी और सुहावनी होने लगती है।^१

सफेद रग की नयी रेशमी साडी धारण किए हुए पार्वती जी ऐसी प्रतीत होती है, मानो क्षीर समुद की उतारते हुए फेन वाली लहर हो। ७/२६ विवाह के समय पार्वती जी पुरोहित की बॉते बडे चाव से सुन रही थीं। जैसे गर्मी से सतप्त पृथ्वी वर्षा की पहली बूँदे ग्रहण करती है। ७/८४ शकर जी की गोद मे वैठी हुई सोने की लता के समान सुन्दर पार्वती ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो शरत्कालीन बादल के भीतर विजली चमक रही हो (१२/१८) माता पार्वती को कार्तिकेय के छहो मुख ऐसे प्रतीत होते है मानो कमल के एक डण्ठल मे पॉच सुन्दर कमल के फूल खिले हो और उन कमलो की शोभा छठों कमल बनकर बीच मे स्थित हो (११/८५) शकर और पार्वती का अपने सहस्र नेत्रो से दर्शन कारने वाले देवराज इन्द्र मजरियो से लदे हुए

आम्र के वृक्ष के समान प्रतीत होते हैं मन की भावनाओं की अभिव्यजना करने के लिये भी उन्होंने प्राकृतिक उपादानों की सहायता ली है। जिसे जो वस्तु प्रिय होती है, मरने के बाद भी उस वस्तु की आकाक्षा बनी रहती है। रति शोकाकुल होकर कहती है, वसन्त तुम जब अपने मित्र का श्राद्ध करना चाहते हो तो उन्हें पत्तो वाली आम्र की मजरी अवश्य देना, क्योंकि उन्हें आम्र की मजरी बहुत प्यारी थी।

परलोकविधौ च माधव स्मरमुदिदश्य विलोलपल्लवा ।

निवपे सहकारमन्जरी प्रियचूतप्रसवो हिते सखा । कुस ४/३८

प्रेम में विभोर पार्वती शिव जी से स्वयं कुछ न कहकर सखी के द्वारा कहलाती है कि इस विषय में कन्या के पिता की अनुमति आवश्यक है। इस स्थिति की अभिव्यञ्जना भी कालिदास ने प्राकृतिक उपमानों के द्वारा ही की है। ऐसा लगता था, जैसे डाली कोमल की मधुर बोली के द्वारा वसन्त के पास सन्देश भेज रही हो।

तया व्याहृतसदेशा सा बभौ निभृता प्रिये ।

चूतयष्टिरिवाभ्यासे मधौ परभृतोन्मुखी ।। कुस ६/२

कुमारसम्भव में उपलब्ध प्रकृति चित्रण की कुछ अंशों में तुलना मिल्टन के महाकाव्य पैराडाइसलास्ट (Paradise Lost) से की जा सकती है। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग के हिमालय वर्णन की ही तरह मिल्टन ने भी अपने महाकाव्य के चतुर्थ अध्याय में पर्वतीय दृश्य का शब्द-चित्र अंकित किया है। चीड़ देवदार और शाखाओं में विभक्त ताड़ के वृक्ष अनोखा जगली दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। जैसे-जैसे ऊपर की ओर इनकी छायाएँ घनीभूत होती जाती थी लगता था, जैसे (प्रकृति की गोद में) वनों की शानदार रंगशाला स्थिति हो।¹

1 Paradise Lost Book IV Lines 130-42

कुमारसम्भव में शिव और पार्वती के मधुर दाम्पत्य जीवन की तुलना (Paradise lost) में वर्णित ओर इव के मधुर दाम्पत्य जीवन से की जा सकती है इस स्थान पर मिल्टन का भी प्रकृति चित्रण आकर्षण है। प्रातः कालीन सुषमा फैली है। शस्यश्यामला भूमि मानो इव को जगाने के लिए आह्वान सा कर रही है। सूर्य के अरुण प्रकाश से सबधित रंगीन छटा सर्वत्र बिखरी है। भौरे पुरुषों से मकरन्द संचित करने में सलग्न है। स्वर्ग और प्रकृति में वस एक ही आकाशा है, वह है इव के सौन्दर्य का दर्शन करना।

कालिदास की औषधिप्रस्थपुरी के समान मिल्टन के उद्यान का स्वर्गीय सुषमा का काल्पनिक वर्णन किया है। प्रकृति युवती नारी के समान अपने उद्दाम सौन्दर्य भाव का एडेन के उद्यान में बिखेर रही थी। लगता था उसे प्रकृति रूपी नायिका की कौमारावस्था की मधुर कल्पनाएँ यहाँ स्वेच्छापूर्वक विहार कर रही हैं।

इसी प्रकार अन्य महाकाव्यों से भी असंगत तुलना सम्भव हो सकती है परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि कालिदास अपने स्थान पर अतुलनीय है। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन जिस सहानुभूति और तन्मयता के साथ बाल्मीकि और कालिदास ने किया है वैसा भारत का अन्य कोई कवि नहीं कर सका। कुमारसम्भव और शाकुन्तल में भारत की प्रकृति लक्ष्मी मुखर हो उठी है। पार्वती और शकुन्तला के रूप में लगता है हम उसके साकार स्वरूप का दर्शन कर रहे हैं। वस्तुतः कालिदास के काव्य सौन्दर्य और नाटकीय प्रतिभा को देखकर मुग्ध हुआ जा सकता है परन्तु ऐसा कोई मापदण्ड नहीं दीख पड़ता जिससे उन्हें मापा जा सके।

मेघदूत

कालिदास प्रकृति देवी के प्रवीण पुरोहित थे। उनकी सूक्ष्मदृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधानता से हृदयगम किया था। मेघदूत में

कालिदास ने वाह्य प्रकृति एवं अन्तः प्रकृति दोनों का ही सूक्ष्म मार्मिक चित्रण किया है। वाह्य प्रकृति के प्रति कवि का अनन्य अनुराग है। कालिदास प्रकृति के सूक्ष्म दृष्टा है प्रकृति के प्रवीण चित्तेरे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में तन एवं पुण्यो का अद्वितीय वर्णन किया है। कालिदास की प्रकृति भी जीवन के रपन्दन के साथ-साथ सजीव प्रतीत होती है और नित्य मनुष्य को नवीन शक्ति प्रदान करती है। सम्भवतः ससार में कोई ही ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने सजीव प्रकृति का इतना पूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन किया हो जितना कि कालिदास ने किया है उनमें मानव 'हृदय का कवि' और 'प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि' ये दोनों गुण एक साथ विद्यमान हैं।

कालिदास ने प्रकृति को आलम्बन उद्दीपन, मानवीकरण एवं अलंकारिक आदि रूपों में चित्रित किया है। प्रतिभा के विकास के साथ-साथ कालिदास ने प्रकृति वर्णन में विकास हुआ है। पूर्वमेघ वाह्य प्रकृति का ही मनोहर रूपभोजनात्मक चित्रण है।

वर्षा ऋतु और उसमें होने वाली प्राणियों की विविध उत्कण्ठाओं का जैसा चित्रण मेघदूत है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मेघ के आगमन से विरही यक्ष उत्कण्ठित होकर प्रिया के प्राण धारण के लिये सदेश भेजने के लिये आतुर हो उठता है। पर्वत उसके आगमन से पुष्पित कदम्बों के रूप में पुलकित हो उठता है। भोली ग्राम बधुये उसे उत्सुकता से देखती है और चतुर पौर बधुये उसे अपने चञ्चल कटाक्षों का विषय बनाती है। वर्षा ऋतु में मानस के लिए उत्सुक हंस उसके सहपात्री बन जाते हैं और गर्भाधान के लिये उत्सुक वलाका उसका सेवन करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि मेघोदय पर होने वाला कोई ऐसा प्राकृतिक परिवर्तन नहीं है, जिसकी ओर कवि का ध्यान न गया हो। मेघदूत में प्रकृतिवर्णन में कई स्थल हैं जिन पर उत्कृष्ट कोटि के चित्र बनाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये मानस की ओर जाने वाले हंसों का कैसा विशद चित्र दिया गया है।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्या ।
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगगर्जित मानसोत्का ।
आकैलाशाद् विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्त
सपत्न्यस्यन्ते नभसि भक्तो राजहसा सहाया ॥ पू.मे ११

कालिदास ने प्रकृति को मानव के साथ स्निग्ध सम्बन्ध स्थापित करते हुए चित्रित किया है। प्रकृति की मानव के सुख दुःख में सहानुभूति प्रकट करती हुई मानव हृदय एवं प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया गया है इस विचार कोण के प्रकृति चित्रण में कालिदास की भावुकता सूक्ष्मदर्शिता एवं सहृदयता प्रकट होती है। परिणाम स्वरूप कालिदास का प्रकृति चित्रण इतना सजीव एवं मर्म स्पर्शी है कि जनमत हठात् भाव विभोर हो जाता है द्रवित हो जाता है।

प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुए कवि मेघ से कहता है कि तुम रामगिरि से विदाई लो। यह तुम्हारे वियोग में गर्म आँसू बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है। मेघ और पर्वत का सौहार्द कितना मनोरम है।

आपृच्छस्व प्रियसखममु तुङ्गमालिङ्ग्य शैल
बन्धै पुसा रघुपति पदैरङ्कित मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य सयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहज मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ पू.मे १२

मित्र का सदा ध्यान रखने वाला यक्ष मेघ के मार्ग में विश्राम करते हुए नदियों का जल ग्रहण करते हुए यात्रा करने का परामर्श देता है।

खिन्न खिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीण क्षीण परिलघु पय स्रोतसा चोपभुज्य ॥ पू.मे ६३

स्थान—स्थान पर मेघ को प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
उसे प्रेमिका (नदी) को सान्वित करने का आदेश भी दिया है।

छन्नोपन्त परिणतफलद्योतिभि काननाग्नै
स्त्वय्यारूढे शिखरमचल र्निगधवेणीसवर्णे ।
नून यास्यत्तरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्था
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तारपाण्डु ॥ पू.मे १८

तरङ्गों के चलने से शब्द करते हुए की पक्षियों की पक्ति रूपी
करधनी ताली स्खलन के कारण सुन्दर रूप में कहने वाली तथा भँवर रूपी
नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी के मार्ग में पहुँचार जल से पूर्ण
मध्य भाग वाले हो जाना, क्योंकि स्त्रियों की प्रेमियों के प्रति श्रृङ्गार चेष्टा
(हाव-भाव) ही प्रथम पुण्य वाक्य होता है।

निर्विन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तर सन्निपत्य ।
स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ पू.मे २६
पवन को भी प्रार्थनाचाटुकार प्रणयी के रूप में वर्णित किया गया है।
यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥ पू.मे ६/३२

उज्जयिनी में प्रातः काल में सारसों के तीव्र मद से अत्यन्त मधुर
कूजन को अधिक बढ़ाता हुआ खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से
सुगन्धित। अङ्गों को सुख देने वाला शिप्रा नदी का पठन, याचना के मीठे
वचन बोलने वाले प्रियतम के समान स्त्रियों की सम्भोग की थकान को दूर
सकता है।

मेघ में मानव दुर्बलताओं, अभिलाषाओं का आरोप कितना चमत्कारी
बन गया है।

तस्या किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाख ।

हत्वा नील सलिलवसन मुक्तरोधोनितम्बम् ।

प्रस्थान ते कथमपि सखे । लम्बमानस्य भावि ।

ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ ॥ पू मे ४५

प्रकृति—सुन्दरी के सौन्दर्यात्मक कालिदास अमूर्त को मूर्त रूप देने में पटु है। उन्होंने नदियों को स्वाधनिर्यातका तथा मेघ एव पर्वतो को दक्षिण अनुकूल नायक के रूप में बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से उपस्थित किया है। प्रकृति के साधारण उपादानों नदी पहाड़ आदि के हाथों में महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिये हैं। प्रकृति में भी होड़ है। अलका के भवन मेघ के कम सुन्दर नहीं हैं। मेघ में बिजली है इन्द्रधनुष की रम्यता है मनोहर गर्जन है जल है और उच्चता है तो अलका के भवनों में सुन्दरिया हैं मनोहर चित्र हैं। कवि की कल्पना का मनोज्ञ दृष्टान्त है।

विद्युत्त्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा ।

सङ्गीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम् ।

अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गममग्निलहाग्रा

प्रसादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेष ॥ उ मे १

उत्तरमेघ का आरम्भ कवि के अलकापुरी के वर्णन से करता है। इसके वर्णन से करता है। इसके वर्णन प्रसंग में कवि ने एक ही छन्द में छहो ऋतुओं के ऐसे छह चित्र उपस्थित किये हैं, जो देखते ही बनते हैं।

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्ध

नीता लोधप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री ।

चूडापाशे नवकुरवक चारु कर्णे शिरीष

सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम् ॥ उ मे २

अलका की सुन्दरियों के हाथों में लीलाकमल (घ्राणमूलक चित्र)

(शरद् ऋतु) है खुली चोटी के अंत में कुन्द कली गूँथी हुई (हेमन्त) मुह की शोभा लोधपुष्प के पराग से पीली सी हो गयी है (शीत) केशपाश में कुरवक कुसुम गुम्फित है (बसन्त) कानों में मनोहर शिरीष के फूल झूल रहे हैं (ग्रीष्म) और केशवीथि (माग) में मँगटीका की तरह) कदम्ब के फूल हैं (वर्षा)।

इस प्रकार अलका में षडऋतुओं की निरन्तर अवस्थित की विलक्षण कल्पना को बड़ी निपुणता से साकारता दी गयी है।

मेघदूत में प्रकृति में सहानुभूति की भावना का भी मनोरम आरोप किया गया है। यहाँ की करुण दशा को देखकर प्रकृति भी उसके प्रति सम्वेदना प्रकट करती है। जब यक्ष स्वप्न में अपनी प्रियतमा का आलिङ्गन के लिये शून्य आकाश में भुजाए फैलाता है तो वनस्थली देवताओं के नेत्रों से मोटे मोटे आसू ढलक पड़ते हैं।

मामाकाशप्रणिहितभुज निर्दयाश्लेषहेतो—

लब्ध्वायास्ते कथमपि मया स्वप्नसदृशनेषु।

पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवताना

मुक्तास्थूलास्तरुक्सलयेष्वश्रुलेशा पतन्ति॥ उ मे ४६

इसके अतिरिक्त अलका के सदैव खिलने वाले फूलों एवं भौरों के गुञ्जन से युक्त वृक्षों हंसों की कतारों से घिरी कमलिनीओं चकमने वाले पखों से युक्त तथा कलरव करने वाले मयूरो एवम् अन्धकार से रहित धवल चन्द्रिकामयी रजनियों का सुन्दर वर्णन किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण मेघदूत प्रकृति के भव्य चित्रों से भरा हुआ है। मेघदूत में कवि ने प्रकृति एवं मनुष्य को एक नवीन एवं मौलिक ढंग से परस्पर जोड़ दिया है। मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन के संग्रथन को एक आवश्यकता और एक आनन्द के रूप में चित्रित किया गया है।

आर ई रोबिन्सन का कथन कितना सटीक है उनकी आखे पारदर्शी प्रिज्म के समान जीवन के सभी गहरे चमकीले रंगों को पहचान लेती थी और उसका मस्तिष्क कलाकार की रंग मिलाने वाली पटरी के समान उन्हें ग्रहण कर रत्नोपम सौन्दर्य के चित्रणों में अनूदित कर देता था।

"His eyes singled out like a prism all the rich, glowing tints of life's colours and his relieving them, as if had been palette translated them into description of Jewel like beauty "

कालिदास ने प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है। उनके अनुसार प्रकृति मानव की चिरन्तन सहचरी तथा उसके स्वस्थ सरस एवं मौलिक जीवन के लिये अपरिहार्य है। यद्यपि कालिदास को प्रकृति कोमल रूप ही अधिक प्रिय रहा है फिर भी उनको इस क्षेत्र तक ही सीमित रखना उनके साथ अन्याय होगा। यदि उन्हें प्रकृति का कवि कहा जाये तो असंगत न होगा।

इस प्रकार मेघदूत संस्कृत साहित्य का जाज्वल्यमान हरिक है जिसकी प्रभा समय के प्रवाह से और अधिक बढ़ती जाती है। वह बड़ी ही मागलमय घड़ी थी जब महाकवि कालिदास ने इस अमर काव्य की रचना की थी। वाह्य प्रकृति का मनोरम झोंकी प्रस्तुत करने में तथा अन्तस्थल में सन्तत उदय होने वाले भावों के चित्रण में यह काव्य अपनी तुलना नहीं रखता है।

इस प्रकार लघुत्रयी के ग्रन्थों के प्रकृति वर्णन में कालिदास ने रूढियों (परम्परा) का निर्वहन करते हुए अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

महाकवि कालिदास ने लघुत्रयी के ग्रन्थो मे लोकोक्तियो के प्रयोग मे रूढियो (परम्परा) का निर्वहन किया जिसका निम्नलिखित उद्धरणो से पुष्ट हो रहा है।

लोकोक्तियो का प्रयोग

कवि अपने काव्य मे जीवन की प्रत्येक परिस्थिति की सौन्दर्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करता है। हमारे जीवन की घटनाओ से सम्बन्धित लोकोक्तिया अपने सहज रूप मे वस्तु या घटनाओ की स्वाभाविकता को अभिव्यक्त करती है। कवि विभिन्न माध्यमो से अपने कथ्य को सहजता प्रदान करता है। जब वह प्रचलित लोकोक्तियो का आश्रय लेकर किसी भी वस्तु की मीमासा प्रस्तुत करता है तब वस्तु की गम्भीरता इतने सहज रूप मे उपस्थित हो जाती है कि साधारण पाठक भी वस्तु के आन्तरिक सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है। कालिदास ने लोकोक्तियो के माध्यम से विषय को इतना सहज और आकर्षक बना दिया है कि विषय अपनी अमिट छाप छोड जाता है।

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान्मतो मे।

छाया हि भूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभि ।।

रघु १४/४०

राम की दृष्टि मे सीता पवित्र है। राम मन मे सीता का निर्वसन नहीं चाहते है। यदि सीता का निर्वासन करते है तो पवित्रता को पायानल मे झोकते है यदि सीता का निर्वासन नहीं करते है तो उन्हे लोक निन्दा के दावानल मे जलना पडेगा। ऐसी विषम परिस्थिति मे लोक प्रचलित सिद्धान्त लोकापवाद बलवान् होता है। उन्हे अवलम्बन देता है और उन्हे चन्द्रमा की निष्कलङ्कता और लोक मान्य कलङ्कता की प्रवलता के पृष्ठो को उलटना पडता है।

विललाप स वाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम् ।

अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ रघु ८/४३

अज इन्दुमती की मृत्यु से विचलित होकर विलाप करने लगते हैं । कवि ने लोकोक्ति 'तपने पर तो लोहा भी पिघल जाता है— के द्वारा उनके रुदन के औचित्य को हृदय द्रावक बना दिया है । लौह कठोर एव जड होता है । मनुष्य का हृदय लौह एव पुष्प दोनों होता है । असह्य कष्ट के अनल में लौह हृदय भी पिघल जाता है ।

रोग की दवा होती है मृत्यु की नहीं ।^१ इस लोकोक्ति ने अज को किंचित धैर्य प्रदान किया है वही पर उन्हें सत्यता का भान भी कराया है । 'सोने की परख आग में होती है ।^२ इस लोकोक्ति ने कालिदास के काव्य को वह श्रेष्ठता प्रदान की जिसका आकलन साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता ।

सोंप के बिल में कौन हाथ डाल सकता है ? इस लोकोक्ति को कालिदास ने अत्यन्त उचित अर्थ की सिद्धि के लिये प्रयोग किया है ।

अलभ्यशोकाभिभवेय माकृतिर्विमानना सुश्रु । कुत पितुर्गृहे ।

पराभिमर्शो न तवास्ति क कर प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥

कुस ५/४३

मणि के लोभ में कौन है, जो सर्प के ऊपर हाथ डाल सकता है । इस अप्रस्तुत विधान को लोकोक्ति के रूप में उपस्थित होकर पार्वती के अद्वितीय सौन्दर्य की अपरमित शक्ति को अभिव्यक्त करता है । एक अन्य लोकोक्ति 'कुआ प्यासे के पास नहीं जाता है — 'कालिदास के सुन्दर शब्दों में उपस्थित होकर—रत्न किसी को नहीं ढूँढता है वरन् वहाँ ढूँढा

१ प्रतिकारविधानमायुष सति शेषे हि फलाय कल्पते । रघु ८/४०

२ हेम्न सलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धि श्यामिकाऽपि वा ॥ रघु १/१०

जाता है।^१ पार्वती को कन्या रत्नत्व को प्रमाणित कर उसके अलौकिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है।

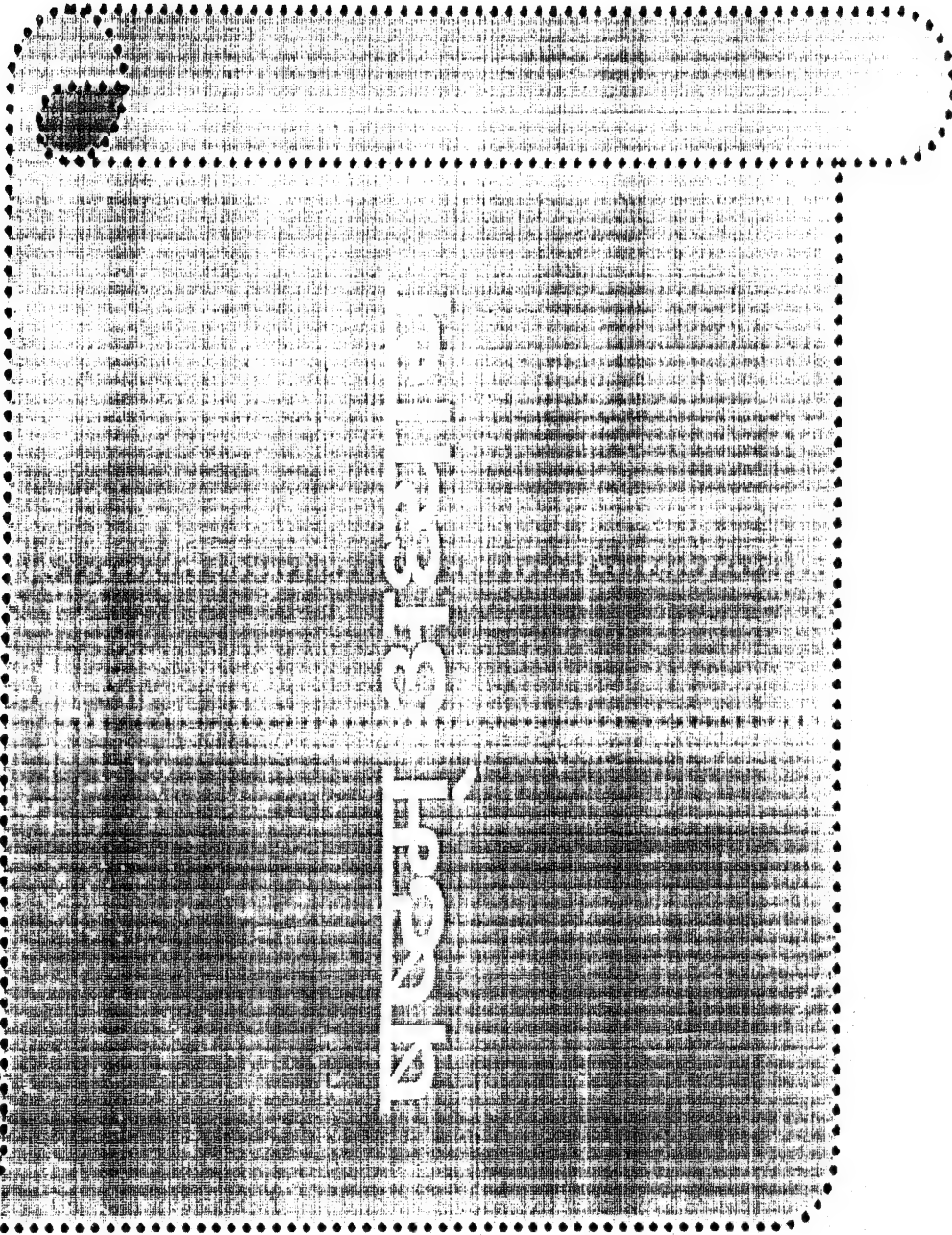
छूछा को कौन पूछा अथवा अधजल गगरी छलकत जाय भरी गगरिया चुपके जाय लोकोक्ति को कालिदास ने अत्यन्त सुन्दर अभिव्यञ्जना प्रदान करते हुए बताया कि रिक्तता लघु होती है पूर्णता गौरवान्वित करती है।^२ जादू सिर पर चढ़कर बोलता है लोकोक्ति को कालिदास ने सुन्दर रूप में— अग्नि वही है जो तृण की भाति पानी में प्रज्वलित हो प्रयुक्त होकर परशुराम के अद्वितीय शौर्य को अभिव्यक्त करती है।^३ कालिदास ने अपने काव्यों में इस प्रकार के अनेक प्रयोगों से रचना को अत्यन्त सहज और आकर्षक बनाया है।



१ 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् कुस ५/४५

२ 'रिक्त सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गौरवाय पूमे १०

३ पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि य । रघु ११/६५



कालिदास के काव्यसौन्दर्य की विशेषता

सौन्दर्य सर्जना की केन्द्र-बिन्दु है जिसके अस्तित्व ने ही चित् और अचित् तत्त्व को एकरूपता प्रदान की है। प्रकृति और चेतन की एकरूपता सौन्दर्य की अनुभूति का प्रतिफलन है। भारतीय चिन्तन की परिणति चित् तत्त्व के सौन्दर्य का साक्षात्कार या परमभोग है। बालक की सम्पूर्ण नग्नता से भी सौन्दर्य का रस छलकता रहता है। उसका या रमणी का यौवन आवरण से आवृत्त होकर जिस सौन्दर्य की अनुभूति कराता है, वह सर्जना की दिव्यता को मूर्त रूप देती है। सर्जनात्मक क्षमता के सकेत बन जाने पर सौन्दर्य की वासन्ती सुषमा ग्रीष्म की लौ में झुलस कर राख बन जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति गतिशील इसलिए है कि वह सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिए व्याकुल है। व्यक्ति की अभिरुचि से सौन्दर्य का विषय भिन्न-भिन्न हो सकता है किन्तु सौन्दर्य की अनुभूति पर प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाया जा सकता है। सौन्दर्य की अनुभूति को वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करना सरल काम नहीं है। सौन्दर्य वासनात्मक रूप को अपने में समाविष्ट कर व्यक्ति को उस आनन्द के रस में मज्जित करता है जिसका केवल अनुभव मात्र किया जा सकता है। सौन्दर्य क्या है ? व्यक्ति क्यों इसे चाहता है ? प्रश्न सरल होते हुए भी जटिल है। साधारण अर्थ में सौन्दर्य रूप के रूप में उपस्थित होकर दृष्टि का विषय बनता है। व्यक्ति की अभिरुचिया प्रकृति के भिन्न-भिन्न अर्थों को सौन्दर्यात्मक चेतना प्रदान करती है। किसी को हिमालय की शोभा आह्लादित करती है तो किसी को नदी की चंचल तरंगें तो किसी को वासन्ती साड़ी में लिपटी हुई प्रकृति के विभिन्न रूप और चेष्टाएँ।^१ लेकिन

१ नाऽसौ न काम्य न च वेद सम्यद्रण्डु न स भिन्नरुचिर्हिलोक । रघु ६/३०
अनन्त पुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा । कुस १/२७

सम्पूर्ण सौन्दर्य बोध में वस्तु की समग्रता ही समाहित रहती है। पुष्प का रंग सुन्दर लगता है, न उसकी पखुडिया न केवल वृत्त न उसका सौरभ ही। उसकी समग्रता ही सौन्दर्य की सृष्टि करती है। किसी रमणी का मुख इसलिए नहीं सुन्दर है कि उसकी आखें नाक अधर का दन्तपक्व अलक मात्र ही सुन्दर है वरन् उनके समग्र अवयवों का सन्तुलन विकासात्मक परिपूर्णता पारदर्शिता आकार आदि की समरूपता आदि का समग्र रूप ही सौन्दर्यात्मक रूप प्रदान करता है। शिशु के सौन्दर्य, रमणी के सौन्दर्य प्रकृति के सौन्दर्य आदि में सौन्दर्यात्मक अनुभूति तो रहती है लेकिन सभी के अनुभाव के अन्तर को नकारा नहीं जा सकता है। वस्तु की समग्रता जब सौन्दर्य की अनुभूति कराती है, उस क्षण यह आवश्यक नहीं है कि उसके समग्र रूप का ही मादक प्रभाव चित्त को आह्लादित करता है उसका कोई एक अवयव ही सम्पूर्ण चेतना को ऐसे मोहात्मक रंग में रंग देता है कि व्यक्ति उस रंग से मुक्त नहीं हो पाता है। फिर भी सम्पूर्ण सत्ता से पृथक् होकर उसके सौन्दर्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। किसी मूर्ति या वाद्य के संगीत का एक अवयव पृथक् रूप से सौन्दर्य की अनुभूति नहीं करा सकता है वरन् उसका समग्र रूप ही सौन्दर्यात्मक जादू से व्यक्ति के चित्त को आह्लादित करता है।

वस्तु का अपना जैसा सौन्दर्य है वैसा ही व्यक्ति को प्रतीत नहीं होता है व्यक्ति की कल्पनाएँ और वासनाएँ उसके सौन्दर्य को और सुन्दर बना देती हैं। यही कारण है कि सौन्दर्यात्मक अनुभूति वस्तुगत और आत्मगत के मिश्रण का प्रतिफल है।^१ मनुष्य की इच्छा शक्ति और वासना वस्तु को एक नया रूप प्रदान करती हैं। व्यक्ति की कल्पनाएँ ही उसे किसी एक सौन्दर्यपाश में बंधने नहीं देती हैं। सौन्दर्य की सापेक्षता ही व्यक्ति को चंचल बनाती रहती है। प्रकृति की सम्पूर्ण कमनीयता को व्यक्ति एक ही स्थल में देखना चाहता

१ यथा यूनस्तद्वत् परमरमणीयापि रमणी।

कुमाराणामन्त करण हरण नैव कुरुते।। नैषध २२/२५२

है। यदि सम्पूर्ण सौन्दर्य एक स्थान पर देखने को मिल भी जाए तो उसकी कल्पना तृप्ति ही रहती है। कालिदास का यक्ष अपनी प्रिया में प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य का अन्वेषण करता है किन्तु उसकी कल्पना बन्ध्या रह जाती है। उसकी कल्पना तो उस सौन्दर्य—रसपान के लिए व्याकुल है जो सम्पूर्ण ससार में अनुपलब्ध है केवल उसकी प्रिया में सम्भावना इसलिए की जा सकती है कि उसकी दृष्टि में उसकी प्रिया विधाता की निराली सृष्टि है।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणाभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ।। उ मे २२

इस श्लोक में यक्ष—प्रिया के अङ्ग में प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य का विलास समाहित है। पार्वती के सौन्दर्य वर्णन के अवसर पर कालिदास की कल्पना प्रकृति के सम्पूर्ण सौन्दर्य को पार्वती के शरीर में एकत्र रूप में देखना चाहती है, इसलिए उसने लगभग बीस श्लोको में पार्वती के सौन्दर्य को प्रकृति के सारे सुन्दर तत्वों से चित्रित किया है। कालिदास की पार्वती सम्पूर्ण सुन्दर वस्तुओं के संयोजन से बनी हुई है, इसलिए वह विधाता की अलौकिक सृष्टि है—

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नात् एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ।।

कु स १/४६

मानवीय कल्पना की सीमा नहीं होती है। उसका प्यासा मन न जाने किस सौन्दर्य—रस के पान के लिए व्याकुल रहता है। इसीलिए तो कालिदास की अतृप्त कल्पना यक्ष के स्वर में कह उठती है—

श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्तृच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषुकेशान् ।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्हन्तैक—

स्मिन्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।। उ मे ४६

कालिदास का सौन्दर्य— बोध जागतिक सौन्दर्य से पृथक् है। ससार की प्रत्येक वस्तु का मूर्त या अमूर्त सौन्दर्य एक सत्ता को प्राप्त है किन्तु मानवीय चेतना उस सौन्दर्य से परितृप्त नहीं है अतः प्रकृति के विराट् सौन्दर्य को मानवीय कल्पना एक क्षण में विद्रूप बना देती है वह तो उस सौन्दर्य का रसपान करना चाहती है जहाँ उसकी कल्पनाओं और वासनाओं को पूर्ण तृप्ति मिल सके। कालिदास का यक्ष व्यक्ति की सौन्दर्य—पिपासा को अभिव्यक्त करता है। जो है वही ही सम्पूर्ण नहीं है, उससे इतर एक ऐसा सौन्दर्य है जो व्यक्ति को आन्दोलित करता है, वह कैसा है, वह उसे ज्ञात नहीं है किन्तु फिर भी उसे प्राप्त करना चाहता है। एक सौन्दर्य व्यक्ति को तृप्त करता है किन्तु उससे उत्कृष्ट सौन्दर्य की पिपासा उसे व्याकुल करती रहती है। सौन्दर्य का एक पक्ष हमारे चित्त को आन्दोलित करता है हमारी वासना को जगाकर व्याकुल भी करता है। एक अदृश्य शक्ति व्यक्ति को सर्वदा विभिन्न प्राकृतिक सौन्दर्य में उपस्थित कर सर्वदा आन्दोलित करती रहती है। जब व्यक्ति चित् के सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी कल्पना पूर्णता को प्राप्त कर लेती है। चित् या चेतन के आवरण के सौन्दर्य यद्यपि आह्लादक है किन्तु पूर्ण आनन्द की अनुभूति नहीं कराते वे केवल अल्पकाल के लिए हमारे चित्त के मल को दूर कर चेतन के सौन्दर्य की झाकी मात्र प्रस्तुत करते हैं। अनन्त सौन्दर्य की परमकाष्ठा, जो चित्त के आवरण से आच्छादित है, उसका आभास मात्र व्यक्ति को सर्वदा अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है। इसलिए सच्चे सौन्दर्य प्रेमी को जब तक चेतना के सौन्दर्य का साक्षात्कार नहीं होता तब तक उसे ढूँढता रहता है।

जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहाँ सर्वत्र प्रकृति का विकासात्मक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। बिना साधना अथवा तपस्या के सौन्दर्य का

शिवत्व प्राप्त नहीं होता है। कालिदास के कुमारसम्भव में काम असमय में ही प्रकृति को वासन्ती सुषमा की मनोहारिणी साड़ी पहना देता है। उसके सम्पूर्ण अंगों से सौन्दर्य की रसधारा बहने लगती है किन्तु एक क्षण में सम्पूर्ण रसधारा सूख जाती है जब शिव का भक्त नन्दी केवल उगली से सकेतमात्र करता है। सौन्दर्य का देवता काम भी काप जाता है। सम्पूर्ण चंचल सौन्दर्य चित्रलिखित हो जाता है।^१ किन्तु पार्वती का सस्कृत अथवा पवित्र सौन्दर्य काम को अवलम्बन देता है। सभी सौन्दर्य शिव के मानस में हलचल उत्पन्न तो करते हैं किन्तु उन्हें अभिभूत नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि शिव एक क्षण में ही सौन्दर्य के देवता काम को जलाकर नष्ट कर देते हैं। यही पर पार्वती का वह सौन्दर्य जिसका निर्माण प्रकृति के सम्पूर्ण तत्वों से हुआ है परम सौन्दर्य के शिवत्व-रूप से पराभूत हो जाता है। पार्वती को परमसौन्दर्य की प्राप्ति तभी होती है जब तपस्या की अग्नि में अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को सुन्दर रूप प्रदान करती है।

काव्य भी वाह्य जगत् का न प्रतिबिम्ब है न उससे पृथक् । कहने का आशय यह है कि काव्य न वाह्य जगत् से असम्पृक्त होता है, न उसकी अनुभूति ही। कवि की कल्पनाएँ और वासनाएँ वाह्य जगत् को एक नूतन सौन्दर्य प्रदान करती हैं। कवि की कला अन्य कलाओं से श्रेष्ठ होती है। अन्य कलाओं में वाह्य जगत् का अधिकांश सौन्दर्य को अपने कलात्मक ढाँचे में ढालकर अलौकिक बना देती है। कवि की वासना जिस सौन्दर्य को नूतन रूप प्रदान करती है उसका साक्षात्कार पाठक भी उसी मनोयोग से करता है अथवा उससे अधिक या कम। इस अनुभूति में उसकी वासनाओं के उद्बोध की कारणता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार काव्य वाह्य जगत् को नये रूप में प्रस्तुत करता है और पाठक भी या तो कवि से तादात्म्य स्थापित कर या तो उसके समान ही आनन्द की अनुभूति

१ निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाण्डज शान्तमृगप्रचारम्।

तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्रपितारम्भमिवावतस्थे॥ कुस ३/४२

कराता है, अथवा अपनी वासनाओं के वैशिष्ट्य के कारण कवि से भी अधिक आनन्द की अनुभूति करता है। इस प्रकार प्राकृतिक तथ्य काव्य के रूप में उपस्थित होकर नित्य नूतनता की सर्जना करता रहता है और सौन्दर्य का भी यही रहस्य है कि वह क्षण—क्षण नवीनता की सर्जना करता रहे।

क्षण—क्षण नूतनता की अनुभूति का कारण वासनाओं की सुकुमारता सुन्दरता तथा उसकी उद्बुद्धता है। कवि की कल्पना या वासना की विराट्ता सम्पूर्ण प्रकृति के सौन्दर्य को नया रूप प्रदान करने के लिए व्याकुल रहती है।

आवर्जिता किचिदिव स्तनाभ्या वासो वसाना तरुणार्करागम्।

पर्याप्त पुष्पस्तबकावनमा सचारिणी पल्लविनी लतेव। कुस ३/५४

प्रकृति की सुषमा पल्लविनी लता में ही देखी जा सकती है। प्रकृति की पल्लविनी लता में जड़ता है अतः उसमें सचरणशील का अभाव है। कवि को यह सौन्दर्य प्रिय नहीं है उसकी सौन्दर्यात्मक वासना तो उस पल्लविनी लता को सौन्दर्य को देखना चाहती है जो पर्याप्त पुष्प के भार से नम्र (झुकी) हो तथा सचरण कर रही हो। पुष्प—भार से झुकी हुई लता में सचरण (सम्यक गमन, विलासात्मक गमन) की शक्ति आ जाय, प्रकृति की अपूर्ण सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त हो जाए। यही है कवि—सौन्दर्यात्मक वासना जो प्राकृतिक सौन्दर्य को भी नये रूप में देखना चाहती है।

सौन्दर्य तो वह है जो शत—शत आँखों को निर्निमेष बनाकर व्यक्ति की सम्पूर्ण चेतना को अपने में समाहित कर ले और व्यक्ति केवल चेतना—रहित शरीर वाला बना रहे।

तस्मिन्विधानातिशये विधातु कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये।

निपेतुरन्त करणैर्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवलमासनेषु॥ रघु ६/११

इन्दुमती के सौन्दर्य को देखकर सभी नृपति देहमात्र से ही अपने—अपने आसन पर स्थित रहे। देह केवल जड़ वस्तुओं का चयनात्मक रूप है। कवि

का देह शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि सौन्दर्य सम्पूर्ण चेतनता को शरीर से आकृष्ट कर लेता है। शरीर केवल हाड—मांस का उपचय मात्र रहता है। इस प्रकार का सौन्दर्य भले ही लोक में देखने को न मिले किन्तु कवि की कल्पना तो सृजन की अनन्ता को एक नया रूप देती रहती है।

रवीन्द्रनाथ का कहना है कि नारी तुम केवल विधाता की सृष्टि नहीं हो पुरुष ने अपने अन्तर के सौन्दर्य को सचित करके तुम्हें गढ़ा है। वही से सोने के उपमा—सूत्र लेकर कवियों ने तुम्हारे लिए वस्त्र बुना है, शिल्पी ने तुम्हें नयी महिमा देकर तुम्हारी प्रतिभा को अमर बनाया है। तुम्हारे ऊपर प्रदीप्त वासना (की दृष्टि) पड़ी है। तुम आधी मानवी हो, आधी कल्पना हो।^१

जागतिक पदार्थों की भाषा की गहनता का ज्ञान यदि हो जाय तो प्राकृतिक रहस्यों का किंचित् आभास मिल जाय, प्राकृतिक सौन्दर्य व्यक्ति को इतना अभिभूत कर देता है कि व्यक्ति उसकी भाषा के गहनतम अर्थों को ठीक से समझ नहीं पाता है उसके वाह्य रूप को ही एक अर्थ मानकर उसी के साथ बहता चला जाता है। प्रकृति के कण—कण में प्रत्येक स्पन्दन में, प्रत्येक आवर्तन और स्खलन में प्रत्येक सिहरन और चितवन में काव्य की भाषा छिपी रहती है, जिसका बोध मनुष्य को नहीं हो पाता। मनुष्य की अन्तश्चेतना ज्यो—ज्यो विमुक्त होने लगती है, वह प्रकृति के सौन्दर्य की भाषा का अर्थ जानने लगता है और उसकी वासना उसके साथ अन्तर्भूत होकर विराट् सौन्दर्य की सृष्टि कर उसके अपरिमित रस में विभार हो जाती है।

मनुष्य की लोकभाषा अथवा काव्य—भाषा समर्थ होकर भी बहुत से अनुभावों को अभिव्यक्त नहीं कर पाती है। काव्य की भाषा अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियों का आश्रय लेकर निरतिशय सौन्दर्य की सर्जना के लिए व्याकुल रहती है। इसी निरतिशय सौन्दर्य की अभिव्यक्तियों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने रसात्मवाद ध्वनिवाद, लोकोत्तर आह्लाद —

रमणीयतावाद या लोकोत्तर चमत्कारवाद की स्थापना की है। भरतमुनि और भामह से लेकर पण्डित राज जगन्नाथ तक आचार्यों ने काव्य के सौन्दर्य-बोध को अपने-अपने ढंग से समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इस लम्बी-विवेचना में शब्द और अर्थ के विविध सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन को अनेक आयाम देकर उनके सौन्दर्य और उनसे अभिव्यक्त होने वाले सौन्दर्य का विलास अन्तर्निहित है।

भारतीय आचार्यों में भामह ने काव्य-सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए अलङ्कार का आश्रय लिया है। अलङ्कार वस्तु के नैसर्गिक सौन्दर्य को उद्घाटित कर उसे लोक-प्रत्यक्ष का विषय बना देते हैं। इनकी दृष्टि में वक्रोक्ति के बिना अलङ्कार की सम्भावना आकाश-कुसुम के तुल्य है।^१ भामह का कान्तामुखी दृष्टान्त सौन्दर्य के दो स्वरूप शब्द और कवि-कौशल (अर्थात् अलङ्कार-योजना) को अभिव्यक्त करता है। कवि-कौशल अलङ्कार-प्रयोग में सन्निहित है इसी के द्वारा मूल-वस्तु का सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है।

आचार्य दण्डी की दृष्टि में अलङ्कार काव्य की शोभा को प्रस्तुत करने वाले धर्म हैं। इनकी अलङ्कार-योजना जहाँ एक ओर शब्दार्थ की अङ्गता को प्राप्त करती है, वही दूसरी ओर समस्त काव्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। वामन ने अलङ्कार को सौन्दर्य मानकर सौन्दर्य को वस्तुगत तथा उक्ति वैशिष्ट्य के आश्रित स्वीकार किया है। इनका सौन्दर्य रूप अलङ्कार, गुण में सन्निहित है अर्थात् गुण तथा अलङ्कारों से युक्त शब्दार्थ में ही सौन्दर्य है। अलङ्कार की अपेक्षा गुणों में सौन्दर्य की चिरन्तनता की प्रतिष्ठा वामन की मूल देन है। शब्दार्थ के नित्य धर्म रूप गुण सौन्दर्य वस्तु के कारक हेतु होने से वस्तु-सौन्दर्य के प्राकृतिक मूल है। अलङ्कार के बिना काव्य की सम्भावना हो सकती है किन्तु गुण के बिना नहीं। इस प्रकार यह

१ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरन्यार्थो विभाव्यते।

यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलङ्कारो काव्या २/८५

सिद्ध होता है कि सौन्दर्य वस्तुगत और आत्मगत है। कहने का आशय यह है कि सौन्दर्य मूलतः वस्तु में है, कर्ता या ग्रहीता में उसकी प्रतीति होती है। वामन ने गुणों के आधार पर ही रीतियों की विवेचना की है। इनकी विशिष्ट पद रचना रीति शब्द—गुण तथा अर्थ—गुण से युक्त सौन्दर्य विधायक रचनाशैली के अतिरिक्त और क्या है।

उद्भट ने तो गुण और अलङ्कार को शब्दार्थ रूप साहित्य में समवायवृत्ति रूप में स्वीकृति प्रदान की है। नैसर्गिक गुण और कृति—अलङ्कार दोनों समान रूप से कवि—प्रतिभा से उद्भूत काव्य में समवायवृत्ति से रहते हैं। आनन्दवर्धन ने गुण को रसाश्रित सिद्ध कर एक नयी प्रक्रिया प्रारम्भ की जिसका समर्थन बाद के आचार्यों ने समवेत कण्ठ से किया है। कुन्तक का चिन्तन कुछ मौलिक पृष्ठभूमि की उपज है। उनका सौन्दर्य आत्मगत दोनों से वस्तुगत निधि की सीमा से किंचित् दूर है। उनका काव्य सौन्दर्य शब्द और अर्थ की परस्पर स्पर्धा का प्रतिफलन है। शब्दार्थ सौन्दर्य अभिव्यक्ति के सहायक मात्र हैं सौन्दर्य तो प्रेक्षक के आह्लाद में स्थित है जिसे कवि—प्रतिभा ही उद्भूत कर सकती है। प्रेक्षक इस सौन्दर्य का साक्षात्कार कवि की विशिष्ट प्रकार की रचना (वक्रोक्ति) के द्वारा ही कर सकता है।

ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों ने रस को ही काव्य का सौन्दर्य माना है। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने गुण अलङ्कार उक्ति वैचित्र्य शब्द—शक्तियों, दोषादि की विवेचना की है। उनकी दृष्टि में काव्य—सौन्दर्य रसानुभूति में ही अन्तर्निहित है। यद्यपि वस्तु और अलङ्कार की अभिव्यजना में भी सौन्दर्य की अनुभूति समान रूप से स्वीकार करने का प्रयास किया गया है किन्तु रसगत सौन्दर्य की प्रधानता को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है।

सम्पूर्ण विवेचनाओं का सार यह है कि कवि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए काव्य में जिन शब्द, अलङ्कार, गुण, छन्द, बन्ध—योजना (सघटनाया समास) आदि का चयन करता है उसका भी अपना महत्व है। चित्र, बिन्दु,

रेखा और रंग आदि के बिना सौन्दर्य का सृजन नहीं कर सकता है। सम्पूर्ण कलाओं में कवि की प्रतिभा और उसकी कल्पनाशक्ति का चमत्कार अनुस्यूत रहता है। एक ही विषय को लेकर विभिन्न कलाकारों की कृतियों में महान् अन्तर पाया जाता है इस अन्तर का कारण कलाकार को आत्मनिष्ठ प्रतिभा की विशिष्टता है। साधन की एकता के रहने पर भी प्रतिभा अथवा कल्पना का वर्चस्व कला को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति करता है। कला की अभिव्यक्ति की विभिन्नता कलाकार को विभिन्न रूपों में विभाजित करती है। सभी कलाओं के मूल में कलाकार की प्रतिभा का विलास अर्न्तनिहित रहता है। प्राकृतिक सौन्दर्य जहाँ साधारण मनुष्य को आह्लाद प्रदान करता है वही कवि की कल्पनाओं तथा वासनाओं को उद्भूत कर अलौकिक सौन्दर्य का सृजन कराता है।

सुशील कुमार दे ने कालिदास के विषय में कहा है कि उनका काव्य न कभी अवरुद्ध गति से चलता है और न अतित्वरान्वित होकर उसमें उत्थान और पतन की अनवच्छेद्य शृङ्खला नहीं होती उनके सर्वोत्तम और निम्नतम में कोई विशेष व्यवधान नहीं है। उनका काव्य श्रेष्ठता के एक निश्चित धरातल और महनीयता की एक नियत छाप की आद्योपान्त रक्षा करता है। सब प्रकार का नुकीलापन और खुरदरापन अत्यन्त सुकुमारता के साथ चिक्कन और मृसण बना दिया जाता है और इस प्रकार उनका पूर्ण विकास कविता का सुडौलपन प्रशान्त सौन्दर्य के अनुसरणशील ध्वनन द्वारा पाठक को आकृष्ट करता है, जो चाक्षुण और श्रुतिगोचर प्रभाव में विचार तथा भावना के अन्तर्विलय का परिणाम है।^१

कालिदास की रचनाओं में जिस अनुपम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है उसका कारण यह है कि उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ उनकी समाधिस्थ मन से प्रसूत हुई हैं। सत्त्वस्थ चित्त ही अनिन्ध्व सुन्दर रूप की सरचना कर सकता

है। समाधि में विकार की सम्भावना नहीं रहती है। इसीलिए समाधिस्थ शिव^१ काम के विकार से प्रभावित नहीं होती है। काव्य का वास्तविक सौन्दर्य कवि के समाधिस्थ चित्त का प्रतिबिम्ब होता है। समाधि के बीज से प्रस्फुटित होने वाला पार्वती का सौन्दर्य शिव को आकर्षित कर पाता है। दिलीप का सौन्दर्य ब्रह्म की समाधि की उपज है।^२ शकुन्तला के सौन्दर्य की सृष्टि का रहस्य ब्रह्मा की समाधिस्थता ही है। यही कारण है कि शकुन्तला का सौन्दर्य विद्युत की तरलता को भी अभिभूत कर देता है।^३ विधाता की सभी रचनाओं में उसके समाधिस्थ चित्त की कारणता नहीं रहती है। जिस रचना में विधाता प्रयत्न करते हैं अथवा जिस रचना में उनका मन समाधिस्थ रहता है वही रचना सौन्दर्य की निधि बन पाती है। रघुवश की इन्दुमती के सौन्दर्य का यही रहस्य है—

तस्मिन्विधानातिशये विधातु कन्यामये नेत्रशतैकलक्ष्ये

निवेतुरन्त करणैर्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवलमासनेषु॥ रघु ६/११

समाधिस्थ मन की शिथिलता रचना—सौन्दर्य को विकृत बना देती है। कालिदास की मालविका के चित्र का सौन्दर्य उसके वास्तविक सौन्दर्य से निकृष्ट है इसलिए हो गया है कि चित्र—निर्माण में चित्रकार की समाधि में शिथिलता आ गयी थी—

चित्रगतायामस्या कान्तिविसवादि मे हृदयम्।

सम्प्रति शिथिलसमाधि मन्ये यैनेयमालिखिता॥ माल २/२

समाधिस्थ चित्त में सत्त्व की प्रधानता रहती है, इसीलिए रचना का सौन्दर्य अलौकिकता को प्राप्त हो जाता है। जहाँ राजस भाव सत्त्व मन को अभिभूत करता है। चित्र का सौन्दर्य विकृत हो जाता है। कालिदास का यक्ष

१ आत्मेश्वराणा न हि जातु विघ्ना समाधिभेदप्रभवो भवन्ति। — कुस ३/४०

२ त वेधा विदधे नून महाभूतसमाधिना, रघु १/२६

३ चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगारूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

रत्नैरत्नसृष्टिपरा प्रतिभाति स मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्चतस्या। अभिज्ञान ३/२६

प्रिया—विरह में रहकर भी समाधिस्थ मन से प्रिया का चित्र बना रहा है उस चित्र का सौन्दर्य चित्त के राजस्व भाव के अभ्युदय के कारण पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पाता है।

त्वामालिख्य प्रणयकृपिता धातुरागै शिलायाम्
आत्मानं ते चरणतिता यावदिच्छामिकर्तुम् ।
अस्त्रस्तावन्मुदुरूपचितैर्दृष्टिशलप्युते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नौ कृतान्त ॥ उ०मे० (४७)

कालिदास की रचनाओं में जहाँ एक ओर वाह्य सौन्दर्य का निर्झर झरता रहता है वही उसमें आन्तरिक सौन्दर्य का दिव्यालोक अन्तर्हित रहता है जिसकी अनुभूति उसी प्रेक्षक को होती है, जिसका मन समाधिस्थ रहता है। साधारण पाठक उसके आन्तरिक सौन्दर्य का भोग नहीं कर पाते हैं। कालिदास की सम्पूर्ण रचनाओं में ऐसा समष्टिगत सौन्दर्य है जो चेतन तत्त्व का अमर वरदान है जिसका भोग सत्त्वस्थ मन ही कर सकता है।

जिस रचना का सम्पूर्ण अवयव अनवद्य होते हैं उसी में निर्मल मन उसी प्रकार समाहित हो जाता है जैसे कुसुमित आम्र विटप पर भ्रमरावली अन्य वृक्षों का परित्याग कर पहुँच जाती है।^१

कालिदास के काव्यों के वाह्य—सौन्दर्य में यद्यपि शृङ्गार का विलास प्रतिबिम्बित होता है किन्तु उनके आन्तरिक सौन्दर्य में तपस्या का मूर्तिमान रूप आलोकित होता है। कालिदास के काव्य का सबसे अलौकिक सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यजना है। तपस्या के विन्दु से निर्मित होने वाले रघुवश का सौन्दर्य तभी तक चिन्ताकर्षक रहता है जब तक राम की अलौकिक तपस्या रहती है। इसके पश्चात् तो वाह्य सौन्दर्य की प्राप्ति की गतिशीलता अग्निवर्ण तक रघुवश के सौन्दर्य को मिट्टी में मिला देती

१ त प्राप्य सर्वावयवानवद्य त्वावर्तयाऽन्योपगमात्कुमारी ।

नहि प्रफुल्ल सहकारमेत्य वृक्षान्तर काङ्क्षति षट्पदालि ।

तस्मिन्समावशितचित्तवृत्ति मिन्दुप्रभामिन्दुमतीमवेक्ष्य । रघु ६/६८-६९

है। कुमार—सम्भव की रचना का सौन्दर्य पार्वती की तपस्या है। सौन्दर्य का देवता काम जिस शिव को अपने प्रभूततम सौन्दर्यात्मक साधन से जीत नहीं पाता है उसी परमसौन्दर्य की निधि शिव को तपस्या से उद्भूत पार्वती का दिव्य सौन्दर्य पार्वती का बिना मूल्य का दास बना देता है। मेघदूत का यक्ष अपनी प्रिया के उस सौन्दर्य से अभिभूत है जो उसकी तपस्या से आलोकित हो रहा है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो तपोभूमि के ऐसे दिव्य सौन्दर्य की ररानुभूति कराता है जिसका शाश्वत वैभव केवल तपस्या से प्राप्त किया जा सकता है।

वाक् और अर्थ

कालिदास काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य उनके द्वारा प्रस्तुत वाक् और अर्थ में अन्तर्निहित है। वाक् और अर्थ की शास्त्रीय व्याख्या की जा चुकी है। वाक् और अर्थ का साहित्य ही लोकोत्तर सौन्दर्य की अनुभूति कराने में समर्थ हैं कालिदास ने रघुवश के प्रथम श्लोक में ही वाक् और अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए उमा और शिव की उपमानता को स्वीकार किया है। साहित्येतर शास्त्र के वाक् अथवा शब्द यदि सैकत है तो साहित्य के शब्दचन्दन—रज है। दोनों के अर्थों में वही अन्तर है जो स्वर्ण और सौरभभय स्वर्ण—पुष्प के है। सारा जगत ब्रह्मण्ड अर्थ या पदार्थ है। कवि विधाता की सृष्टि को चुनौती देता हुआ नूतन पदार्थों की ऐसी कल्पना करता है जहाँ ब्रह्मा की जरठ बुद्धि स्वप्न में भी नहीं पहुँच सकती है। कवि की सृष्टि की कल्पना से जो सौन्दर्य की भावना रहती है, उसे देखकर ब्रह्मा भी तरुण हो सकता है।

कालिदास की वाणी केवल शास्त्र—स्वीकृत वाक् नहीं है। वाक् तो वह है जो अर्थों को अभिव्यक्ति दे। कालिदास के अर्थ भी वाक् है। उनकी जड प्रकृति की चेतन है पशु—पक्षी भी मनोरम भाषा का प्रयोग करते हैं। कालिदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनकी प्रतिभा के

स्पर्श से विधि की सम्पूर्ण अचेतन रचना जिस मनोरम अर्थ को अभिव्यजित करती है उसे देखकर यही प्रतीत होता है। सम्पूर्ण जडता में अन्तर्हित चेतना सौन्दर्य को अद्वितीय वाणी मिल गयी है। कालिदास जैसा कवि आम्र की डाली को कोकिल की वाणी दे सकता है। आम्रडाली अपने प्रिय वसन्त को सन्देश देती है।

तया व्याहृतसदेशा सा बभौ निभृता प्रिये।

चतुष्टिरिवाभ्याशे मधौ परभृतोन्मुखी॥ कुस ६/२

भरतमुनि के नटी और नट ही अभिनय करते हैं किन्तु कालिदास की अचेतन प्रकृति भी सभी प्रकार के अभिनयो से योगी के मन को मोह लेती है। आम्र की डालियाँ के आङ्गिक और वाचिक अभिनय की मादकता वाणी से अवर्ण्य है।

अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमारुतकम्पितपल्लवा,

अमदयत्सहकारता मन सकलिका कलिकामजितामपि॥ रघु ६/३३

कालिदास की आम्रलता के अभिनय की भाषा समझा सकते थे। आम्रलता मुग्धा नायिका की भाँति अपने अभिनय से मुनि की समाधि को भडग कर रही है। वन की लताओं को साधारण व्यक्ति लतामात्र समझ सकता है। कालिदास तो इन लताओं को नर्तकी के रूप में देख रहे हैं जो भ्रमर की ध्वनि से मधुरगीत गा रही हैं अपने कुसुम रूप कोमलदसनावलियों के द्वारा मादक स्मित बिखेर रही हैं तथा लयानुगत किसलय रूप अरुणिम हाथों के व्यापार से मादकता की वर्षा कर रही हैं—

त्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतय कुसुमकोमलदन्तरुचो बभु।

उपवनान्तलता पवनाहतै किसलयै सलयैरिव पाणिभि॥

रघुवश ६/३५

सभी चेतन प्राणी कामदेव के प्रभाव का अनुभव मात्र करते हैं किन्तु

कालिदास का कामदेव नडग नहीं है वह तो मधुर वाणी खोलकर मानिनी युवतियों के मान के सैकत-सेतु को एक क्षण में नष्ट कर देता है। कालिदास की प्रतिभा ने तो कामदेव को वाणी ही नहीं नया जीवन प्रदान किया है।

त्यजतमानमल वत विग्रहैर्न पुनरेति गत चतुरवय ।

परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्मवधूजन ॥ रघुवश ६/४७

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठ पुस्कोकिलो यन्मधुर चुकूज ।

मनस्विनीमानविधातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य ॥ कुस ३/३२

कालिदास की लता के पास ही सुन्दर वाणी नहीं है वरन् चन्द्रमा और ताराओं के पास भी रहस्यात्मक वाणी है। इस वाणी को केवल कालिदास ही सुन सकते हैं। एक ओर चन्द्रमा ताराओं की रहस्यात्मक वार्ता सुनने के लिए व्याकुल है तो दूसरी ओर मुस्कुराता हुआ पूर्वदिशा के भेद को खोल रहा है।

चूताङ्कुरास्वादकषायमण्ठ पुस्कोकिलो यन्मधुर चुकूज ।

मनस्विनीमानविधातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य ॥ कुस ३/३२

मन्दरान्तरितमूर्तिन निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका ।

त्व मया प्रियसखीसमागता श्रोष्यतेव वचनानि पृष्ठत ॥

रुद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पुर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम् ।

एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डल दिग्रहस्यमिव रात्रिचोदितम् ।

कुस ८/५६-६०

कालिदास के कुमुदपुष्प ने भरपेट चादनी का पान कर लिया है किन्तु उसे पचा नहीं पा रहा है। अतः भ्रमरो की गूँज में कराहते हुए अपने लोभ पर पश्चाताप कर रहा है।

एतदुच्छ्वसितपीतमैन्दव बोद्धुमक्षयममिव प्रभारसम् ।

मुक्तषट्पदविरावमज्जसा भिद्यते कुमुदमानिबन्धनात् ॥ कुस ८/७०

कालिदास की वेदना साधारण वेदना नहीं। इनकी वेदना के सताप को अज और रति के विलाप सीता के रुदन और विरही यक्ष की पीडा में देखी जा सकती है। इनकी वेदना जड़ और चेतना को व्याकुल कर देती है। वन देविया मुक्ता के समान आसुओं की धारा बहाती है।^१ हिरण—घास खाना छोड़ देते हैं और मयूर नर्तन करना। और तो और हिसक पशुओं वाला कठोर वन भी रो उठता है।^२ अशोक लाल फूलों के बहाने आसू बहाता है।^३ तथा वृक्ष अपनी शाखाओं के रस—निस्पन्दन रूप आसू को बहाकर अपनी विकलता को अभिव्यक्त करते हैं।^४

कालिदास ने जिन अचेतन पशु—पक्षियों को नूतन वाणी दी है उनमें उनकी निजी चेतना का सौन्दर्य का रस पूरित है। नन्दिनी^५ गो की वाणी में जीवन का संगीत है जिसके स्वर में मंगलमय भविष्य की सुनहली किरणें फूट पड़ती हैं। दिलीप और सिंह के सवाद के प्रसङ्ग में सिंह की वाणी सुनकर यही प्रतीत होता है कि हिंसा के मन में भी करुणा की धारा छिपी रहती है। सिंह की वाणी का रहस्य शिव का अनुग्रह है। वृषभ पर आरूढ़ होते समय शिव के पद—स्पर्श से सिंह का भीषण दहाड़ मनुष्य की वाणी भी बोलता है। कालिदास का सिंह वाह्यरूप से तो हिंसक प्रतीत होता है। वस्तुतः उनको सिंह कठोर परीक्षा—स्थल है जिसको जीत लेने पर मनुष्य की कामना सिद्ध हो सकती है।

१ पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवताना।

मुक्तास्थूलास्तरूकिसलयेष्व श्रुलेशा पतन्ति ॥ उ मे ४६

२ नृत्य मयूरा कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहूर्हरिण्य।

तस्या प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्बुद्धित वनेऽपि ॥ रघु १४/६६

३ स्मरतेव सशब्दनूपुर चरणानुग्रहमन्य दुर्लभम्। अमुना

कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वम शोकेन सुगात्रि। शोच्यसे ॥ रघु ८/६३

४ विलपन्निति कोसलाधिप करुणार्थग्रथित प्रिया प्रति।

अकरोत्पृथ्वीरूहानपि सुतशाखारसवाष्पदूषितान् ॥ रघु ८/७०

५ स कीचकैर्मारुत्पूर्णरन्ध्रै कूजदभिरापादित वशकृत्यम्।

शुश्राव कुजेषु यश स्वमुच्चैरुदगीय मान बनदेवताभि ॥ रघु २/१२

अयोध्यावासिनी नगरवधू को जब कालिदास वाणी दे देते हैं तो यही प्रतीत होता है कि कालिदास की समष्टि—मडगल भावना नगरवधू की वाणी में बोल रही है। नगरवधू की पीडा में वर्तमानकालीन राजनेताओं द्वारा की गयी भारत की दुर्दशा की सुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है।^१

दिलीप के यशगान करने वाली वनदेविया मानो कालिदास के गौरव की कहानी कह रही है। इनके बास कृष्ण की मुरली की ध्वनि को उपस्थित कर रहे हैं।^२ कालिदास के मेघ की गर्जना शिव—उपासना के संगीत के शिवत्व ध्वनि की सृष्टि करती है।^३ कवि कैलाश पर्वत में जिस समय शिव के अट्हास की ध्वनि सुनायी पड़ती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि अमूर्त हास की मूर्त रूप धारण कर शिवत्व की ध्वनि सुना रहा हो।^४ कालिदास का मेघदूत तो ऐसा काव्य है जिसके प्रत्येक अमूर्त या जड तत्त्व में एक मधुर भाषा का समायोजन किया गया है। धूम ज्योति, सलिल से उत्पन्न होने वाले मेघ को सन्देश देने वाला कवि प्रकृति की मूक भाषा के जिस रहस्य को उपस्थित करता है उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि सारा जगत एक लयात्मक मधुर वाणी का समुच्चय है। कुमारसम्भव का जड पात्र— हिमालय को वाणी देकर कवि ने सम्पूर्ण जड जगत को चेतनता के अद्वितीय रंग से रजित कर दिया है।

कवि अमूर्त आकाश की वाणी रति को ही जीवन प्रदान नहीं करती वरन् जीवन—सघर्ष में हारे हुए सम्पूर्ण मानव जाति को अवलम्बन देकर यह बताती है कि मानव का प्यार का दामन सकुचित तथा सीमित है। उसे तो व्यापक आकाश ही आश्रय दे सकता है जो चित् शक्ति का अद्भुत विलास है।

१ निहादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनि स्यात्सगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ॥ पूमे० ५६

२ स कीचकैर्मरुत्पुर्णरन्ध्रै कूजदभिरापादितवशकृत्यम्।

शुश्राव कुजेषु यश स्वमुच्चैरुदगीयमान वनदेवताभि ॥ रघुवश २/१२

३ निहादस्ते मुरज हव चेत्कन्दरेषु ध्वनि

स्यात्सगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र ॥ पूमे ५६

४ शृङ्गोच्छायै कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित रव,

राशीभूत प्रतिदिनमिव त्रयम्बकस्यादृहास ॥ पू मे ५८

रामके धनुष के टूटने वाली ध्वनि केवल वज्र की ध्वनि नहीं है वरन् उस ध्वनि ने परशुराम को चुनौती देकर उनके गर्व को दूर कर दिया। सीता को अपने मे समाहित करने वाली वसुन्धरा की गडगडाहट की ध्वनि राम के सम्पूर्ण पुरुषार्थ पर प्रश्न चिन्ह लगाकर भावी मानव के स्त्री के प्रति किये गये अविवेक पूर्ण प्रहार पर विचार करने के लिए बाध्य करती है।^१ प्रातः कालीन वनस्थली के पत्तों पर पड़ने वाली तिय लिय^२ की ध्वनि को कवि ने ऐसी जीवन्त भाषा दी है कि इस ध्वनि ने राम की सभा को पश्चाताप के सिन्धु में निमज्जित कर दिया।^३

कालिदास की वाणी केवल शास्त्रीय वाणी नहीं है। यह तो चित् शक्ति का एक भाग है, जिसके विभिन्न रूप ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। कवि की सूक्ष्मदर्शिनी प्रतिभा ने प्रकृति के प्रत्येक कण-कण की ध्वनि को समझकर उसके रहस्य को अभिव्यक्त किया है। सारी प्रकृति केवल जडता का पुज नहीं है, उसके प्रत्येक क्रियाओं में एक अनबूझ-भाषा का वैभव है जिसे भौतिकवादी दृष्टिकोण समझ नहीं सकता है। नदी की धारा की कल-कल ध्वनि पवन का बहना झरना की ध्वनि, पत्तों की मर्मरता कलियों का चिटकना, किरणों का प्रस्फुटन आदि प्राकृतिक ध्वनियाँ बिना मानवीय भाषा के अपनी अलौकिक भाषा से मानव को अनुपम अर्थ-वैभव प्रदान करते रहते हैं। इनकी भाषाओं का प्रयास करती रहती है। जागतिक पदार्थों की जडता केवल उसका आवरण मात्र है, उसके अन्तस्थल में चेतना की अमर ज्योति अन्तर्निहित है। मानव की सीमित बुद्धि इस रहस्य को समझने में असमर्थ है।

संस्कृत के आचार्यों ने सम्पूर्ण काव्यार्थ को तीन रूपों-वस्तु अलंकार और रस के रूप में विभक्त किया है। सम्पूर्ण पदार्थ कवि-शब्दों में समाहित

१ भज्यमानमतिमात्कर्षणात्तेन वज्रपरुषस्वन धनु ।

भार्गवाय दृढमन्यवे पुन क्षत्रमुद्यतमिव न्यवेदयत् ।। रघु ११/४६

२ एवमुक्ते तया साध्व्या रन्धात्सद्योमवादभुव ।

शातहृदमिव ज्योति प्रभामण्डलमुद्ययौ । रघु १५/८२

३ तदगीतश्रवणैकाग्रा ससदश्रुमुखी बभौ ।

हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली । रघु १५/६६

होकर काव्यार्थ कहे जाते हैं। सभी अर्थों की बौद्धिक सत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। काव्य के अर्थ लौकिक अर्थों के विलक्षण होते हैं इसीलिये हृदय होते हैं। कुछ काव्य के कुछ अर्थ हृदय के भाव—बीज को अकुरित कर उसे पल्लवित एवं पुष्पित करते हैं कुछ तो बौद्धिक पिपासा को तुष्टिमात्र प्रदान करते हैं और कुछ कर्ण—विवर में प्रविष्ट होकर समाप्त हो जाते हैं।

इसकी चर्चा की गयी है कि किसी वस्तु के सौन्दर्य की प्रतीति समग्र रूप में होती है लेकिन उस समग्रता में उसके किसी एक भाग अथवा विन्दु को सौन्दर्य भी चित्त को आह्लादित करता है। कालिदास ने रघुवश के प्रारम्भ में उमा और शिव की जिस रूप में वन्दना की है उसे देखने से यही प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण ससार का ब्रह्म अथवा शिव रूप है। इसी ब्रह्म या ईश्वर के दो रूप स्त्री और पुरुष बनते हैं और ये ही दोनों रूप जगत् के माता—पिता कहे जाते हैं—

स्त्रीपुसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्ते सिसृक्षया ।

प्रसूतिभाज सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥ कुस २/७

कालिदास का रघुवश एक उदात्तचरित्रवाला काव्य है। रस की दृष्टि से इसे वीररस प्रधान कहा जा सकता है किन्तु इस काव्य का सौन्दर्य स्त्री—पुरुष के वाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य की मीमांसा है। रघुवश का प्रारम्भ राजा दिलीप जैसे आदर्श पराक्रमी, तपस्वी त्यागी दयाशील तथा प्रजाप्रिय राजा से होता है किन्तु उसका अन्त बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। जिस राज्य का प्रारम्भिक शासक पुरुष रहा हो, उसी राज्य की अन्तिम शासक महिला है।^१

महारानी के हाथ में शासन—सूत्र समर्पित करने वाले कालिदास इस बात को अभिव्यक्त करते हैं कि सम्पूर्ण ससार में उमा और शिव का ही

१ मौलै सार्ध स्थविरसचिवैर्हंसिहासनस्था

राज्ञी राज्य विधिवदशिवदभर्तुस्थाहताज्ञा ॥ रघुव १६/५७

विलास है। एक में दोनों हैं अथवा दोनों की शाश्वत सत्ता है अथवा एक के अभाव में दूसरा शासन—सूत्र का नियंत्रण करता रहता है। कालिदास की नारी वाणी रूपा है और पुरुष अर्थ रूपा। यदि तपोजन्य सौन्दर्य नहीं रहता है तो उस अर्थ की सत्ता वाणी के गर्भ में अन्तर्निहित हो जाती है केवल वाणी का चमत्कार रहता है।

कुमारसम्भव तो उमा और शिव के शाश्वत प्रेम का हिमालय है। स्त्री—पुरुष के शाश्वत प्रणय से कुमार ऐसे पुत्र की उत्पत्ति होती है जो असुरों का विनाश करता है। सम्पूर्ण काव्य शृंगार रस के जिस श्रेयस्कार रूप को प्रस्तुत करता है उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि रघुवश के वाक और अर्थ कुमारसम्भव में सम्पृक्त होकर विश्व का कल्याण करते हैं। कुमारसम्भव का वर्णन एक और आदर्श की सृष्टि करता है तो दूसरी ओर प्रणय के पावनरूप को प्रस्तुत करता है। जीवन न उमा रूप है न शिव रूप। तपस्विनी उमा रूपी कल्पना को ही शाश्वत शिव का सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है।

मेघदूत का यक्ष अर्थ रूप भावात्मक जगत का प्रतीक है, उसकी तपस्विनी प्रिया वाणी का शृङ्गार है। अर्थ बिना वाणी के पलाश का पुष्प है। अधिकांशतः काव्यों में नारी का विरह—वर्णन देखा जाता है किन्तु मेघदूत ही एक ऐसा काव्य है जिसका पुरुष पात्र प्रिया—विरह में इतना व्याकुल है कि अचेतन मेघ को अपने हृदय की व्यथा सुनाकर उससे दौत्य कर्म करने के लिए प्रार्थना करता है। मेघदूत का यक्ष यद्यपि वाह्य रूप एक प्रकार का विशिष्ट जीव है किन्तु आन्तरिक रूप से तो वह राम तथा अर्थ का प्रतीक है। उसकी प्रिया भी सीता तथा वाणी की प्रतिमूर्ति है। मेघ पवनदूत तथा शक्ति का प्रतीक है। सम्पूर्ण काव्य में एक शाश्वत सत्य बिना नारी के पुरुष का जीवन अधूरा है—की व्याख्या की गयी है। वस्तुतः वही अर्थ काव्य का अर्थ है जो वाणी के लिए समर्पित हो और वही वाणी है जो अर्थ के लिए हो तो दोनों के साहित्य का सौन्दर्य विश्व का मंगल कर सकता है।

रस—विवेचन

मातृगुप्त की दृष्टि में रस तीन प्रकार के होते हैं—

१ वाचक, २ नेपथ्य और ३ स्वभावज ।

रस के अनुरूप वार्तालाप श्लोक वाक्य तथा पदों का कथन वाचिक रस कहा जाता है ।

कर्म रूप वय जाति—देश और काल के अनुरूप माला आभूषण वस्त्र आदि धारण करना नेपथ्य रस कहा जाता है तथा रूप—यौवन लावण्य स्थैर्य धैर्य आदि गुणों का कथन स्वाभाविक रस कहा जाता है ।^१

वाचिक रस

कालिदास रसवादी कवि है । इनकी लेखनी सर्वत्र रस—धारा को प्रवाहित करती रहती है । कुमारसम्भव के पंचम सर्ग के उत्तरार्द्ध का वार्तालाप क्रमशः शृङ्गाररस की परिणिति को प्राप्त होता है । इसी प्रकार इसी काव्य का सातवा सर्ग शिव और पार्वती की वार्तालाप शृङ्गार रस का मधुर समुद्र की सृष्टि करता है । रघुवश के रघु—इन्द्र—रघु—कौत्स राम—परशुराम आदि की सवाद योजना वीर रस के विभिन्न रूपों को व्यजित करती है । मेघदूत के यक्ष के द्वारा दिये गये मेघ के सन्देश में तो विप्रलम्भ शृङ्गार की विशद विवेचना की गयी है ।

कालिदास की रस—विवेचना पूर्व के अध्याय में प्रस्तुत की गयी है । यहाँ रस की समग्र विवेचना प्रस्तुत की जाती है । शृङ्गार—वसन्त की अनुपम सर्जना करने वाले कालिदास का शृङ्गार मनोवैज्ञानिक तथ्यों को अभिव्यक्त करता हुआ भारतीय दार्शनिकों के सत्य—साक्षात्कार की भूमिका प्रस्तुत करता है । भारतीय आचार्यों की मान्यता रही है कि शृङ्गार की पूर्णता स्वकीया के

१ द्र. कालिदास ग्रन्थावली—समीक्षा—निबन्ध पृ. २३ पर उद्धृत ।

भारतीय प्रकाशन अलीगढ़, तृतीय संस्करण

आलम्बन से प्राप्त की जा सकती है। रस एक है आलम्बन—भेद की विविधता उसका वाह्य अलकरण मात्र है वस्तुतः रसानुभूति के एकात्म का अपलाप नहीं किया जा सकता है।

रसानुभूति पर्यन्त उसके माध्यमों की व्याख्या जितनी सूक्ष्मता से की जाय वह तो बौद्धिक—क्षमता का विलास है, किन्तु रसानुभूति की समरसता पर उगली नहीं उठायी जा सकती है। पार्वती हमारे समक्ष तीन रूप में अपने सौन्दर्य की अनुभूति कराती है। सहज सौन्दर्य उनका प्रथम रूप है। पुष्प आदि अलकारों से अलंकृत सौन्दर्य का द्वितीय रूप है। तपस्या के पश्चात् का तपोजन्य सौन्दर्य उसका तीसरा रूप है। तीनों प्रकार के सौन्दर्य—चित्रण की अपनी भूमिकाएँ हैं। प्रथम सौन्दर्य उनके यौवन का वरदान है। यह यौवन प्रकृति के प्रत्येक उपादान को सौन्दर्य प्रदान करता है किन्तु पार्वती तो विधाता की अनुपम रचना है। इस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कालिदास ने नख—शिख वर्णन का आश्रय लिया है।^१ पार्वती का यह सौन्दर्य कामदेव का अस्त्र बन जाता है।^२

द्वितीय प्रकार का सौन्दर्य पुष्पाभरणों से सुसज्जित होकर जब शिव के समक्ष उपस्थित होता है तो शिव के मानस में किंचित मात्र ही हलचल होता है किन्तु इसी सौन्दर्य के बल पर काम शिव के ऊपर प्रहार करने में सफल होता है। किन्तु शिव उसे जलाकर नष्ट कर देते हैं। कवि के काम दाह का रहस्य यही है कि अलंकृत सौन्दर्य श्रृङ्गार के शिवत्व को नहीं प्राप्त कर सकता है। इसलिए पार्वती ने अपने सम्पूर्ण अलकारों का परित्याग कर दिया और अपने रूप को अवन्ध्या बनाने के लिए कठोर तपस्या प्रारम्भ कर दिया। इस तपस्या जन्य सौन्दर्य ने शिव को पार्वती का क्रीत दास बना दिया। इस सौन्दर्य ने एक ओर पार्वती के मन को पूर्ण शान्ति प्रदान किया और दूसरी ओर शिव के मन को व्याकुल कर दिया।

१ उन्मीलित तूलिकयेव चित्र सूर्याशुभिभिन्नमिवारविन्दम्।

बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्त नवयौवनेन॥ कुस १/३२

२ कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्र बाल्यात्पर साथ वय प्रप्रेदे। कुस १/३१

अथ विश्वात्मने गौरी सदिदेश मिथ सखीम् ।

दाता मे भूभृता नाथ प्रमाणीकियतामिति ।। कुस ६/१

स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम् । कुस ६/३

शिव उमा के सौन्दर्य रस का पान करना चाहते हैं किन्तु उमा बिना पिता की आज्ञा से अपने सौन्दर्य को कलकित नहीं करना चाहती । शिव ने किसी—किसी प्रकार उमा को स्वीकृति देकर स्वयं पार्वती से विवाह करने के लिए ऋषियों को बुलाया । शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रणय को पूर्वरग की सज्ञा दी जाती है ।

शिव और पार्वती के विवाह के पश्चात् कालिदास ने जिस शृङ्गार का वर्णन किया है उस शृङ्गार के औचित्य पर आचार्यों की उगली उठी रहती है । किन्तु किसी भी दृष्टि से देखा जाय उस वर्णन में किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं है । शिव और पार्वती का प्रणय व्यष्टिगत नहीं है वरन् समष्टिगत है । जब तक स्थायी भाव का आवरण भङ्ग नहीं होता तब वह उद्बुद्ध होकर रसता को प्राप्त रहता है । शृङ्गार और आवरण अथवा रसानुभूति और आवरण दोनों की सत्ता को स्वीकार करना सामाजिक मर्यादा अथवा कृत्रिमता को स्वीकार करना है । आचार्यों ने भी काव्य—अलौकिकता को स्वीकार किया है । काव्य की लौकिकता एक ओर उसे जागतिक रहस्यों को उद्घाटित करती है तो दूसरी ओर उसकी अलौकिकता निवारण को भग कर एकरसता की अनुभूति कराती है । लोक की करुणा आनन्द की सृष्टि नहीं करती किन्तु काव्य की करुणा आनन्दात्मक होती है । यदि मर्यादा की बात की जाय तो किसी भी नायिका के श्लील अनुभावों से शृङ्गार रस की अनुभूति नहीं हो सकती है क्योंकि भारतीय आचार्य के अनुसार पत्नी के अतिरिक्त सभी रमणिया माता होती हैं ।

इस बात की चर्चा की गयी है कि कालिदास को सहजरूप आकर्षित करता है । कलाकार जिस समाधि अवस्था में कला का निर्माण

करता है वहा न लोक मर्यादा रहती है न वाह्य आडम्बर वहाँ तो केवल एक चेतन का प्रकाश रहता है जहाँ उसे अपूर्व वस्तु निर्माण को क्षमता प्राप्त हो जाती है। काव्य की वस्तु बनने पर कोई भी पात्र अपने विशेष रूप का परित्याग कर साधारणीकरण की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

कालिदास की दृष्टि तो विश्वव्यापक सौन्दर्य—सर्जना में आसक्त है। उनका शृङ्गार लौकिक नदी है जो काम की पिपासा की पूतिमात्र है। कई वर्षों तक सम्भोग करने के बाद ही उनका वीर्य खलित होता है। इस वीर्य को धारण करने की क्षमता जब अग्नि में है तो अन्य के धारण करने की बात ही नहीं उठती है। कालिदास का शिव शाश्वत सौन्दर्य का प्रतीक है इसीलिए उसे अलङ्कार की आवश्यकता नहीं होती है।

इसी प्रकार राम और सीता के शृङ्गार की अलौकिकता वर्णित है। कालिदास का ही पात्र अपने प्रणयी के वियोग का सहन नहीं कर सकता है चाहे पुरुष पात्र हो या स्त्री। अपने प्रणयी के वियोग में व्याकुल हो जाते हैं। राम ऐसा पात्र भी धनुष उठा लेता है। राम का धनुष उठाना यह व्यक्त करता है कि सभी रसों की सृष्टि शृङ्गार के बीज से ही हुई है। जैसा कि शारदातनय ने भावप्रकाशन में बताया है कि जिस समय भक्त आदि से सुशोभित शिव ने पार्वती से रति—कामना की, उस समय पार्वती की सखियों के चित्त हास की उत्पत्ति हुई। जब शिव ने एक ही बाण में असुरों का विनाश किया उस समय शिव की वीरता को देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। रुद्र की क्रोधावस्था ने यक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर दिया इसलिए सखियों के चित्र में करुणा उत्पन्न हुई। श्मशान पर शिव के वीभत्स रूप को देखकर प्रमथादिगण भयविह्वल होकर शिव की शरण में चले गये।^१

कालिदास ने शृङ्गार के दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन किया है।
मेघदूत शापज विपलम्भ का अलौकिक उदाहरण है।^२ कालिदास का शृङ्गार

१ द्रमाप्र, पृ ५५, ५७, ५८

२ त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागै शिलाया
मात्मान ते चरणपतिता यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रस्तावन्मुहूर् पचितेर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नौ कृतान्त ॥ उ मे पृ ४७

वर्णन शाश्वत प्रणय का चित्रण उपस्थित करता है। कालिदास जन्मान्तर—प्रणय को स्वीकार कर प्रणय को चिरन्तनता पवित्रता और अद्वितीय सुन्दरता प्रदान की है। इनकी मान्यता है जीवन का सौन्दर्य नारी और पुरुष के समर्पित प्रणय में है।

आज प्रिया के निष्ठुर वियोग का सहन कर सकता है। किन्तु दूसरा विवाह नहीं करते हैं। राम स्वर्ण की सीता को ही अपने शुद्ध प्रणय को समर्पित कर देते हैं। सीता ने अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने प्रणय के स्वर्ण को कलङ्कित नहीं होने दिया। यज्ञमेघ को दूत बनाकर अपने पूर्ण प्रणय को चरितार्थ करता है। कालिदास के पात्रों के पात्रों के सौन्दर्यातिशय शृङ्गार के सागर में सारा जड जगत तथा काल्पनिक सौन्दर्यात्मक जगत समाया हुआ है।

कालिदास को असयत कामभाव स्वीकार्य नहीं है। दशरथ की असयत कामासक्ति उन्हें पुत्र—वियोग की अग्नि में जलाकर राख कर देती है। कुश की भी कामिनियों के साथ की गयी रगरेलिया^१ उसके पैतृक आभरणजैत्राभरण^२ को जल में डुबा कर सम्पूर्ण रागात्मक चित्र को विषाद के अनल में डाल देती है। अग्निवर्ण का अनियन्त्रित काम लोक—विश्रुत रघु के दीप को ही बुझा देता है। वस्तुतः कालिदास धर्माविरुद्ध काम रूप ईश तत्व के ही उपासक है। तभी तो इनके शृङ्गार की मुक्तकठ से प्रशंसा की जाती है।^३

रति—विलाप और अज—विलाप के प्रसंग में कालिदास की करुणा का ऐसा मर्मन्तक चित्र खींचा जिसको देखकर वज्रहृदय भी अपनी ही

१ तेनावरोधप्रमदासखेन विगाहमानेन सरिदवरा ताम्।

आकाशगङ्गारतिरप्तसरोभिर्वृतो मरुत्वाननुयातलीक ॥ रघुवश १६/७१

२ तदस्य जैत्रभरण विहर्तुरज्ञातपात सलिले ममज्ज। रघुवश १६/७२

३ एकोऽपि जीयते इन्त कालिदासो न केनचित्।

शृङ्गारे ललितोदगारे कालिदासस्यै किमु॥

शृङ्गारे ललितोदगारे कालिदासो विशिष्यते। राजशेखर

अश्रुधारा मे विभज्जित हो जाता है। रति ब्रह्मा के द्वारा चेतना प्राप्त करने के पश्चात् विलाप विह्वला रति के इस उद्गार— हे नाथ। तुम्हारे जिस सुन्दर शरीर से विलासियो की उपमा दी जाती थी उसकी इस दशा को देखकर भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं होता है। वास्तव मे स्त्रियो का हृदय अत्यन्त कठोर होता है।^१ रति की विकलता की पराकाष्ठा को द्योतित करती है। कालिदास ने पूरे सर्ग मे केवल रति के करुणात्मक भाव को मार्मिक ढंग से उपस्थित किया है।

रति—विलाप के द्वारा कवि ने जहाँ स्त्री की करुणा को चित्रित किया है वही अज—विलाप के माध्यम से पुरुष की करुणा को अत्यन्त सवेदनशील बना दिया है। प्रिया—वियुक्त अज कहता है कि यदि इस माला मे मारने की शक्ति है तो लोऽसे मै अपने हृदय पर रख रहा हूँ किन्तु मेरे प्राणो का अपहरण नहीं करती है। अतः ज्ञात होता है कि दैव की इच्छा से कही विष भी अमृत हो जाता है तो कही अमृत भी विष।^२

शोक—विह्वल अज की मूर्च्छित चेतना यह नहीं चाहती कि इन्दुमती का मृत शरीर भी चिता पर रखा जाय क्योंकि उसके शरीर की जो कोमलता नव पल्लव के विस्तर से भी पीडित होती थी वह किस प्रकार चिता की विद्रूप कठोरता सह सकेगी।^३

कवि की करुणा बविध रूपो मे प्रकट होती है। कवि की करुणा चेतन या अचेतन को भी शोक—सागर मे विमज्जित कर देती है।

रसो के साथ गुणो का विवेचन अपेक्षित है। आचार्यों ने इस धर्म गुणो के महत्त्व को अत्यधिक रूप मे स्वीकार किया है। पद—रचना वस्तु के

१ उपमानमभूद्विलासिना करण यत्तव कान्तिमत्तया।

तदिद गतमीदृशी दशा, न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय ॥ कुस ४/५

२ अगिय यदि जीवितापहा हृदये किम् निहिता न हन्ति माम्।

विषमप्यमृत क्वचिदभवेदमृत विषयीश्वरेच्छया ॥ रघु ८/४६

३ नवपल्लवसस्तरैऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम्।

तदिद विषहिष्यते कथं वद वामोरु। चिताधिरोहणम् ॥ रघु ८/५७

स्वरूप में निखार लाती है। कालिदास की पद-सरचना की विशेषता अर्थानुकूलता की सुन्दर अभिव्यक्ति है। इनकी पद-शैल्या माधुर्य-व्यजक वर्णों से सघटित होती है अतः उसमें लालित्य रहने के कारण समास अथवा अल्पसमास की सत्ता का विलास रहता है। पारभाषिक भाषा में इनकी पद-सरचना का होती है।

कालिदास की अलङ्कार-योजना की रमणीयता ने कालिदास को उपमा का कवि सिद्ध कर दिया है। सम्पूर्ण रचनाओं के अलङ्कारों के प्रयोग की स्वाभाविकता किस सहृदय को आकर्षित नहीं करती है। अलङ्कार-प्रयोग के चारुत्व का प्रतिपादन पूर्व के अध्याय में किया है अतः उनकी विवेचना पिष्टपेषण को चरितार्थ करना है।

कालिदास का वाह्य प्रकृति का चित्रण जितना आकर्षक है उसे अधिक मानसिक-प्रक्रियाओं की विवेचना में रमणीयता और यथार्थ की सुन्दरता है। कालिदास का मन वह अद्वितीय कोश है जिसमें जन्म जन्मान्तर के अर्थ सस्कार रूप में पड़े रहते हैं।^१ इसीलिए मन की अनन्त गति को मापना सूर्य की किरणों को मुट्ठी में बाध रखना है।^२ यही मन भावी घटनाओं को प्रकाशित कर देता है।^३ मन को किसी विषय में आसक्त कर देने से न मन को विषय से परावर्तित किया जा सकता है न इन्द्रियों को ही।^४

काम आधुनिक मनोवैज्ञानिक का प्रत्येक कार्य का बीज है। कालिदास का काम, अङ्ग और देव भी है। इस काम का सयत रूप ही शिवत्व का सम्पादन कर सकता है। कामार्त व्यक्ति अधा हो जाता है वह चेतन और अचेतन के भेद को भूल जाता है।^५ काम-भावना जीवन को अपने ढंग से

१ मनो हि जन्मान्तरसगीतज्ञम्' रघु ७/१५

२ मनोरथानामगतिर्न विद्यते। कुस ५/६४

३ आगामिसुखदुःखं वा हृदयसमवस्था कथयति। मालवि ५/६

४ स्वादुभिस्तु विषयैर्हतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते। रघु १६/४६

५ कामार्ता हि प्रकृतिकृपणा चेतनाचेतनेषु' पूमे १/५

प्रभावित करती है। स्वार्थ के अनुकूल देखने वाला काम अपने विरुद्ध कुछ सुनना नहीं चाहता है।^१ प्रेम का मूलतत्त्व काम है। कालिदास का प्रेम जीवन का शाश्वत सगीत है। यह प्रेम दो प्रेमियों में शाश्वत उसी प्रकार रहता है जैसे सूर्य और कमल की शोभा।^२ शुद्ध-प्रणय किसी की अपेक्षा नहीं करता है।^३

कालिदास की रचनाओं में वाह्यजगत और अन्तःप्रकृति की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

स्वाभाविक रस

कालिदास की दृष्टि, स्त्री और पुरुष की शाश्वत असम्पृक्तता की पृष्ठभूमि में ही उनके सौन्दर्य की विवेचना करती है। नाट्यशास्त्रों में वर्णित बीस योषिदालंकारों में तीन अलङ्कार-भाव हाव हेला-अङ्गज है। शोभा कान्ति, दीप्ति, माधुर्य धैर्य प्रगल्भता और औदार्य-अयत्नज अर्थात् बिना किसी प्रयास के होने वाले हैं तथा रस अलङ्कार-लीला विलास विच्छित्ति, विभ्रम किलकिचित् मोस्ट्टायित, कुट्टमित ललित और विल्लित स्वाभाविक है।^४ पुरुषों के शोभा, विलास माधुर्य स्थैर्य, गाम्भीर्य आदिअलङ्कार हैं।

कालिदास सहजरूप के मादक सौन्दर्य पर अपनी समग्र प्रतिभा और भाव को न्यौछावर कर देने वाले हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की शकुन्तला नैसर्गिक रूप की मनोहारिणी प्रतिमा है।^५ इसलिए उसके मधुर रूप के लिए मण्डन की आवश्यकता नहीं पड़ती है और तो और उसके रूप के लिए उपस्थित किये उपमानों से भी उसका रूप रमणीय है। उपमान रम्य और लक्ष्मी से युक्त है किन्तु शकुन्तला का सौन्दर्य तो उन दोनों उपमानों से

१ न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते, कुस ५/८२

२ सूर्यापाये न खलु कमल पुष्पति स्वामभिख्याम् । उ मे २०

३ 'न शोभते प्रियजने निरपेक्षता' (मालवि ३/२०)

४ द्र दशरूपक २/३० - ३२

५ सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापिरम्य मलिनमपिहिमाशोर्लक्ष्मलक्ष्मीतनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम् ।। अशा २/२६

अधिक मनोज्ञ है। रम्यता और मनोज्ञता में मूलभूत अन्तर है कि रमणीय वस्तु में मन की गतिशीलता ध्वनित होती किन्तु मनोज्ञ में रमणीय वस्तु की ही मन में गमनशीलता—द्योतित होती है।

कालिदास ने रमणी के यौवन को शरीर—लता का सहज अलङ्कार माना है। यह यौवन रसिक को बिना आसवपान के ही मादक बना देता है। मदिरा सेवन के पश्चात् ही मदमत्त बनाती है किन्तु यौवन दृष्टि का विषय बनते ही व्यक्ति को मदमत्त कर देता है। काम के पुष्पबाणत्व की प्रसिद्धि को भी तिरस्कृत करने वाला यौवन काम का बिना पुष्प का बाण है।^१ कालिदास ने इसे चरितार्थता भी प्रदान की है। कामदेव ने जिस समय शिव पर प्रहार करने के लिए वसन्त की सर्जना उस समय की जब शिव को देखकर वह कम्पित हो गया था किन्तु वही पर उपस्थित पार्वती के यौवन ने ही शिव पर प्रहार करने की क्षमता प्रदान की। कालिदास की पार्वती सम्पूर्ण अङ्ग से अनिन्दनीय है। यही कारण है कि उनके रूप को देखकर रति भी लज्जित हो जाती है। पार्वती के ऐसे ही सहज और मादक रूप का अवलम्बन लेकर काम ने शिव—विजय की कामना की—

ता वीक्ष्य सर्वावयवानवटा रतेरपि हृपदमादधानाम्।

जितेन्द्रिये शुलिनि पुष्पचाप स्वकार्यसिद्धि पुनराशशरे।। कुस ३/५७

यद्यपि पार्वती ने अपने रूप को पल्लवादि से अलङ्कृत किया था किन्तु काम उसके अनवद्य सहज रूप को शिव—विजय का साधन बनाता है।

शकुन्तला के रूप पर मोहित होने वाला राजसीवृत्ति का राजा दुष्यन्त है। पार्वती का रूप इतना मादक है कि शिव ऐसा समाधिस्थ योगी का भी मन चंचल हो जाता है। कालिदास की उमा केवल अपने अरुणिम अधर के सौन्दर्य से ही शिव के तृतीय नेत्र की ज्वाला को शान्त कर शृङ्गार के रस का मेघ बना देती है।

१ असम्भृत मण्डनमडगयष्टेरनासवाख्य करण मदस्य।

कामस्य पृष्पव्यतिरिक्तमस्त्र वाल्यात्पर साथ वय प्रपेदे। कुस १/३१

हरस्तु किचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि ।

उमामुखे बिम्बफला धरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि । कु स ३/६७

शिव के किंचित आसक्ति का कारण पार्वती का मुख का अद्वितीय सौन्दर्य है उनके मुख पर चन्द्रमा और कमल दोनों की कमनीयता का विलास था यही कारण है कि पार्वती के मुख में सौन्दर्य लक्ष्मी का चिरन्तन निवास हो गया—

चन्द्र गता पदमगुणान्न भुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।

उमामुख तु प्रतिपद्य लोला द्विसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ॥

कु स १/४३)

कवि की कल्पना ने चन्द्रमा और कमल की सत्ता को एक ही मुख में स्थापित कर विधाता की सृष्टि को निरर्थक सा बना दिया। ऐसे सुन्दर मुख के अरुणिम अधर पर विलसित होने वाली पार्वती की स्वच्छ मुसकान ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो लाल किसलय पर उज्ज्वल पुष्प रखा गया हो अथवा विद्रुम के ऊपर मुक्ताफल का विलास हो।^१

शिव के मन के विकार ने पार्वती के सहज सौन्दर्य की लोकोत्तरता को प्रमाणित कर दिया है। किन्तु उस समय एक क्षणवाद पार्वती का रूप सौन्दर्य उस समय दरिद्र व्यक्ति की अभिलाषा बन जाता है जब शिव काम को जलाकर राख कर देते हैं। ऐसी स्थिति में पार्वती स्वतः अपने रूप की निन्दा करने लगती है।^२

कालिदास की सौन्दर्य-दृष्टि अत्यन्त विलक्षण है। सदा इन्होंने सहज रूप की प्रशंसा की है। पार्वती तपस्या के लिए जटाधारण करने पर इसी प्रकार रमणीय लगती है जैसे शैवाल से आवृत्त कमल। कालिदास की

१ पुष्प प्रवालोलपहित यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुच स्मितस्य ॥ कु स १/४४

२ निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती प्रियेषुसौभाग्यफला हि चारुता । कु स ५/१

दृष्टि में सौन्दर्य की प्राप्ति अखण्ड तपस्या का फल है। सौन्दर्य मेपापाचरण की कल्पना करना सूर्य को प्रकाशविहीन बताना है।^१ पार्वती का सौन्दर्य उनके सच्चरित्र की पूर्ण कसौटी है। तपस्या के पूर्व का पार्वती का सौन्दर्य सम्भवतः किंचित् विकारग्रस्त था इसलिए पूर्ण सौन्दर्य रूप शिवत्व को आकर्षित नहीं कर सका। सौन्दर्य की देवी पार्वती पहले स्वतः शिव के पास गयी थी। किन्तु तपस्या के कारण जब उनका सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तब शिव स्वयं पार्वती के पास जाकर पार्वती के सौन्दर्य के सच्चे उपासक बनकर^२ स्वयं विवाह की याचना करते हैं किन्तु पार्वती का सौन्दर्य व्यभिचारित नहीं होता है एक मर्यादा का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करता है।^३

सौन्दर्य के परम उपासक कालिदास ने सौन्दर्य—वर्द्धक योषिदलङ्कारों की सुन्दर विवेचना की है। निर्विकारात्मक सत्त्व से उत्पन्न होने वाला प्रथम विकार रूप भाव^४ सौन्दर्य के पुष्प को सौरभमय बना देता है।

सा युनितस्मिन्नभिलाषबन्ध शशाकशालीनतया न ववतुम् ।

रोमाचलक्ष्येण सा गात्रयष्टि भित्त्वानिराक्रामदरालकेश्या ।। रघु ६/८१)

इन्दुमती के सात्विक मन में अज के दर्शन से प्रथम विकार उत्पन्न हो रहा है। इसलिए उसके भाव ने उसके सौन्दर्य को सुरभित बना दिया है।

विवृष्यती शैलसुतापि भावभङ्गौ स्फुरद्बालकदम्बकल्पै ।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ।। कुस ३/६८

अपने विम्बाफल के समान अधर—पान के लिए ललचाये शिव नेत्र को देखकर पार्वती के मन में विकार उत्पन्न हो गया अतः उन्होंने अपने हाव^५

१ यदुच्यते पार्वति । पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तदवच ।

तथा हि ते शैलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युदेशता गतम् ।। कुस ५/३६

२ अयप्रभृत्यवनाङ्गि तवास्मि दास क्रीतस्तपोभिरित वादिनि चन्द्रमौलो ।। वही ५/२५ कुस

३ अथ विश्वात्मने गौरी सदिदेश मिथ सखीम् ।

दाता मे भूभृता नाथ प्रमाणीक्रियतामिति ।। कुस ६/१

४ निर्विकारात्मकात्सत्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया । द्रु २/३३

५ भाव एव सलक्ष्यविकारो हाव उच्यते । साद ३/६४

को जिस रूप में अभिव्यक्त किया उसे कालिदास ही वाणी दे सकते हैं। विकसित कोमल कदम्ब के समान पुलकित अङ्गो से अपने प्रणय-भाव को अभिव्यक्त करती हुई पार्वती लजीली आखों से युक्त अपने मुख को तिरछे करके स्थित हो गयी। साचीकृत मुख की कल्पना ने शिव जैसे योगी के मन को क्षुब्ध कर दिया।

सौन्दर्य शोभा के द्वारा और आकर्षक हो जाता है। रूप उपभोग और तारुण्य के द्वारा अङ्गो को विभूषित होना शोभा है। पार्वती के सौन्दर्य के समक्ष शृङ्गार-प्रसाधन लज्जित हो जाते हैं।

ता प्राङ्मुखी तत्र निवेश्य वाला क्षण व्यलम्बन्त पुरो निषण्णा ।

भूतार्थशोभाप्रियमाणनेत्रा प्रसाधने सन्निहितेऽपि नाथै ।। कु स ७/१७

कालिदास ने पार्वती की कान्ति को लगभग बीस श्लोको में मूर्तिमान रूप प्रदान किया है। कालिदास ने यद्यपि अलङ्कृत सौन्दर्य का भी वर्णन किया है किन्तु उनका सारा मानसिक प्रयास सहज सौन्दर्य को मूर्तिमान रूप देना है। रघुवश के अन्त में कृत्रिम सौन्दर्य का वर्णन कर यह अभिव्यक्त किया है कि कृत्रिमता जीवन का अन्त है और स्वाभाविक सौन्दर्य जीवन का उल्लास है।

कालिदास की दृष्टि व्यापक है, इसलिए वे कभी चेतन के सौन्दर्य को अचेतन में देखते हैं और कभी अचेतन सौन्दर्य को चेतन में प्रतिबिम्बित करते हैं। अचेतन की चेतनता का दर्शन कालिदास की ही प्रतिभा कर सकती है। सन्ध्याकालीन पश्चिम दिशा उस कन्या के समान सुन्दर प्रतीत हो रही है जिसने अपने माथे पर केसर से भरे बन्धुजीव के पुष्प का तिलक लगा रक्खा हो।^१ कालिदास का चन्द्रमा ही रसिक नायक की भाँति अपनी किरण रूपी उगलियों से रातरूपी नायिका के मुख पर फैले हुए अधेरी रूपी बालों

१ दूरलग्नपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरूपेण मानुना ।

भाँति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका ।। कु स ८/४०

को हटाकर उसका मुख चूम रहा हो और रात भी उस चुम्बन का रस लेने के लिए नेत्र मूद कर बैठी हो।^१

कालिदास ने प्रकृति और मानव को एक रूप में ही देखते हैं। उनके मन में भेद की कल्पना ही नहीं है। उनकी ऊषा सन्ध्या लता पुष्प झरना सरिता आदि मानव के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति रूप हैं। प्रकृति सौन्दर्य का सचेतन रूप है। उसका समग्र सौन्दर्य मानव की कल्पनाओं में समाया हुआ है। कवि उसके सौन्दर्य को नवीनता प्रदान करने के लिए सतत प्रयास करता रहता है। सम्पूर्ण प्रकृति समग्र रूपात्मक सौन्दर्य की चेतनता की सृष्टि करती है। उसके विविध रूप केवल वाणी के विषय मात्र हैं, उसका पर्यवसान एक विराट् सौन्दर्य में उसी प्रकार हो जाता है जैसे सम्पूर्ण भाव एक रस में विलीन हो जाते हैं।

कालिदास ने सौन्दर्य—अभिवृद्धि के लिए अलङ्करण और प्रसाधन की भी विवेचना की है। इनके अलङ्करण प्रकृति के उपहार हैं। स्वर्ण, मुक्ता रत्न आदि को भी अलङ्कार के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके काव्यों में अलङ्कारों की लम्बी सूची है। प्रसङ्ग के अनुकूल इनके पात्र अलङ्कारों को धारण करते हैं। लेकिन इन अलङ्कारों के प्रति कालिदास के मन में गौरव नहीं है। उनका शृङ्गार शृङ्गार के लिए नहीं है वरन् सम्पूर्ण शृङ्गार की सार्थकता प्रिय को आकर्षित करने में है। कालिदास के प्रायः सम्पूर्ण प्रमुख नारी—पात्र अपनी तपस्या के उद्भूत सौन्दर्य के द्वारा ही प्रिय को अपने सौन्दर्य में विलीन करते हैं।

कालिदास की लेखनी ने पुष्पमाल्य के आभरण से नारी—पात्रों को इस प्रकार अलङ्कृत किया है जिसे देखकर सौन्दर्य भी एक बार लज्जित हो सकता है। कवि की पार्वती के वसन्त—पुष्पो के आभरण रत्नों को श्री विहीन

१ अगुलीभिरिव केशसचय सन्निगृह्य तिमिर मरीचिभिः ।

कुडमलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीष रजनीमुख शशी ।। कुस ८/६३

करने वाले हैं। पद्मराग की शोभा को तिरस्कृत करने वाले अशोक—पुष्प स्वर्ण की पीतिमा को ललचाने वाले कर्णिकार के पुष्प और मोतियों के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले सिन्धुवार के पुष्पो से पार्वती अलङ्कृत रति को भी लज्जित कर दे रही है—

अशोकनिर्भर्त्सित्पद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।

मुक्ताकलीपीकृत सिन्धुवार वसन्तपुष्पाभरण बहन्ती ।। कु स ३/५३

अलका की विलासिनिया हाथ में लीला—कमल केशों में कुन्द के पुष्प चूड़ा—पाश में नवीन कुखक के सुमन कपोल देश पर लोघ्र—पुष्प के पराग कानों में शिरीष—पुष्प और सीमन्त में कदम्ब पुष्पो को धारण कर पुष्पसौरभ से सुरभित सौन्दर्य की वर्षा करती है—

हस्ते लीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्ध

नीता लोघ्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री ।

चूड़ापाशे नवकुरवक चारु कर्णे शिरीष

सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम् ।। उ मे २

विदिशा नगरी की पुष्प—चयन करने वाली रमणियों के कमल—पत्र के बने कर्णभूषण की तो अद्वितीय शोभा है ।^१ कालिदास को अशोक के नवीन पुष्प ही उनके प्रणय को उद्दीप्त करने वाले हैं वरन् सुन्दरियों के कणों में आरोपित किसलय भी उनके मन को मदमत्त बना देते हैं ।^२

कवि की नायिकाएँ केशों को विभिन्न पुष्पो से अलङ्कृत करती हैं । विवाह के समय पार्वती के केश मधुक—पुष्पो से अलङ्कृत किये जाते हैं ।^३ उनकी नायिकाओं के श्यामल कुन्तल की जूड़ा मालती पुष्पो से अलङ्कृत की

१ गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलाना ।

छायादानात्क्षणपरिचित पुष्पलावीमुखानाम् ।। पू मे १/२६

२ कुसुममेव न केवलमार्तव नवमशोकतरो स्मरदीपनम् ।

किसलयप्रसवोऽपि विलासिना मदयिता दयिताश्रवणार्पित ।। रघुव ६/२८

३ पयाक्षिपतकाचिदुदारबन्ध दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना कु स ७/१४

जाती है और यही केश गोरे कपोल पर लटकते रहते हैं तब उसे लाल-लाल अशोक, पुष्पो से सजाये जाते हैं। पुष्पो के अतिरिक्त यवाकुर^१ पल्लव तमाल-दल, मृणाल वलय आदि प्राकृतिक अलङ्कारो से इनकी नायिका सौन्दर्य की चादनी को सुरभित बनाती है। कर्पूर कुमकुम अजन चन्दन अगरू कस्तूरी गोचना उबटन आदि से अलङ्कृत सौन्दर्य भी इन्हे प्रिय है।

स्वर्ण मणि मोती रत्न से निर्मित अलङ्कारो से सुसज्जित नायिकाओ का सौन्दर्य उसी प्रकार निखर उठता है जैसे पुष्प से सज्जित लताए तारो से अलङ्कृत निशा और रग-बिरगे पक्षियो से पूरित सरिता का सौन्दर्य जगमगा उठता है।

सा सम्भवदिभ कुसुमैर्लतेव ज्योतिभिरुद्यद्भिरिव त्रियामा ।

सरिद्धिहङ्गैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे ।। कु स ७/२१

कालिदास के सभी अलङ्कार अलङ्कार के लिए हैं। ये अलङ्कार स्वाभाविक रूप से अलङ्कृत हैं। कालिदास के द्वारा प्रयुक्त सभी प्रकार के अलङ्करणो की विवेचना एक पुस्तक का निर्माण कर सकती है। अन्त मे यही कहा जा सकता है, कि कालिदास समष्टिगत सौन्दर्य के उपासक है। उनका समष्टिगत सौन्दर्य विश्वमूर्ति शिव है।^२ जिसे किसी प्रकार के अलङ्कार की आवश्यकता नहीं है। स्वाभाविक सौन्दर्य का आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जब चित् का भङ्ग-आवरण व्यापक सौन्दर्य मे विलीन हो जाय। इस विलीनता के लिए भावेकरसानुभूति की आवश्यकता है।^३

कालिदास का काव्य-सौन्दर्य भारतीय सस्कृति की परिपूर्णता के निष्पादन मे है। ये यही चाहते हैं कि प्रेम ही स्त्री और और पुरुष को वाक् और अर्थ के समान एकाकार कर सकते हैं। इस प्रेम को पाने के लिए उनके

१ अरुणरागनिषेथिभिरशुकै श्रवणलब्धपदैश्च यवाकुरै । रघु ६/४३

२ विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।

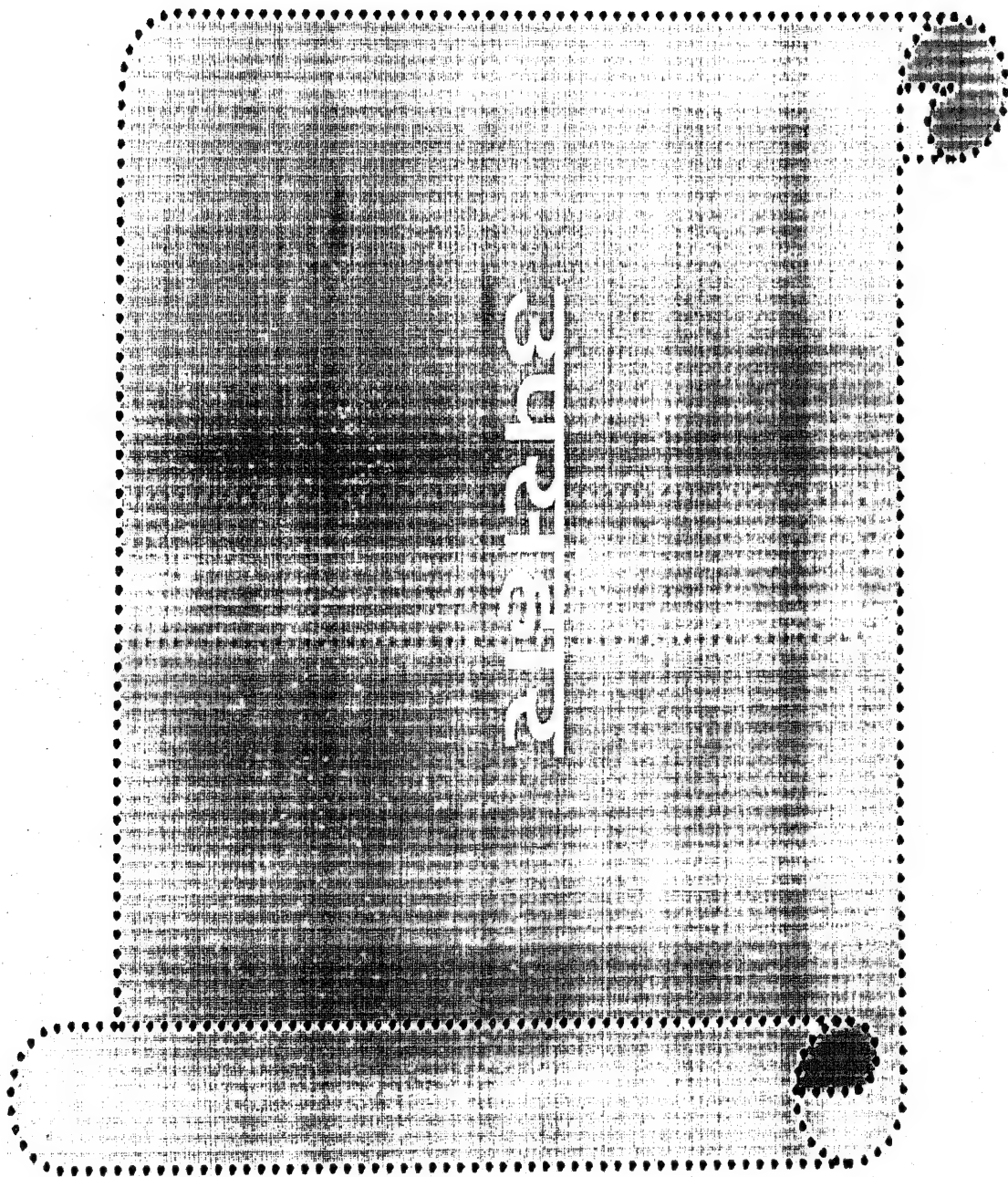
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखर न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु ।। रघु ५/७८

३ ममात्र भावैकरस मन स्थित न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।। रघु ५/८२

सभी पात्र तपस्या के खड्गधार पर चलते हैं। प्रणय की उत्कर्षता तपस्या की पराकाष्ठा में ही प्राप्त की जा सकती है। सयमित जीवन के बीज से आनन्द वटवृक्ष की शीतल छाया प्राप्त की जा सकती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में यही कह सकते हैं कि— तपोवन में सिंह—शिशु के साथ नर—शिशु का जैसा क्रीडा—कौतुक है वैसे ही उनके काव्य—तपोवन में योगी और गृही के भाव समन्वित हैं। काम की कारसाजी ने उस सम्बन्ध को विच्छिन्न करने की चेष्टा की थी। इसी से कवि ने उस वज्र—निपात करके तपस्या द्वारा कल्याणमय गृह के साथ अनासक्त तपोवन का पवित्र सम्बन्ध फिर से स्थापित किया है। कवि ने आश्रम की नींव पर गृहस्थधर्म का मन्दिर प्रस्तुत किया है और कामदेव के हठात् आक्रमण से नर—नारी के पवित्र सम्बन्ध का उद्धार करके उसे तप पूत और निर्मल योगासन के ऊपर प्रतिष्ठित किया है। भारतीय शास्त्रों में स्त्री—पुरुष का सयत सम्बन्ध कठिन अनुशासन के रूप में आविष्ट है और वही कालिदास के काव्यों में सौन्दर्य के उपादानों से सुशोभित हुआ है। यह सौन्दर्य थी, ही और कल्याण से उद्भासित है गम्भीरता की ओर से नितान्त एकाकी और व्याप्ति की ओर से विश्व का आश्रयस्थल। यह त्याग से परिपूर्ण दुःख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निश्चित है। इसी सौन्दर्य से स्त्री—पुरुष के दुर्निवार और दुर्गम प्रेम के प्रलयकारी वेग ने अपने को सयत करके मंगलरूपी महासमुद्र में परमस्थिरता प्राप्त की है। इसी से यह सयत प्रेम बन्धनहीन दुर्घर्ष प्रेम की अपेक्षा महान और आश्चर्यजनक है।^१





BRUNNEN

उपसंहार

कालिदास ने पार्वती के सौन्दर्य के विषय में जो बात कही है—

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथा प्रदेश विनिवेशितेन ।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ कु०स० १/४६

वही बात कालिदास की काव्य—प्रतिभा के सौन्दर्य के विषय में कही जा सकती है। इनकी रचनाएँ स्रष्टा की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि नहीं तो और क्या है ? कालिदास की रचनाएँ संस्कृत साहित्य की ही सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं हैं वरन् विश्व—साहित्य इनकी रचनाओं की किरणों से आलोकित है। कालिदास की कविता की चोंदनी सुगन्ध वसुधा के कण—कण में व्याप्त है। ऐसे कवि की रचनाओं का मूल्याङ्कन करना—

क्व? सूर्यप्रभवो वश क्व? चाल्पविषया मति ।

तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ रघु १/२

को चरितार्थ करना है।

लेकिन 'मणौ वज्रसमुत्कीर्णं सूत्रस्येवास्ति मे गति । रघु १/४ का अनुकरण कर मेरे द्वारा यह शोध—प्रबन्ध लिखा गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पाश्चात्य और पौरवत्य विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित शैली—स्वरूप का अध्ययन करके उनका समन्वयात्मक रूप दिया गया है और उसी के माध्यम से कालिदास के ग्रन्थों— रघुवश, कुमारसम्भव और मेघदूत की शैलीगत रूढ़ियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

कालिदास की रचनाओं में सर्वत्र सौन्दर्य का उसी प्रकार विलास है जैसे परब्रह्म की सत्ता चराचर में व्याप्त रहती है। कालिदास के काव्यों में

विश्व की सम्पूर्ण कलाओं का सौन्दर्य परिव्याप्त है। इनके काव्य के पात्र यद्यपि ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। किन्तु उनमें जो तप त्याग और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था है व उन्हें जल कमल सिद्ध करते हैं। उनका ऐश्वर्य अपने लिए नहीं है वरन् प्रजा और मानवता की रक्षा के लिए है। कालिदास का दिलीप नन्दिनी गौ की पत्नी सहित सेवा करता है और नन्दिनी की रक्षा के लिए अपना शरीर अर्पण करने के लिए तैयार है। रघु अकिंचन रहने पर भी कौत्स के अपरमित स्वर्ण मुद्राएं आदरपूर्वक देता है। युवक अज ही इन्दुमती के दिवगता हो जाने पर भी अपने विधुर यौवन को पुनर्विवाह के दलदल से मुक्त रखकर प्रजा के हित के लिए समर्पित कर देता है। कालिदास का पात्र राम विश्व का अद्वितीय इतिहास है। जो प्रजा को सुख देने के लिए अग्नि परीक्षिता गर्भवती पत्नी सीता को लक्ष्मण के द्वारा निर्वासित कर देता है। इनके काव्य का राजा प्रजा रजन की वलि—वेदी पर समर्पित होने के कारण ही राजा है।^१ यह अपने प्रजा के लिए पिता है वह अपनी प्रजा का भरण—पोषण तथा रक्षण कर सन्मार्ग की ओर ले जाता है।^२

स पिता पितरस्तासा केवल जन्महेतव ।। रघु० १/२४

प्रजा प्रजानाथ! पितेव पासि ।। रघु० २/४८

कालिदास का दाम्पत्य प्रेम शाश्वत प्रणय—सूत्र में बधा हुआ है। वाक् और अर्थ के साहित्य का रहस्य स्त्री और पुरुष के शाश्वत प्रणय की कहानी है। राम से निर्वासित सीता भी घोर तपस्या के द्वारा दूसरे जन्म में भी राम का ही सहचर्य चाहती है।^३ इनका प्रकृति—पुरुष शाश्वत सहचर्य का सौन्दर्य चेतन में ही नहीं अचेतन में भी व्याप्त है।^४

१ राजा प्रकृतिरञ्जनात् रघु० ४/१२ “राजा प्रजारजनलब्धवर्ण” रघु ६/२१

२ प्रजाना विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।

स पिता पितरस्तासा केवल जन्महेतव ।। रघु १/२४

३ साऽह तप सूर्यनिविष्टदृष्टिरुध्वै प्रसूतेश्चरितु यतिष्ये।

भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग ।। रघु १४/६६

४ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भा स्वयतरङ्गाधरदानदक्ष

अनन्यसामान्यप्रवृत्ति पिवत्यसौ पाययते च सिन्धू । रघु १३/६

कालिदास की दृष्टि इतनी व्यापक है कि इनकी लेखनी भारतीय सस्कृति और आदर्शों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयो को उसी प्रकार चित्रित करती रहती है जैसे प्रकृति प्रत्येक सौन्दर्यात्मक उपादानो का मनोरम चित्र प्रस्तुत करती है। इस महान कवि के काव्यो मे प्रकृति की जितनी सुषमा विभिन्न प्रकार के चित्रो मे समायी हुई है। सम्पूर्ण भारत के प्रति कवि का प्रेम इतना अलौकिक है कि वहा भावना जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

सचारिणी पल्लविनी लता की भाति इनकी काव्यकला अपने भाव—पुष्पो के सौरभ से सम्पूर्ण वसुधा वसुधा के कण—कण मे अनुपम सौरभ विखेरती है। इनकी सस्कारवती^१ वाणी जीवन के प्रत्येक क्षण को सस्कृत बनाती रहती है। इनके काव्य के वर्ण पद वाक्य छन्द आदि एक लय और ताल मे आबद्ध होकर अलौकिक अर्थ को अभिव्यक्त करते है। उनके प्रत्येक वर्ण पद समास वाक्य आदि मे विश्वात्मा शिव का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित होता रहता है।

प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध मे कालिदास के द्वारा अपने काव्य मे चयन किये गये प्रकृतिवर्णन रीति, रस छन्द अलङ्कार लोकोक्ति इस आदि के सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया गया है। इस कवि का प्राकृतिक सौन्दर्य मानव सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए चित्र के सुन्दर रंगो का काम करता है। उनके काव्य का सौन्दर्यात्मक रूप अत्यन्त महनीयता को प्राप्त है। कालिदास विधाता से भी श्रेष्ठ कलाकार है। इसीलिए इनकी कल्पना ने जिस सौन्दर्य की सर्जना की है वह विधि की अखिल सृष्टि मे उपलब्ध नहीं होती है।

वस्तुतः इनकी कविता का सौन्दर्य विश्वमूर्ति शिव का सौन्दर्य है, जो प्रत्येक अवस्था मे शाश्वत सौन्दर्य से युक्त है।^२

१ सस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च। कुस १/२८

२ विभूषणोद्भासि पिनद्वयोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।

कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखर न विश्वमूर्तेरवर्धायते वपु ॥ कुस ५/७८

उनके काव्य उन्हें राष्ट्रीय कवि के पद पर सुशोभित करते है। तीनों काव्यों^१ के माध्यम से उन्होंने सम्पूर्ण भारत का चित्र प्रस्तुत किया है। उनका हिमालय-वर्णन उनके राष्ट्र-प्रेम का गौरव मय रूप है। कवि ने त्रिवेणी के सगम का जैसा चित्र खींचा है वह उनके सात्विक चित्त की प्रतिमूर्ति है।^२ भारत के स्थल भाग लता-कुज वृक्ष वन पर्वत गुफा निर्झर नदी समुद्र आदि सभी अचेतन तत्त्व उनके लिए चेतन प्रतीत होते है। इनके वर्णन को देखकर यही प्रतीत होता है कि कवि की आत्मा भारत के कण-कण में बसती है। कालिदास गृहस्थ जीवन के सभी पक्षों की विधिवत विवेचना करते है। उनकी दृष्टि में पत्नी केवल भोग की वस्तु नहीं है वरन् गृहिणी सचिव सखी आदि सब कुछ है।^३ पत्नी का एक क्षण का वियोग भी कालिदास को सह्य नहीं है।^४ बिना पतिव्रता पत्नी के गृहस्थ का कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता है।^५ कालिदास स्त्री और पुरुष में भेद मानते ही नहीं। इस तथ्य को उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से चरितार्थ कर दिया है। संक्षेप में कालिदास के काव्य भारतीय संस्कृति और कला की अक्षय निधि है।



१ द्र० रघु० ६/३५, ४३ ६/२४-४७ १३/३३-४६ / ५० में कु०स० प्रथम सर्ग।

२ रघुव० १३/५४-५७

३ गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ। रघु ८/६७

४ मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग। उ मे ५८

५ क्रियाणां खलु धर्म्याणां सपत्र्यो मूलकारणम् कु०स० ६/१३

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों की सूची

क आधारभूत रचनाएँ

- १ रघुवश कालिदास — निर्णयसागर प्रकाशन १९४८
- २ कुमारसम्भव — कालिदास — कलकत्ता, स १९२५
- ३ मेघदूत — कालिदास — चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी १९५३

ख आलोचनात्मक ग्रन्थ

- १ अभिनवभारती, अभिनवगुप्त — भूमिका लेखक डा नगेन्द्र
- २ अभिज्ञानशाकुन्तलम् — कालिदास — डा कपिलदेव द्विवेदी
- ३ औचित्यविचारचर्चा — क्षेमेन्द्र — मोतीलाल बनारसीदास १९६०
- ४ काव्यप्रकाश — मम्मट ओरियण्टल सीरीज पूना १९२१
- ५ काव्यमीमांसा — राजशेखर — विहार राष्ट्रभाषा परिषद् प्रकाशन
- ६ काव्यादर्श — दण्डी — चौ०स०सी० वाराणसी
- ७ काव्यालङ्कार — रुद्रट, चौ वि भवन वाराणसी १९६४
- ८ काव्यालङ्कार — दण्डी , चौ०, वि०, भवन वाराणसी १९७२
- ९ काव्यालङ्कार सूत्र-वृत्ति — वामन, आत्माराम एण्ड सस, काश्मीरीगेट दिल्ली ६१
- १० कालिदास ग्रन्थावली — सीताराम चतुर्वेदी भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ २०/६
- ११ कालिदास की लालित्य योजना—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नैवेद्य निकेतन वाराणसी १९६५।
- १२ ध्वन्यालोक— आनन्दवर्धन व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर प्रकाशन ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी।
- १३ नाट्यशास्त्र — भरतमुनि — गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बडौदा।
- १४ निरुक्त — यास्क — खेमराज कृष्णदास मुम्बई स १८८२
- १५ नैषधीयचरितम् — श्रीहर्ष — प्रकाशन — मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी।
- १६ पाश्चात्य काव्यशास्त्र — डा कृष्णदेव शर्मा

- १७ भारतीय काव्यशास्त्र – बलदेव उपाध्याय ।
- १८ नैषधीय महाकाव्य – श्रीहर्ष निर्णय सागर १६१६ ।
- १९ बालरामायण – राजशेखर – गीताप्रेस गोरखपुर ।
- २० महाभाष्य – पतञ्जलि – मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरीज १६४२
- २१ रसगङगाधर – पण्डितराज जगन्नाथ चौ०वि०भ० वाराणसी ।
- २२ रीतिविज्ञान – डा० विद्या निवास मिश्र प्रथम संस्करण ।
- २३ वक्रोक्ति जीवितम् – कुन्तक व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी १६६७
- २४ बृहदारण्यक उपनिषद् – गीताप्रेस गोरखपुर १६७०
- २५ ध्वन्यालोक – दीक्षित – चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी १६६४
- २६ शैली विज्ञान – डा भोलानाथ तिवारी ।
- २७ शैली विज्ञान – डा० नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली ।
- २८ शैली विज्ञान – सुरेश कुमार
- २९ शैली विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका – रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव १६७२
- ३० शैली और शैली विज्ञान – केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा १६७६
- ३१ सरस्वती कण्ठाभरण – भोजराज व्याख्याकार डा० कामेश्वरनाथ चौ०वि०भ० वाराणसी ।
- ३२ संस्कृत काव्यशास्त्र – एस०के०डे०
- ३३ संस्कृत साहित्य का इतिहास – कीथ, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी ।
- ३४ संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय – शारदा निकेतन, वाराणसी ।
- ३५ संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा कपिल देव द्विवेदी ।
- ३६ सुवृत्ततिलक – क्षेमेन्द्र – मो० ला० बनारसीदास वाराणसी ।
- ३७ हर्षचरित – वाणभट्ट
- ३८ साहित्यदर्पण – विश्वनाथ चौखम्भा, विद्याभवन वाराणसी स० २०१४
- ग अंग्रेजी गन्थ-
- १ एन एप्रोच टू दी स्टली आफ स्टाइल-स्पेसर १६६४
- २ स्टाइल – वाल्टर रेले
- ३ स्टाइल – एफ एल लुक्स

घ कोश -

- १ अमरकोश – निर्णयसागर १६१५
- २ एन साइक्लोपीडिया विट्रोनिका
- ३ सस्कृत इग्लिश डायरी – वी एम आप्टे
- ४ हिन्दी साहित्य भाषा कोश – डा० राजवश सहाय हीरा
- ५ सस्कृत साहित्य कोश – डा आदित्येश्वर कौशिक

